॥ श्रीः ॥

हरजीवनदास संस्कृत ग्रन्थमाला २९

सचित्र
दुर्गासप्तशती

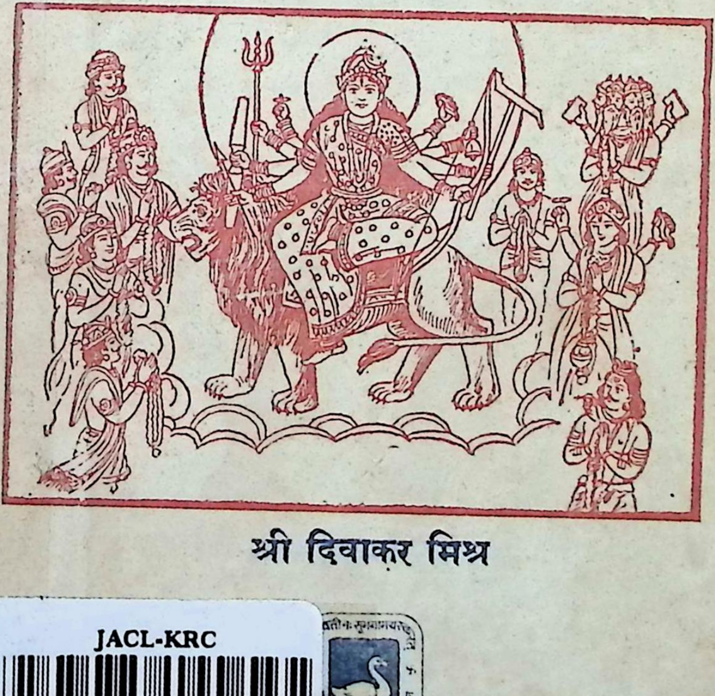

श्री दिवाकर मिश्र

JACL-KRC
003654

चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन
पोस्ट बाक्स संख्या ११३८
वाराणसी-२२१००१ (भारत)

केन्द्रीय ... द्यापीठ, जयपुर

3654
सचित्र

केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जयपुर

पुस्तकालय

वर्गीकरण सं०..............

पुस्तक सं० 3654 ....   दिनाङ्क..............

यह पुस्तक नीचे अङ्कित तिथि या उससे पूर्व लौटा दी जानी चहिये। यदि पुस्तक निर्धारित तिथि से अधिक समय तक पाठक अपने पास रखेंगे तो 5 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क देय होगा।

30 SEP 2012

॥ श्रीः ॥

हरजीवनदास संस्कृत ग्रन्थमाला २९

सचित्र-

दुर्गासप्तशती

"जयमङ्गला" हिन्दीव्याख्योपेता

(सप्तशत्यङ्गषट्कपूजाविधि-मन्त्रकोश-नित्यचण्डीनवचण्डी-
नवदुर्गाशतचण्डी-सहस्रचण्डी-विधानैः समलङ्कृता)

मूलग्रन्थसम्पादकः

श्री पं० हरेकान्तमिश्र साहित्याचार्यः

हिन्दीव्याख्याकारः—

सम्पादकस्यात्मजः

श्री पं० दिवाकर मिश्र

सारस्वतखत्री महाविद्यालय

वाराणसी

3654

चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन

पोस्ट बाक्स संख्या ११३८

वाराणसी—२२१००१ (भारत)

प्रकाशक
चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन
पोस्ट बाक्स संख्या ११३८
के० ३७/१३०, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी–२२१००१

प्रथम संस्करण सन् १९८४ ई०

वि० सं० २०४१
मूल्य १५–००

सर्वेऽधिकाराः प्रकाशकाधीनाः

JACL-KRC
003654

अन्यप्राप्तिस्थान
चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय
कचौड़ी गली
वाराणसी २२१००१ (भारत)

मुद्रक—विद्याविलास प्रेस, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी–२२१००१

विषयानुक्रमणिका

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
दो शब्द	१
दुर्गासप्तशती एवं उसकी पाठविधिः	२
दुर्गापाठ संकल्पः	८
दुर्गाषोडशोपचारपूजनविधिः	९
सप्तश्लोकी दुर्गा	१५
दुर्गाशतनामस्तोत्रम्	१७
दुर्गाऽष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्	२१
देव्याः कवचम्	२५
अर्गलास्तोत्रम्	३६
कीलकस्तोत्रम्	४२
वेदोक्तं रात्रिसूक्तम्	४६
तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तम्	४८
श्रीदेव्यथर्वशीर्षम्	५०
नवार्णमन्त्रजपविधिः	५९
ऋष्यादिन्यासः	५९
करन्यासः	५९
हृदयादिन्यासः	६०
अक्षरन्यासः	६०
दिग्न्यासः	६०
ध्यानम्	६१
सप्तशतीन्यासः	६२
हृदयादिन्यासः	६४
दुर्गाशापोद्धारः	६५
दुर्गासप्तशती	
प्रथमोऽध्यायः	६७

विषयाः	पृष्ठा
द्वितीयोऽध्यायः	
तृतीयोऽध्यायः	
चतुर्थोऽध्यायः	१
पञ्चमोऽध्यायः	१
षष्ठोऽध्यायः	१
सप्तमोऽध्यायः	१
अष्टमोऽध्यायः	१४
नवमोऽध्यायः	१५
दशमोऽध्यायः	१५
एकादशोऽध्यायः	१६
द्वादशोऽध्यायः	१७
त्रयोदशोऽध्यायः	१८
परिशिष्टम्	
परिसमापनम्	१८
ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तम्	१९
तन्त्रोक्तं देवीसूक्तम्	१९
प्राधानिकं रहस्यम्	१९
वैकृतिकं रहस्यम्	२०
मूर्तिरहस्यम्	२०
क्षमा-याचना	२१
श्री दुर्गामानसपूजा	२१
दुर्गाद्वात्रिंशन्नाममाला	२२
देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्	२२
सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रम्	२२
श्रीदुर्गापदुद्धारस्तोत्रम्	२३
दुर्गादलम्	२३

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
दुर्गासप्तशतीहृदयम्	२३५
दुर्गादेवी की आरती	२३७
भगवतीपुष्पाञ्जलिस्तोत्रम्	२३८
नित्यचण्डीविधिः	२४०
नवचण्डीविधिः	२४२
नवदुर्गाविधिः	२४६
शतचण्डीविधिः	२४७
सहस्रचण्डीविधिः	२५८
एकादशशक्तिध्यानम्	२६०
सप्तशतीपाठफलम्	२६२
तत्कालफलप्रदसिद्ध सम्पुटमन्त्राः	२६४
दुर्गासप्तशतीपाठभेदाः	२६९
दुर्गासप्तशतीश्लोकानुक्रमणिका	२८२

दो शब्द

या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

माँ के दर्शन का सर्वोत्तम उपाय है—दर्शन के लिए व्याकुल होना। जैसे छोटा बच्चा जब किसी वस्तु में न भूलकर एकमात्र माँ के लिए व्याकुल होकर रोने लगता है, केवल माँ-माँ पुकारता है और किसी बात को सुनना ही नहीं चाहता, तब माँ हजार जरूरी कामों को छोड़कर उसके पास दौड़ी आती है और उसके आँसू पोंछकर उसे तुरन्त अपनी गोद में छिपाकर मुँह चूमने लगती है। इसी प्रकार वह परमात्मरूपा जगज्जननी माँ भी तुम्हारा रोना सुनकर—पुकार सुनकर तुम्हारे पास आये बिना नहीं रहेंगी। अतएव उत्कण्ठित हृदय से व्याकुल होकर रोओ—अपने करुणाक्रन्दन से करुणामयी माँ के हृदय को हिला दो—पिघला दो। तब माँ तुम्हें जरूर दर्शन देंगी।

तुममें अपार शक्ति है। तुम्हारा अणु-अणु शक्ति से भरा है। पुरुषार्थ करके उस शक्ति के भण्डार का द्वार खोल लो। अपने को हीन, पापी समझकर निराश मत होओ। शक्ति-माता की अपार शक्ति तुममें निहित है। उस शक्ति को जगाओ। शक्ति की उपासना करो, शाक्त का समादर करो, शक्ति को क्रियाशीला बनाओ। फिर शक्ति की कृपा से तुम जो चाहो सो कर सकते हो। यही दुर्गासप्तशती का अन्तिम निष्कर्ष है।

विजयादशमी सं० २०४०
वाराणसी

माँ का सेवक
दिवाकर मिश्र

श्री दुर्गासप्तशती एवं उसकी पाठविधि

शक्ति की उपासना के सम्बन्ध में जितने ग्रन्थ प्रचलित हैं, उनमें सप्तशती का बहुत विशेष महत्व है। आस्तिक हिन्दू बड़ी श्रद्धा से इसका पाठ किया करते हैं और उनमें से अधिकांश का यह विश्वास है कि सप्तशती का पाठ प्रत्यक्ष फलदायक हुआ करता है। कुछ लोगों का कहना है—'कलौ चण्डीविनायकौ' अथवा 'कलौ चण्डीमहेश्वरौ'। इस कथन से भी विदित होता है कि कलियुग में चण्डीजी का विशेष महत्व है। चण्डीजी के कृत्यों का उल्लेख सप्तशती में विशेष सुन्दरता के साथ मिलता है। इस दृष्टि से भी इस ग्रन्थ की महत्ता सिद्ध होती है।

मार्कण्डेय पुराण के ८१ से लेकर ९३ अध्याय तक कुल १३ अध्याय ही दुर्गासप्तशती नाम से प्रसिद्ध है। इसमें ७००. मंत्र हैं। ये सब मंत्र देवी की महिमा का ही वर्णन करते हैं इसलिए ग्रन्थ का नाम दुर्गासप्तशती पड़ा है। यह तीन भागों अथवा चरितों में विभक्त है। प्रथम चरित में ब्रह्मा ने योगनिद्रा की स्तुति करके विष्णु को जाग्रत कराया है और इस प्रकार जाग्रत होने पर उनके द्वारा मधुकैटभ का नाश हुआ है। द्वितीय चरित में महिषासुर-वध के लिये सब देवताओं की शक्ति एकत्र हुई है और उस पुञ्जीभूत शक्ति के द्वारा महिषासुर का वध हुआ है। तृतीय चरित में शुम्भ-निशुम्भ वध के लिये देवताओं ने प्रार्थना की, तब पार्वती के शरीर से शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ और क्रमशः धूम्रलोचन, चण्ड-मुण्ड और रक्तबीज का वध होकर शुम्भ-निशुम्भ का संहार हुआ है।

इस कथानक को यदि ध्यान पूर्वक पढ़ा जाय तो कई महत्व की बातें आप-ही-आप विदित होंगी। प्रथम चरित से हमें यह मालूम पड़ता है कि जगत् का कोई भी कार्य अपनी प्रस्तुत शक्ति को जाग्रत किये बिना कभी नहीं हो सकता। स्वयं विष्णु भी क्यों न हों, परन्तु यदि उनकी शक्ति सोई हुई है तो वे कुछ भी नहीं कर सकते। फिर पाशव-शक्ति से बुद्धि-शक्ति की श्रेष्टता इस चरित्र में विदित होती है, क्योंकि मधु-कैटभ पशुबल में विष्णु

अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः ।
स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा ॥३७॥
पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम् ।
क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेन ताम् ॥३८॥
दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद् व्याप्य संस्थिताम् ।
ततः प्रववृते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम् ॥३९॥
शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम् ।
महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्यो महासुरः ॥४०॥
युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्गबलान्वितः ।
रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महासुरः ॥४१॥

साथ लेकर युद्ध करने का उद्योग करने लगे। उस समय महिषासुर क्रोध से "आः ? यह क्या हुआ ?" इस प्रकार बोलता हुआ अनेक असुरों से परिवृत्त हो गया, तब देवी के शब्द को लक्ष्य करके उसी ओर दौड़ा। एवं उसने तीनों लोकों को अपनी कान्ति से व्याप्त करती हुई देवी को देखा ॥ ३३–३७ ॥

उनके चरण-भार से पृथिवी दब रही थी एवं उनके मुकुट के द्वारा आकाशमण्डल चिह्नित हो रहा था। देवी अपने धनुष की टंकार से समस्त पाताल लोकों को क्षुभित कर रही थी, एवं अपनी सहस्रभुजाओं से सभी दिशाओं को व्याप्त कर स्थित थी। इसके बाद देवी के साथ असुरों का युद्ध प्रारम्भ हो गया। अनेकों प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार से सारी दिशाओं के मध्यवर्ती देश चमक उठा। उस समय महिषासुर का सेनापति चिक्षुर नामक महासुर था ॥ ३८–४० ॥

चामर नामक असुर हाथी, घोड़े रथ और पैदल सैनिकों को साथ में लेकर एवं उदग्र नामक महासुर साठ हजार रथ से युक्त सैनिकों को साथ में लेकर युद्ध करने लगा ॥ ४१ ॥

शेषश्च सर्वनागेशो महामणिविभूषितम् ॥३०॥
नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम् ।
अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ॥३१॥
सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः ।
तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः ॥३२॥
अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत् ।
चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे ॥३३॥
चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः ।
जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम् ॥३४॥
तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्तयः ।
दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः ॥३५॥
संनद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः ।
आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः ॥३६॥

इस पृथ्वी को धारण किया है, वह सर्पों के राजा वासुकि ने महामणि (हीरकादि) से सुशोभित नागहार नाम की माला देवी को प्रदान किया। तब अन्यान्य देवताओं ने भी उनको नाना प्रकार के आभूषण एवं अस्त्रादि द्वारा सम्मानित किया। तब देवी बारम्बार ठहठहाकर जोरों से हँसने लगीं। उनके भयानक, अपरिमित एवं महान् शब्द से आकाश मण्डल गूंज उठा ॥ ३०–३२ ॥

इस प्रकार शब्द से महान् प्रतिशब्द होने लगा। देवी के उस महानाद से सभी लोक संक्षुब्ध हो उठे, सारे समुद्र कम्पित हो उठे, पृथिवी और सारे पर्वत विचलित हो गये।

देवतागण आनन्द से सिंहवाहिनी देवी का जय जयकार करने लगे एवं मुनिगण भी विनम्रभाव से देवी की स्तुति करने लगे। देवताओं के शत्रु असुरगण तीनों लोकों को व्याकुल देखकर अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित सैन्यों को

समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन् दिवाकरः ।
कालश्च दत्तवान् खड्गं तस्याश्चर्म च निर्मलम् ॥२४॥
क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे ।
चूडामणिं तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च ॥२५॥
अर्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान् सर्वबाहुषु ।
नूपुरौ विमलौ तद्वद् ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥२६॥
अङ्गुलीयकरत्नानि समस्तास्वङ्गुलीषु च ।
विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चातिनिर्मलम् ॥२७॥
अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यं च दंशनम् ।
अम्लानपङ्कजां मालां शिरस्युरसि चापराम् ॥२८॥
अददज्जलधिस्तस्यै पङ्कजं चातिशोभनम् ।
हिमवान् वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च ॥२९॥
ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः ।

प्रजापति ब्रह्मा ने अक्षमाला एवं कमण्डलु प्रदान किया। सूर्य ने देवी के सब रोमकूपों में अपनी किरणें, काल ने खड्ग तथा अत्यन्त निर्मल चर्म उनको प्रदान किया। क्षीरसमुद्र ने निर्मलहार नवीन वस्त्रद्वय, अत्यन्त सुन्दर चूडामणि, दो कुण्डल तथा अष्टादश भुजाओं के लिये अठारह कंकण, मस्तक के लिये उज्वल अर्धचन्द्र, सब भुजाओं के लिये बाजूबन्द, चरणों के लिये निर्मल पायल, गले के लिये सुन्दर हँसुली तथा अँगुलियों में पहनने के लिये रत्नों से बनी अँगूठियाँ दीं। विश्वकर्मा ने अति निर्मल कुठार, अन्यान्य नाना प्रकार के अस्त्र एवं अभेद्य कवच और मस्तक तथा वक्षस्थल पर धारण करने योग्य सदा नवीन रहनेवाली कमलों की मालाएँ दीं ॥ २३–२८ ॥

समुद्र ने उनको अति सुन्दर कमल प्रदान किया। हिमालय ने सवारी के लिए सिंह तथा विविध प्रकार का रत्न प्रदान किया ॥ २९ ॥

धनपति कुबेर ने मदिरा से पूर्ण पीने के लिये पानपात्र दिया। जिन्होंने

तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा ।
नयनत्रितयं तज्ञे तथा पावकतेजसा ॥१७॥
भ्रुवौ च संध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च ।
अन्येषां चैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा ॥१८॥
ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम् ।
तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः ॥१९॥
शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक् ।
चक्रं च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाट्य स्वचक्रतः ॥२०॥
शङ्खं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः ।
मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी ॥२१॥
वज्रमिन्द्रः समुत्पाट्य कुलिशादमराधिपः ।
ददौ तस्यै सहस्राक्षो घण्टामैरावताद् गजात् ॥२२॥
कालदण्डाद्यमो दण्डं पाशं चाम्बुपतिर्ददौ ।
प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम् ॥२३॥

प्रजापति के तेज से दन्तसमूह, अग्नि के तेज से तीनों नेत्र प्रकट हुए। सन्ध्या के तेज से भ्रूयुगल, वायु के तेज से दोनों कान तथा अन्यान्य देवताओं के तेज समूहों से शिवा देवी की उत्पत्ति हुई। तब महिषासुर के द्वारा पीड़ित देवतागण समस्त देवताओं के तेज से उत्पन्न उस स्त्री रूप को देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए। उस समय पिनाकपाणि महादेव ने अपने शूलास्त्र से एक दूसरा शूल निकाल कर उनको (भगवती को) दिया। विष्णु ने अपने चक्र से एक दूसरा चक्र निकाल कर दिया। वरुण ने शङ्ख, अग्नि ने शक्ति, वायु ने धनुष एवं बाण से भरे हुए दो तरकस प्रदान किया। सहस्र लोचन देवराज इन्द्र ने अपने वज्र से वज्र तथा ऐरावत हाथी से घण्टा लेकर भगवती को प्रदान किया ॥ १७–२२ ॥

यम ने कालदण्ड से दण्ड उत्पन्न करके प्रदान किया तथा वरुण ने पाश,

का मुकाबला करते रहे परन्तु जब अहङ्कार में फूलकर वरदान देने के लिये तैयार हो गये तब विष्णु ने बुद्धि-शक्ति का प्रयोग करके उन्हीं के वध का वरदान माँग लिया। इस चरित से एक बात और भी विदित होती है, वह है वैष्णवों और शाक्तों का अभेद। शक्ति ही यद्यपि सब कुछ मानी गयी है परन्तु वह आखिर विष्णु की शक्ति है। रहस्यत्रय में जहाँ महालक्ष्मी से अन्य शक्ति की उत्पत्ति बतलायी गई वहाँ भी प्राकारान्तर से महाविष्णु ही की महत्ता प्रतिपादित होती है।

द्वितीय चरित्र में सङ्घ-शक्ति का महत्व प्रत्यक्ष है। एक देव की शक्ति, सम्भव है, महिषासुर के लिये पर्याप्त न होती। इसलिए सभी देवों की शक्तियाँ समवेत हुई और इस प्रकार समवेत हुई कि उनका एक ही स्वरूप बन गया। इस चरित में मधुपान की बात आयी है। यहाँ मधु का अर्थ है उत्साह का साधक वाह्य उपकरण। अपनी शक्ति कितनी भी प्रबल हो परन्तु यदि उसके उत्साह वर्धन और उसकी सहायता के लिये बाहरी साधन उपयोग में न लाये जायँ तो कार्य-सिद्धि में शिथिलता आ जाना सम्भव है।

तृतीय चरित्र में यह बताता है कि यदि किसी सत्कार्य के लिये कोई अकेली ही शक्ति अग्रसर हो जाय तो अन्य देवताओं की शक्तियाँ आप-ही-आप उसकी सहायता के लिये दौड़ पड़ती हैं, जिस प्रकार अम्बिका देवी की सहायता के लिये अन्य देवताओं की शक्तियाँ आयी थीं। इस चरित से यह भी विदित होता है कि शक्ति का उद्देश्य संहार न होना चाहिये। अम्बिका ने साक्षात् सदाशिव को जो शक्ति के प्रत्यक्ष अवतार हैं, दूत कार्य के लिये भेजा था। उन्होंने अपनी ओर से संहार-कार्य नहीं प्रारम्भ किया। राक्षसों ने भी उन्हें अपने वश में लाने की दुश्चेष्टा प्रारम्भ की। इतने पर भी उन्होंने सदाशिव के द्वारा यह सन्देश भिजवाया—"यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितु-मिच्छथ" अर्थात् यदि जीने की इच्छा हो तो पाताल में जाकर रहो।

दार्शनिक दृष्टि से भी इन कथाओं का बड़ा महत्व है। मुनि के पास सुरथ नामक राजा और समाधि नामक वैश्य गये थे। सुरथ ने देवी के चरित्र सुनकर अक्षय राज्य के लिये तपस्या की और समाधि ने मोक्ष के लिये।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य–द्विजाति के तीन प्रधान अङ्ग—का ऐसा सम्मेलन तथा सुरथ (अविहत गतिवाले) की भुक्ति कामना और समाधि की मुक्ति-कामना मतलब से खाली नहीं है। शक्ति के द्वारा भुक्ति भी प्राप्त हो सकती है और मुक्ति भी। मधु और कैटभ कान के मल माने गये हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि वे शरीर सम्बन्धी विकार हैं। आहार और विहार भी इसी प्रकार के शरीर सम्बन्धी विकार हैं जिन पर पहले ही अङ्कुश लगाना पड़ता है। फिर महिषासुररूपी मोह का दमन किये बिना मानवजीवनरूपी जगत् की स्थिति ही डावाँडोल रहा करती है। तदनन्तर अहङ्कार और विषय-सुखरूपी शुम्भ-निशुम्भ के सेनाध्यक्ष, आलस्यरूपी धूम्रलोचन, राग-द्वेषरूपी चण्ड-मुण्ड और वासनारूपी रक्तबीज के संहार के साथ-ही-साथ स्वयं उस शुम्भ-निशुम्भ का भी वध करना पड़ता है। आध्यात्मिक दृष्टि से इन्हीं वधों में शक्ति की महत्ता है। जब तक अपनी शक्ति इतना सामर्थ्य नहीं रखती तब तक वह भुक्ति अथवा मुक्ति के सच्चे फल नहीं दे सकती।

इस सप्तशती में चार जगह मनोरम स्तुतियाँ आयी हैं। पहली तो प्रथम चरित में ब्रह्माकृत स्तुति है जो रात्रि सूक्ति के नाम से प्रख्यात है। दूसरी द्वितीय चरित में महिषासुर-वध के बाद देवताओं द्वारा की गयी है। तीसरी और चौथी स्तुतियाँ तृतीय चरित्र में शुम्भ-निशुम्भ आदि के वध के पहले और पीछे की गयी हैं। तीसरी स्तुति को देवी सूक्त भी कहते हैं। यों तो चारों स्तुतियाँ ही बड़ी सुन्दर और महत्वपूर्ण हैं परन्तु रात्रि सूक्त तथा देवी सूक्त की महिमा विशेष मानी गयी हैं, क्योंकि इन सूक्तों में शक्ति का महत्व विशेष रूप से व्यक्त हुआ है। लोग सप्तशती पाठ के पहले रात्रि सूक्त और पाठ के पीछे देवीसूक्त का स्वतन्त्र पाठ किया करते हैं।

देवी देवताओं का अनुग्रह प्राप्त करना कोई बाजारू सौदा नहीं है। मैंने इतना अनुष्ठान किया पर कुछ भी फल नहीं हुआ, ऐसा कहना ठीक नहीं है। बल्कि निरुद्विग्न होकर कर्त्तव्य परायण होना चाहिये। यदि इष्ट-सिद्धि के प्रतिबन्धकों के हटाने के लिए चेष्टा न की गयी तो अनुष्ठान मे दोष लगाना अनुचित है। क्योंकि यह न्याय का सर्वतन्त्र सिद्धान्त है कि

कारण के साथ जब प्रतिबन्धक का अभाव होता है तभी वह कारण कार्य को उत्पन्न कर सकता है।

तात्पर्य यह है कि स्वयं अकर्मण्य बनकर मंत्रादि के अनुष्ठान में लगे रहनेवालों को ध्यान रखना चाहिए कि देवी जब अपने उपासक पर अनुग्रह करती हैं तब (ददामि बुद्धियोगं तम्) इस भगवद्वचन के अनुसार उसे बुद्धियोग देती है। तत्पश्चात् प्रयत्न में लगे रहने पर देवी के अनुग्रह का फल प्राप्त होता है। आधुनिक युग की तपःश्रुति सम्पत्तिविहीन जनता का 'प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका' इस वाक्यार्थ की आशा करना प्रायः दुराशामात्र है।

अतः देवी का अनुग्रह प्राप्त करने की चाह रखनेवाले पुरुष को उचित है कि वह विधिपूर्वक दीक्षा या उपदेश ग्रहणकर गुरूपदिष्ट विधि से मंत्र सिद्ध करे, फिर स्वयं नियमबद्ध होकर यथाविधि अनुष्ठान करके प्रयत्न में लगे, ऐसा करने से फिर मन्त्र और गुरु शास्त्रादि में अविश्वास करने का अवसर कदापि नहीं आ सकता।

देवी या देवता के आराधन में ये तीन बातें मुख्य हैं—(१) श्रद्धा, यह अत्यन्त आवश्यक है। (२) विधि का अक्षरशः पालन, देवी या देवता की आराधना में विधि-विहीनता नहीं होनी चाहिये। (३) अनुष्ठान-विहीनता, प्रत्येक अनुष्ठान में अङ्ग और उपाङ्ग क्रम रहता है। यदि इस क्रम में पूर्वापर का विपर्यय हो जाय तो उससे केवल इष्टसिद्धि में बाधा ही नहीं होती बल्कि अनिष्टापत्ति का भी प्रसङ्ग सम्भव हो जाता है। अतः साङ्ग पाठ नहीं करने से पाठ का फल नहीं मिलता है, उल्टे ही उसका अनिष्ट होना प्रारम्भ हो जाता है। लिखा भी है—

अङ्ग हीनो यथा देही सर्वकर्मसु न क्षमः।
अङ्गषट्कविहीना तु तथा सप्तशती स्तुतिः॥
तस्मादेतत् पठित्वैव जपेत् सप्तशती पराम्।
अन्यथा शापमाप्नोति हानिं चैव पदे पदे॥
अङ्गषट्कं विजानीयात् कवचार्गलकीलकैः
रहस्यत्रितयेनैव सहितैर्मनुजेश्वर॥

चिदम्बर संहिता में भी सप्तशती-पाठक्रम इस प्रकार लिखा है—

अर्गलं कीलकं चादौ पठित्वा कवचं पठेत् ।
जपेत् सप्तशतीं पश्चात् सिद्धकामेन मंत्रिणा ॥
रहस्यत्रयमप्यन्ते पठितव्यं प्रयत्नतः ।
मध्ये नवार्णपुटितं कृत्वा स्तोत्रं सदाभ्यसेत् ॥

पाठ के दो भेद होते हैं—(१) वाचिक और (२) मानसिक । मानसिक पाठ निष्फल होता है । जैसे कि कुलार्णव तंत्र में लिखा है—

मनसा यः स्मरेत् स्तोत्रं वचसा वा मनुं जपेत् ।
उभयं निष्फलं देवि ? भिन्नजाण्डोदकं यथा ॥

अर्थात् जोर से मंत्र का जप और मन ही मन स्तोत्र का पाठ उसी प्रकार निष्फल होता है, जिस प्रकार फूटे घड़े में जल रखना । पाठ धीरे-धीरे शान्त चित्त से करना चाहिये । जिससे कि पाठक स्वयं सुन सके ।

उत्तम पाठक के सम्बन्ध में लिखा है—

माधर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।
धैर्यं लयसमर्थञ्च षडेते पाठका गुणाः ॥

अर्थात् मधुर स्वर से प्रत्येक अक्षर के स्पष्ट उच्चारण पूर्वक, पदच्छेद करते हुए, सुन्दर स्वर के साथ, धीरे-धीरे, लय के साथ अर्थानुसन्धान पूर्वक पाठ करना चाहिए । यही छः प्रकार के उत्तम पाठक हैं ।

इसी प्रकार अधम पाठक का भी लक्षण इस प्रकार लिखा है—

गीती शीघ्री शिरः कम्पी तथा लिखित वाचकः ।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ॥

अर्थात् गाकर पाठ करना, जल्दी-जल्दी पाठ करना, पाठ करते समय सिर हिलाना, लिखित पाठ करना, अर्थ-ज्ञान के बिना पाठ करना तथा मन्दस्वर से पाठ करना—ये छः प्रकार के अधम पाठक हैं ।

पाठ या जप के दो भेद बताये गये हैं—(१) सकाम और (२) निष्काम ।

सकाम पाठ या जप में विधि का पालन करना आवश्यक है। निष्काम पाठ या जप में उतनी विधि की आवश्यकता नहीं होती है—सोते उठते चलते फिरते भी पाठ या जप करते हैं। निष्काम कर्म की विशेषता कर्मकाण्ड में न होकर उपासना काण्ड में होती है।

सकाम पाठ अनेकों प्रकारं से किया जाता है। जैसे—सम्पुटित पाठ—यह पाठ सप्तशती के प्रत्येक मंत्र के आदि और अन्त में सप्तशती का कोई मंत्र या बीज मंत्र जोड़कर किया जाता है। वृद्धि पाठ—इसमें प्रथम दिन एक पाठ, दूसरे दिन दो, तीसरे दिन तीन, चौथे दिन चार, पाँचवें दिन पाँच, छठे दिन छः, सातवें दिन सात, आठवें दिन आठ तथा नवें दिन नौ पाठ किया जाता है। इसके अतिरिक्त नित्य चण्डी, नव चण्डी, नवदुर्गा, शतचण्डी और सहस्रचण्डी पाठ किया जाता है, जिसका उल्लेख आगे किया गया है।

—:०:—

अथ दुर्गापाठसंकल्पः

विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः ॐ नमः परमात्मने श्रीपुराणपुरुषोत्तमाय अद्य श्री ब्रह्मणो द्वितीयपराद्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे प्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तान्तर्गतब्रह्मावर्तैकदेशे अमुकदेशे वर्तमाने अमुकनाम-संवत्सरे अमुकायने महामाङ्गल्यप्रदे मासोत्तमे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुक-शर्माऽहं मम (अमुकगोत्रोत्पन्नस्य अमुकनाम्नो यजमानस्य वा) सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थमायुरारोग्यैश्वर्यादिवृद्ध्यर्थं सर्वदा हर्षविजय-कामनासिद्ध्यर्थं श्रीमहाकाली - महालक्ष्मी - महासरस्वती-देवता-प्रीत्यर्थं सर्वापन्निवारणार्थं (कवचार्गलाकीलकादिसहितम्) मार्कण्डेयपुराणोक्तं मार्कण्डेय उवाचेति पूर्वकं सावर्णिसूर्यतनय इत्यारभ्य सावर्णिर्भविता मनुः ओमित्यन्तं रात्रिसूक्तादिदेवीसूक्ता-न्तमादावन्तेऽष्टोत्तरशतनवर्णामन्त्रसम्पुटितम् (अमुकमंत्रेण सम्पु-टितं वा) सप्तशतीस्तवपाठमन्ते रहस्यत्रयपठनञ्च करिष्ये। इति संकल्प्य—

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥

इति मंत्रेण पुस्तकपूजनम्।

अथ शापोद्धारमंत्रः। ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं क्रां क्रीं चण्डिके देवि शापानुग्रहं कुरु कुरु स्वाहा ७ वारं जपेत्। ततः उत्कीलनमंत्रः – ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं सप्तशति चण्डिके उत्कीलनं कुरु कुरु स्वाहा २१ वारं जपेत्।

इति दुर्गापाठसंकल्पः

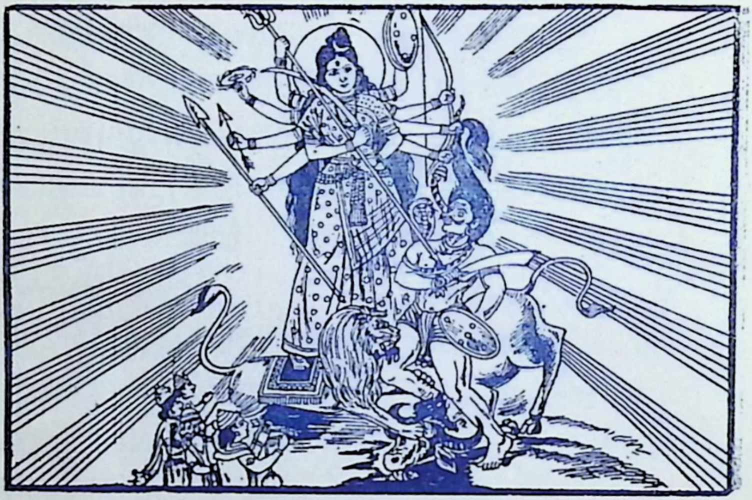

श्रीदुर्गाषोडशोपचारपूजनविधिः

तत्र सङ्कल्पः—

ॐ अद्येत्यादि ममेह जन्मनि सर्वापच्छान्तिपूर्वकं दीर्घायुर्विपुलपुत्रपौत्राद्यविच्छिन्नसन्ततिवृद्धिस्थिरलक्ष्मीकीर्तिलाभशत्रुपराजयप्रमुखचतुर्विधपुरुषार्थसिद्ध्यर्थं श्रीदुर्गापूजनमहं करिष्ये ।

ध्यानम्—

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम् ।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥

आवाहनम्—

आगच्छ वरदे देवि दैत्यदर्पनिषूदिनि ।
पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शङ्करप्रिये ॥

आसनम्—

अनेकरत्नसंयुक्तं नानामणिगणान्वितम् ।
कार्तस्वरमयं दिव्यमासनं प्रतिगृह्यताम् ॥

पाद्यम्—

गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्यो मया प्रार्थनयाहृतम् ।
तोयमेतत् सुखस्पर्शं पाद्यार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

अर्घ्यम्—

गन्धपुष्पाक्षतैर्युक्तमर्घ्यं सम्पादितं मया ।
गृहाण त्वं महादेवि प्रसन्ना भव सर्वदा ॥

आचमनम्—

आचम्यतां त्वया देवि भक्तिं मे ह्यचलां कुरु ।
ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च परां गतिम् ॥

स्नानम्—

जाह्नवीतोयमानीतं शुभं कर्पूरसंयुतम् ।
स्नापयामि सुरश्रेष्ठे त्वां पुत्रादिफलप्रदाम् ॥

पञ्चामृतस्नानम्—

पयो दधि घृतं क्षौद्रं सितया च समन्वितम् ।
पञ्चामृतमनेनाद्य कुरु स्नानं महेश्वरि ॥

शुद्धोदकस्नानम्—

परमानन्दबोधाब्धिनिमग्ननिजमूर्तये ।
सांगोपांगमिदं स्नानं कल्पयामि सुरेश्वरि ॥

वस्त्रम्—

वस्त्रञ्च सोमदैवत्यं लज्जायास्तु निवारणम् ।
मया निवेदितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि ॥

उपवस्त्रम्—

यामाश्रित्य महामाया जगत्सम्मोहिनी सदा ।
तस्यै ते परमेशायै कल्पयाम्युत्तरीयकम् ॥

मधुपर्कः—

दधिमध्वाज्यसंयुक्तं पात्रयुग्मसमन्वितम् ।
मधुपर्कं गृहाण त्वं वरदा भव शोभने ॥

गन्धम्—

परमानन्दसौभाग्यपरिपूर्णदिगन्तरे ।
गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वरि ॥

कुंकुमम्—

कुंकमं कान्तिदं दिव्यं कामिनीकामसम्भवम् ।
कुंकुमेनार्चिते देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥

आभूषणम्—

हारकङ्कणकेयूरमेखलाकुण्डलादिनि ।
रत्नाढ्यं कुण्डलोपेतं भूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥

सिन्दूरम्—

सिन्दूरमरुणाभासं जपाकुसुमसन्निभम् ।
पूजितासि मया देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥

कज्जलम्—

चक्षुर्भ्यां कज्जलं रम्यं सुभगे शान्तिकारिके ।
कर्पूरज्योतिरुत्पन्नं गृहाण परमेश्वरि ॥

सौभाग्यद्रव्यम्—

सौभाग्यसूत्रं वरदे सुवर्णमणिसंयुते ।
कण्ठे बध्नामि देवेशि सौभाग्यं देहि मे सदा ॥

सुगन्धिततैलम्—

चन्दनागरुकर्पूरकुंकुमं रोचनं तथा ।
कस्तूर्यादिसुगन्धांश्च सर्वाङ्गेषु विलेपनम् ॥

परिमलद्रव्यम्—

हरिद्रारञ्जिते देवि सुखसौभाग्यदायिनि ।
तस्मात् त्वां पूजयाम्यत्र सुखशान्तिं प्रयच्छ मे ॥

अक्षताः—

रञ्जिताः कुंकुमौघेन अक्षताश्चातिशोभनाः ।
मामेषां देवि दानेन प्रसन्ना भव शोभने ॥

पुष्पम्—

मन्दारपारिजातादि पाटलीकेतकानि च ।
जातीचम्पकपुष्पाणि गृहाणेमानि शोभने ॥

पुष्पमाला—

सुरभिपुष्पनिचयैः ग्रथितां शुभमालिकाम् ।
ददामि तव शोभार्थं गृहाण परमेश्वरि ॥

बिल्वपत्रम्—

अमृतोद्भवः श्रीवृक्षो महादेवि प्रियः सदा ।
विल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि ॥

धूपः—

दशांगं गुग्गुलं धूपं चन्दनागरुसंयुतम् ।
समर्पितं मया भक्त्या महादेवि प्रगृह्यताम् ॥

दीपः—

घृतवर्तिसमायुक्तं महातेजो महोज्ज्वलम् ।
दीपं दास्यामि देवशि सुप्रीता भव सर्वदा ॥

नैवेद्यम्—

अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् ।
नैवेद्यं गृह्यतां देवि भक्तिं मे ह्यचलां कुरु ॥

ऋतुफलम्—

द्राक्षाखर्जूरकदलीपनसाम्रकपित्थकम् ।
नारिकेलेक्षुजम्ब्वादि फलानि प्रतिगृह्यताम् ॥

आचमनम्—

कामारिवल्लभे देवि कुर्वाचमनमंबिके ।
निरन्तरमहं वन्दे चरणौ तव चण्डिके ॥

अखण्ड ऋतुफलम्—

नारिकेलञ्च नारंगं कलिंगं मञ्जिरं तथा ।
उर्वारुकं च देवेशि फलान्येतानि गृह्यताम् ॥

ताम्बूलपूगीफलानि—

एलालवङ्गकस्तूरीकर्पूरैः पुष्पवासिताम् ।
वीटिकां मुखवासार्थमर्पयामि सुरेश्वरि ॥

दक्षिणा—

पूजाफलसमृद्ध्यर्थं तवाग्रे स्वर्णमीश्वरि ।
स्थापितं तेन मे प्रीता पूर्णान् कुरु मनोरथान् ॥

प्रार्थना—

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
पूजां गृहाण कौमारि जगन्मातर्नमोस्तु ते ॥

आरातिकम्—

नीराजनं सुमांगल्यं कर्पूरेण समन्वितम् ।
चन्द्रार्कवह्निसदृशं महादेवि नमोऽस्तु ते ॥

पुष्पाञ्जलिः—

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥

प्रदक्षिणा—

नमस्ते देवि देवेशि नमस्ते ईप्सितप्रदे ।
नमस्ते जगतां धात्रि नमस्ते भक्तवत्सले ॥

साष्टांगप्रणामः—

नमः सर्वहितार्थायै जगदाधारहेतवे ।
साष्टांगोऽयं प्रणामस्तु प्रयत्नेन मया कृतः ॥

प्रार्थना—

पुत्रान् देहि धनं देहि सौभाग्यं देहि मंगले ।
अन्यांश्च सर्वकामांश्च देहि देवि नमोऽस्तुते ॥

विसर्जनम्—

इमां पूजां मया देवि यथाशक्त्योपपादिताम् ।
रक्षार्थं त्वं समादाय व्रज स्थानमनुत्तमम् ॥

सप्तशतीमहायन्त्रम्

पूर्वा (देवी पश्चिमा)

वं वटुकाय० ८४

ईशानी (देवीनिर्ऋतिः)

पं पद्माय० ८०

आं ब्रह्मणे० ७०

आग्नेयी (देवीवायव्य)

उत्तरा (देवीदक्षिणा)

क्षें क्षेत्रपालायनमः ८३

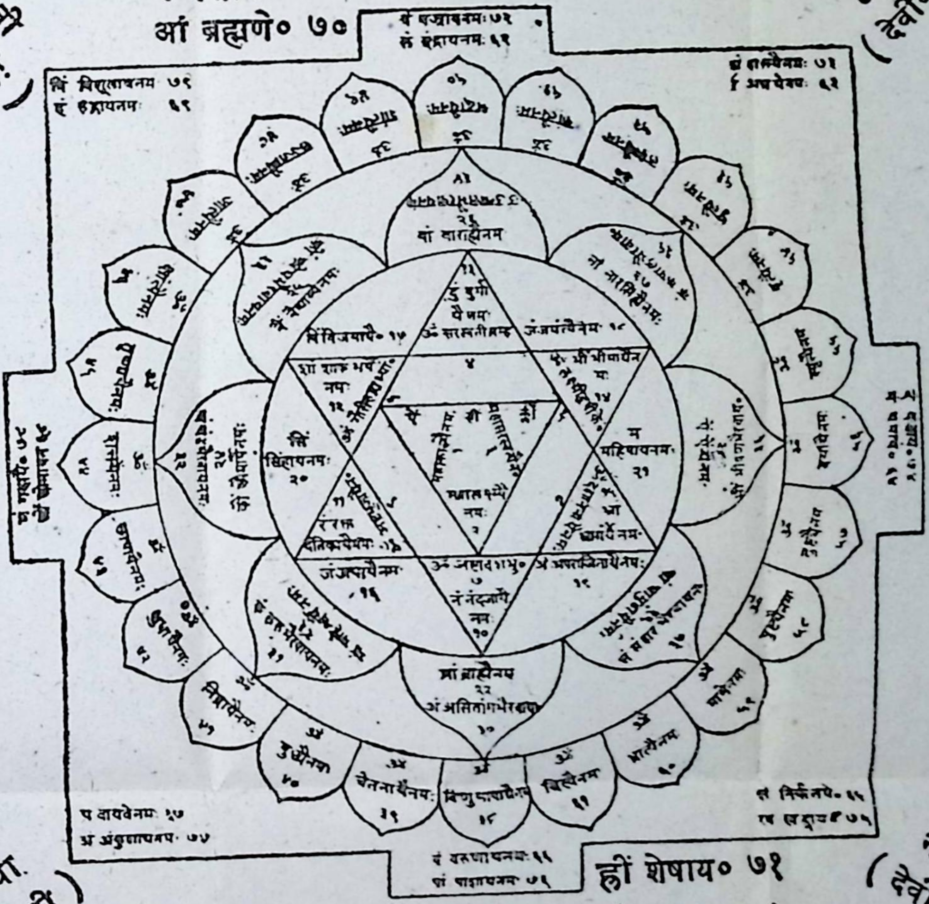

दक्षिणा (देव्युत्तरा)

यों योगिनीभ्योनमः ८५

पं ध्व्या (देव्याग्नेयी)

ह्रीं शेषाय० ७१

चं चक्राय० ८१

नैर्ऋतिः (देवीशानी)

ॐ गं गणपतयेनमः ८२

पश्चिमा (देवीप्राक्)

पुष्पाञ्जलिः–

दुर्गे

स्वस्थैः

दारिद्र्य

सर्वोपक

प्रदक्षिणा—

नमस्ते

नमस्ते

साष्टांगप्रणामः

नमः

साष्टांगो

प्रार्थना—

पुत्रान् दे

अन्यांश्च

विसर्जनम्—

इमां पूजां

रक्षार्थं त्व

अथ सप्तश्लोकी दुर्गा

शिव उवाच—

देवि त्वं भक्तसुलभे सर्वकार्यविधायिनि ।
कलौ हि कार्यसिद्ध्यर्थमुपायं ब्रूहि यत्नतः ॥

देव्युवाच—

शृणु देव प्रवक्ष्यामि कलौ सर्वेष्टसाधनम् ।
मया तवैव स्नेहेनाप्यम्बास्तुतिः प्रकाश्यते ॥

ॐ अस्य श्रीदुर्गासप्तश्लोकीस्तोत्रमन्त्रस्य नारायण ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः श्रीदुर्गाप्रीत्यर्थं सप्तश्लोकीदुर्गापाठे विनियोगः ।

ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥ १ ॥

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥ २ ॥

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ ५ ॥

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥ ६ ॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥ ७ ॥

इति सप्तश्लोकी दुर्गा सम्पूर्णा

अथ दुर्गाशतनामस्तोत्रम्

दुर्गायाः शतनामानि शृणु त्वं भवगेहिनी ।
दुर्गा भवानी देवेशी विश्वनाथप्रिया शिवा ॥ १ ॥
घोरद्रंष्ट्रा करालास्या मुण्डमालाविभूषणा ।
रुद्राणी तारिणी तारा माहेशी भववल्लभा ॥ २ ॥
नारायणी जगद्धात्री महादेवप्रिया जया ।
विजया च जयाराध्या शर्वाणी हरवल्लभा ॥ ३ ॥
अजिता चाणिमा देवी लघिमा गरिमा तथा ।
महेशशक्तिर्विश्वेशी गौरी पर्वतनन्दिनी ॥ ४ ॥

भगवान् शिव ने संसाररूपी घर में निवास करनेवाली पार्वती से कहा, हे पार्वती ? दुर्गा देवी के सौ नामों को तुम सुनो—

१ दुर्गा, २ भवानी, ३ देवेशी, ४ विश्वनाथप्रिया, ५ शिवा, ६ घोरदंष्ट्रा, (भयानक दाँतोंवाली), ७ करालास्या (भयानक मुखवाली), ८ मुण्डमाला विभूषणा (मुण्डों की माला से सुशोभित), ९ रुद्राणी (रुद्र की शक्ति), १० तारिणी, ११ तारा, १२ माहेश्वरी, १३ भववल्लभा (शिव की पत्नी), १४ नारायणी (भगवान् विष्णु की आदिशक्ति), १५ जगद्धात्री (संसार को धारण करनेवाली), १६ महादेवप्रिया, १७ जया (जय को प्रदान करनेवाली), १८ विजया (विजय को देनेवाली), १९ जयाराध्या, २० शर्वाणी, २१ हरवल्लभा, २२ अजिता, २३ अणिमा (अणु के रूप में रहनेवाली), २४ देवी, २५ लघिमा (लघु के रूप में रहनेवाली), २६ गरिमा (गुरु भाव से रहनेवाली), २७ महेशशक्ति, २८ विश्वेशी, २९ गौरी, ३० पर्वतनन्दिनी (हिमालय की कन्या), ३१ नित्या (कभी भी नाश नहीं होनेवाली), ३२

नित्या च निष्कलङ्का च निरीहा नित्यनूतना ।
रक्ता रक्तमुखी वाणी वसुयुक्ता वसुप्रदा ॥ ५ ॥
रामप्रिया रामरता रघुनाथवरप्रदा ।
राज्येश्वरी राज्यरता कृष्णा कृष्णवरप्रदा ॥ ६ ॥
यशोदा राधिका चण्डी द्रौपदी रुक्मिणी तथा ।
गुहप्रिया गुहरता गुहवंशविलाशिनी ॥ ७ ॥
गणेश जननी माता विश्वरूपा च जाह्नवी ।
गङ्गा काली च काशी च भैरवी भुवनेश्वरी ॥ ८ ॥
निर्मला च सुगन्धा च देवकी देवपूजिता ।
दक्षजा दक्षिणा दक्षा दक्षयज्ञविनाशिनी ॥ ९ ॥
सुशीला सुन्दरी सौम्या मातङ्गी कमला कला ।

निष्कलङ्का (कलङ्क से रहित). ३३ निरीहा (बिना इच्छा वाली), ३४ नित्यनूतना, ३५ रक्ता (लाल स्वरूपवाली), ३६ रक्तमुखी (लाल मुख-वाली, ३७ वाणी (वाग्देवी), ३८ वसुयुक्ता (धन से परिपूर्ण) ३९ वसुप्रदा (धन को देनेवाली), ४० रामप्रिया, ४१ रामरता, ४२ रघुनाथवरप्रदा (रामचन्द्र को वर देनेवाली), ४३ राज्येश्वरी, ४४ राज्यरता, ४५ कृष्णा (कालेरूपवाली), ४६ कृष्णवरप्रदा (कृष्ण को वर देनेवाली), ४७ यशोदा, ४८ राधिका, ४९ चण्डी (चण्ड नामक राक्षस का वध करनेवाली), ५० द्रौपदी, ५१ रुक्मिणी, ५२ गुहप्रिया, ५३ गुहरता, ५४ गुहवंशविलासिनी, ५५ गणेशजननी (गणेश की माता), ५६ माता, ५७ विश्वरूपा, ५८ जाह्नवी (जह्नु ऋषि की कन्या), ५९ गङ्गा, ६० काली, ६१ काशी, ६२ भैरवी, ६३ भुवनेश्वरी, ६४ निर्मला, ६५ सुगन्धा, ६६ देवकी, ६७ देवपूजिता, ६८ दक्षजा, ६९ दक्षिणा, ७० दक्षा, ७१ दक्षयज्ञविनाशिनी, ७२ सुशीला, ७३ सुन्दरी, ७४ सौम्या, ७५ मातङ्गी, ७६ कमला, ७७

निशुम्भनाशिनी शुम्भनाशिनी चण्डनाशिनी ॥१०॥
धूम्रलोचनसंहत्री महिषासुरमर्दिनी ।
उमा गौरी कराला च कामिनी विश्वमोहिनी ॥११॥
इत्येवं शतनामानि कथितानि वरानने ।
नामस्मरणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥१२॥
यः पठेत् प्रातरुत्थाय स्मृत्वा दुर्गा पदद्वयम् ।
मुच्यते जन्मबन्धेभ्यो नात्र कार्या विचारणा ॥१३॥
सन्ध्याकाले दिवाभागे निशायां वा निशामुखे ।
पठित्वा शतनामानि मन्त्रसिद्धिं लभेद् ध्रुवम् ॥१४॥

कला, ७८ निशुम्भनाशिनी, ७९ शुम्भनाशिनी, ८० चण्डनाशिनी, ८१ धूम्रलोचन संहत्री, ८२ महिषासुरमर्दिनी, ८३ उमा, ८४ गौरी (शिव की शक्ति), ८५ कराला, ८६ कामिनी, ८७ विश्वमोहनी, (इसमें १३ नामों की गिनती नहीं की गई है, जिसको 'कराला च' इसमें समुच्चयार्थक च शब्द के द्वारा निम्न इन नामों को समझना चाहिये ।) ८८ क्षमा, ८९ त्रिनेत्रा, ९० शूलधारिणी, ९१ पिनाकधारिणी, ९२ बुद्धि, ९३ लक्ष्मी, ९४ मधु-कैटभनाशिनी, ९५ श्रद्धा, ९६ कान्ति, ९७ मोहरात्रि, ९८ भद्रकाली, ९९ विष्णुमाया, १०० निद्रा ।

हे उत्तम मुखवाली पार्वती ! इस प्रकार सौ नामों का उल्लेख किया गया है । इन नामों के स्मरणमात्र से ही मानव जीवन मुक्त हो जाता है । जो प्रातःकाल उठकर 'दुर्-गा' इन पदों का स्मरण करके इस शतनाम का पाठ करता है, वह निश्चय ही जन्म-मरण रूपी बन्धन से मुक्त हो जाता है । इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । सन्ध्या समय, दिन में, रात में या रात के प्रथम प्रहर में जो इन सौ नामों का पाठ करता है, उसे अवश्य ही मंत्र की सिद्धि मिलती है ।

अज्ञात्वा स्तवराजं च दशविद्या भवेद् यदि ।
तथापि नैव सिद्धिः स्यात् सत्यं सत्यं महेश्वरि ॥१५॥

दुर्गाशतनामस्तोत्र समाप्त

—:०:—

यदि मनुष्य दस विद्याओं को जानते हुए भी इस महास्तोत्र को न जानता हो तो हे महेश्वरि ! उसे सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती है, यह ध्रुव सत्य है ॥ १–१५ ॥

इति दुर्गाशतनामस्तोत्रं समाप्तम् ।

—:०:—

श्रीदुर्गाऽष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

ईश्वर उवाच

शतनाम प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने ।
यस्य प्रसादमात्रेण दुर्गा प्रीता भवेत् सती ॥ १ ॥
ॐ सती साध्वी भवप्रीता भवानी भवमोचनी ।
आर्या दुर्गा जया चाद्या त्रिनेत्रा शूलधारिणी ॥ २ ॥
पिनाकधारिणी चित्रा चण्डघण्टा महातपाः ।
मनो बुद्धिरहंकारा चित्तरूपा चिता चितिः ॥ ३ ॥
सर्वमन्त्रमयी सत्ता सत्यानन्दस्वरूपिणी ।
अनन्ता भाविनी भाव्या भव्याभव्या सदागतिः ॥ ४ ॥
शाम्भवी देवमाता च चिन्ता रत्नप्रिया सदा ।
सर्वविद्या दक्षकन्या दक्षयज्ञविनाशिनी ॥ ५ ॥

श्री महादेवजी ने कहा—हे कमल के समान नेत्रवाली पार्वती ! मैं अष्टोत्तर शतनाम को कहता हूं, उसे तुम सुनो। जिस अष्टोत्तर शतनाम के पाठ या श्रवण मात्र से ही सती दुर्गा देवी प्रसन्न हो जाती हैं।

१ सती, २ साध्वी, ३ भवप्रीता, ४ भवानी, ५ भवमोचिनी, ६ आर्या, ७ दुर्गा, ८ जया, ९ आद्या, १० त्रिनेत्रा, ११ शूलधारिणी, १२ पिनाकधारिणी, १३ चित्रा, १४ चण्डघण्टा, १५ महातपाः (घोर तपस्या करनेवाली), १६ मन (चिन्तनशक्ति), १७ बुद्धि (बोधन शक्ति), १८ अहंकार (अहं भाव का आश्रय देनेवाली, १९ चित्तरूपा, २० चिता, २१ चितिः (चेतना), २२ सर्वमन्त्रमयी, २३ सत्ता, २४ सत्यानन्दरूपिणी, २५ अनन्ता, २६ भाविनी, २७ भाव्या, २८ भव्या, २९ अभव्या, ३० सदागतिः, ३१ शाम्भवी, ३२ देवमाता, ३३ चिन्ता, ३४ रत्नप्रिया, ३५ सर्वविद्या, ३६ दक्षकन्या, ३७ दक्षयज्ञविनाशिनी।

अपर्णानेकवर्णा च पाटला पाटलावती ।
पट्टाम्बरपरीधाना कलमञ्जीररञ्जिनी ॥ ६ ॥
अमेयविक्रमा क्रूरा सुन्दरी सुरसुन्दरी ।
वनदुर्गा च मातङ्गी मतङ्गमुनिपूजिता ॥ ७ ॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री कौमारी वैष्णवी तथा ।
चामुण्डा चैव वाराही लक्ष्मीश्च पुरुषाकृतिः ॥ ८ ॥
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया नित्या च बुद्धिदा ।
बहुला बहुलप्रेमा सर्ववाहनवाहना ॥ ९ ॥
निशुम्भशुम्भहननी महिषासुरमर्दिनी ।
मधुकैटभहन्त्री च चण्डमुण्डविनाशिनी ॥१०॥
सर्वासुरविनाशा च सर्वदानवघातिनी ।
सर्वशास्त्रमयी सत्या सर्वास्त्रधारिणी तथा ॥११॥
अनेकशस्त्रहस्ता च अनेकास्त्रस्य धारिणी ।
कुमारी चैककन्या च कैशोरी युवती यतिः ॥१२॥

---

३८ अपर्णा, ३९ अनेकवर्णा, ४० पाटला (रक्तवर्णवाली), ४१ पाटलावती, ४२ पट्टाम्बर परीधाना, ४३ कलमञ्जीररञ्जिनी, ४४ अमेयविक्रमा (अत्यन्तशक्तिवाली), ४५ क्रूरा (दैत्यों के प्रति कठोर), ४६ सुन्दरी, ४७ सुरसुन्दरी, ४८ नवदुर्गा, ४९ मातङ्गी, ५० मतङ्गमुनि पूजिता, ५१ ब्राह्मी, ५२ माहेश्वरी, ५३ ऐन्द्री, ५४ कौमारी, ५५ वैष्णवी, ५६ चामुण्डा, ५७ वाराही, ५८ लक्ष्मी, ५९ पुरुषाकृति, ६० विमला, ६१ उत्कर्षिणी, ६२ ज्ञाना, ६३ क्रिया, ६४ नित्या, ६५ बुद्धिदा, ६६ वहुला, ६७ बहुलप्रेमा, ६८ सर्ववाहन वाहना, ६९ निशुम्भहननी, ७० महिषासुरमर्दिनी, ७१ मधुकैटभहन्त्री, ७२ चण्डमुण्डविनाशिनी, ७३ सर्वासुरविनाशा, ७४ सर्वदानवघातिनी, ७५ सर्वशास्त्रमयी, ७६ सत्या, ७७ सर्वास्त्रधारिणी, ७८ अनेकशस्त्रहस्ता, ७९ अनेकास्त्रधारिणी, ८० कुमारी, ८१ एककन्या, ८२ कैशोरी, ८३ युवती, ८४ यति ।

अप्रौढा चैव प्रौढा च वृद्धमाता बलप्रदा ।
महोदरी मुक्तकेशी घोररूपा महाबला ॥१३॥
अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्रिस्तपस्विनी ।
नारायणी भद्रकाली विष्णुमाया जलोदरी ॥१४॥
शिवदूती कराली च अनन्ता परमेश्वरी ।
कात्यायनी च सावित्री प्रत्यक्षा ब्रह्मवादिनी ॥१५॥
य इदं प्रपठेन्नित्यं दुर्गानामशताष्टकम् ।
नासाध्यं विद्यते देवि त्रिषु लोकेषु पार्वति ॥१६॥
धनं धान्यं सुतं जायां हयं हस्तिनमेव च ।
चतुर्वर्गं तथा चान्ते लभेन्मुक्तिं च शाश्वतीम् ॥१७॥
कुमारीं पूजयित्वा तु ध्यात्वा देवीं सुरेश्वरीम् ।
पूजयेत् परया भक्त्या पठेन्नामशताष्टकम् ॥१८॥

---

८५ अप्रौढा, ८६ प्रौढा, ८७ वृद्धमाता, ८८ बलप्रदा, ८९ महोदरी, ९० मुक्तकेशी, ९१ घोररूपा, ९२ महाबला, ९३ अग्निज्वाला, ९४ रौद्रमुखी, ९५ कालरात्रि, ९६ तपस्विनी, ९७ नारायणी, ९८ भद्रकाली, ९९ विष्णुमाया, १०० जलोदरी, १०१ शिवदूती, १०२ कराली, १०३ अनन्ता, १०४ परमेश्वरी, १०५ कात्यायनी, १०६ सावित्री, १०७ प्रत्यक्षा, १०८ ब्रह्मवादिनी ॥१–१५॥

हे पार्वती ! इस दुर्गाष्टोत्तरशतनाम का जो प्रत्येक दिन पाठ करता है, उसके लिये तीनों लोकों में कुछ भी असाध्य नहीं है ॥ १६ ॥

धन, धान्य, पुत्र, स्त्री, घोड़ा, हाथी तथा चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को प्राप्त करता है । अन्त में वह शाश्वती मुक्ति को भी प्राप्त कर लेता है ॥ १७ ॥

कुमारी की पूजा करके देवी सुरेश्वरी का ध्यान करते हुए भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये । तत्पश्चात् अष्टोत्तरशतनाम का पाठ करना चाहिये ॥१८॥

तस्य सिद्धिर्भवेद् देवों सर्वैः सुरवरैरपि ।
राजानो दासतां यान्ति राज्यश्रियमवाप्नुयात् ॥१९॥

गोरोचनालक्तककुङ्कुमेन
सिन्दूरकर्पूरमधुत्रयेण ।
विलिख्य यन्त्रं विधिना विधिज्ञो
भवेत् सदा धारयते पुरारिः ॥२०॥

भौमावास्यानिशामग्रे चन्द्रे शतभिषां गते ।
विलिख्य प्रपठेत् स्तोत्रं स भवेत् संपदां पदम् ॥२१॥

इति श्रीविश्वसारतन्त्रे दुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं समाप्तम् ।

हे देवी ! इस प्रकार जो पाठ करता है, उसको सभी बेवताओं के द्वारा भी सिद्धि मिलती है। राजा लोग भी उसके दास वन जाते हैं और राज्य-लक्ष्मी भी उसे स्वयं मिल जाती है ॥ १९ ॥

गोरोचन, लाक्षा, कुङ्कम, सिन्दूर, कपूर, मधुत्रय (घी या दूध, चीनी, मधु) इन सब चीजों को एकत्र करके विधिपूर्वक यन्त्र लिखकर धारण करने से मनुष्य शिवलोक को प्राप्त करता है ॥ २० ॥

सोमवती अमावश्या को आधीरात में जब चन्द्रमा शतभिषा नक्षत्र पर विद्यमान रहे उस समय इस स्तोत्र को लिखकर पाठ करने से मनुष्य सम्पत्ति-शाली वन जाता है ॥ २१ ॥

दुर्गा का अष्टोत्तर शतनाम समाप्त

अथ देव्याः कवचम्

ॐ अस्य श्रीचण्डीकवचस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, चामुण्डा
वता, अङ्गन्यासोक्तमातरो बीजम्, दिग्बन्धदेवतास्तत्त्वम्, श्री
गदम्बाप्रीत्यर्थे सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः।

ॐ नमश्चण्डिकायै।

मार्कण्डेय उवाच

ॐ यद्गुह्यं परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम्।
यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

अस्ति गुह्यतमं विप्र सर्वभूतोपकारकम्।
देव्यास्तु कवचं पुण्यं तच्छृणुष्व महामुने ॥ २ ॥

(कवच का पाठ सप्तशती पाठ का मुख्य अङ्ग है। कवच का अर्थ है, ङ्गरक्षक। जिस प्रकार युद्ध-क्षेत्र में जाने के पहले कवच का धारण करना रीर रक्षा के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना सफलता प्राप्त करना सम्भव हो जाता है। ठीक उसी तरह सप्तशती पाठ के पहले कवच का ाठ करना सफलता के लिये आवश्यक है। कहा भी है—

'चपेत् सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा तु कवचं पुरा।
निर्विघ्नेन तु भवेत् सिद्धिश्चण्डी जपसमुद्भवा ॥)

चण्डिका देवी को नमस्कार है। किसी समय मार्कण्डेय ऋषि ने ब्रह्माजी पूछा—हे ब्रह्मन्? मुझे ऐसा कवच बताइये जो अब तक गुप्त हो और प्राणियों की रक्षा कर सकता हो ॥ १ ॥

यह सुनकर ब्रह्माजी ने कहा—हे ब्रह्मन्! अब तक अन्यन्त गुप्त और सार के सभी प्राणियों का उपकार करनेवाला परमपुनीत देवी कवच है, महामुने! उसे आप सुनें ॥ २ ॥

प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी ।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ॥ ३ ॥
पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च ।
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम् ॥ ४ ॥
नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः ।
उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना ॥ ५ ॥
अग्निना दह्यमानस्तु शत्रुमध्ये गतो रणे ।
विषमे दुर्गमे चैव भयार्ताः शरणं गताः ॥ ६ ॥
न तेषां जायते किंचिदशुभं रणसंकटे ।
नापदं तस्य पश्यामि शोकदुःखभयं न हि ॥ ७ ॥
यैस्तु भक्त्या स्मृता नूनं तेषां वृद्धिः प्रजायते ।
ये त्वां स्मरन्ति देवेशि रक्षसे तान्न संशयः ॥ ८ ॥

पहली शैलपुत्री, दूसरी ब्रह्मचारिणी, तीसरी चन्द्रघण्टा चौथी कुष्माण्डा, पाँचवीं स्कन्दमाता, छठवीं कात्यायनी, सातवीं कालरात्रि, आठवीं महागौरी और नवमी सिद्धिदात्री ये नव दुर्गा हैं। इन नामों को ब्रह्माजी ने स्वयं कहा था ॥ ३–५ ॥

यदि कोई मनुष्य अग्नि में जल रहा हो, शत्रुओं के बीच में पड़ गया हो, किसी भयानक और दुर्गम स्थान में पहुंचकर भयभीत हो रहा हो ऐसी स्थिति में मनुष्य देवी की शरण में आवे तो उसका कुछ भी अशुभ नहीं होता है। युद्ध के समय संकट आने पर उनके ऊपर कोई आपत्ति नहीं आती तथा शोक, दुःख और भय भी नहीं दिखाई देता है ॥ ६–७ ॥

जो लोग भक्तिपूर्वक देवी का स्मरण करते हैं उनकी अवश्य वृद्धि होता है। हे देवि ! जो तुम्हारा स्मरण करते हैं तुम उसकी रक्षा करती हो इसमें संशय नहीं है ॥ ८ ॥

प्रेतसंस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना ।
ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना ॥ ९ ॥
माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना ।
लक्ष्मीः पद्मासना देवी पद्महस्ता हरिप्रिया ॥१०॥
श्वेतरूपधरा देवी ईश्वरी वृषवाहना ।
ब्राह्मी हंससमारूढा सर्वाभरणभूषिता ॥११॥
इत्येता मातरः सर्वाः सर्वयोगसमन्विताः ।
नानाभरणशोभाढ्या नानारत्नोपशोभिताः ॥१२॥
दृश्यन्ते रथमारूढा देव्यः क्रोधसमाकुलाः ।
शङ्खं चक्रं गदां शक्तिं हलं च मुसलायुधम् ॥१३॥
खेटकं तोमरं चैव परशुं पाशमेव च ।
कुन्तायुधं त्रिशूलं च शार्ङ्गमायुधमुत्तमम् ॥१४॥
दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय च ।

चामुण्डा प्रेत पर बैठी हैं, वाराही भैंस पर, ऐन्द्री हाथी पर, वैष्णवी गरुड़ पर, माहेश्वरी बैल पर, कौमारी मयूर पर और भगवान् विष्णु की प्रिया लक्ष्मीजो हाथ में कमल लेकर कमलासन पर आरूढ़ हैं ॥ ९–१० ॥

श्वेतरूप को धारण की हुई ईश्वरी देवी बैल पर तथा सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित ब्रह्माणी देवी हंस पर आरूढ़ हैं । ये सभी माताएँ सब योगों से युक्त हैं, विविध प्रकार के आभूषणों से अलङ्कृत और नाना प्रकार के रत्नों से सुशोभित हैं ॥ ११–१२ ॥

सभी देवियाँ क्रोध से व्याकुल होकर रथ के ऊपर सवार दिखाई देती हैं और शंख, चक्र, गदा, शक्ति, हल, मुसल, खेटक, तोमर, परशु, पाश, भाला, त्रिशूल और उत्तम आयुध, शार्ङ्गधनुष आदि अपने हाथों में धारण करती हैं । ये देवियाँ दैत्यों का नाश करने, भक्तों को अभय दान देने तथा देवताओं का

धारयन्त्यायुधानीत्थं देवानां च हिताय वै ॥१५॥
नमस्तेऽस्तु महारौद्रे महाघोरपराक्रमे ।
महाबले महोत्साहे महाभयविनाशिनि ॥१६॥
त्राहि मां देवि दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूणां भयवर्द्धिनि ।
प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री आग्नेय्यामग्निदेवता ॥१७॥
दक्षिणेऽवतु वाराही नैर्ऋत्यां खड्गधारिणी ।
प्रतीच्यां वारुणी रक्षेद् वायव्यां मृगवाहिनी ॥१८॥
उदीच्यां पातु कौमारी ऐशान्यां शूलधारिणी ।
ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा ॥ १९ ॥
एवं दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना ।
जया मे चाग्रतः पातु विजया पातु पृष्ठतः ॥ २० ॥
अजिता वामपार्श्वे तु दक्षिणे चापराजिता ।
शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता ॥ २१ ॥
मालाधरी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद् यशस्विनी ।
त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये यमघण्टा च नासिके ॥ २२ ॥

ल्याणार्थ इन सभी शस्त्रों को धारण करती हैं ॥ १३–१५ ॥

महान् रौद्ररूप को धारण करनेवाली, अत्यन्त घोर पराक्रमवाली, महान् बल और उत्साहवाली, महान् भय को नाश करनेवाली हे देवि ! आप मेरी रक्षा करें । पूर्व दिशा में ऐन्द्री (इन्द्र की शक्ति) अग्निकोण में अग्नि देवता, दक्षिण दिशा में वाराही, नैर्ऋत्यकोण में खड्गधारिणी, पश्चिम दिशा में वारुणी और वायुकोण में मृगवाहिनी मेरी रक्षा करें ॥ १६–१८ ॥

उत्तर दिशा में कौमारी, ईशानकोण में शूलधारिणी, ऊपर से ब्राह्मणी और नीचे से वैष्णवी मेरी रक्षा करें ॥ १९ ॥

इस प्रकार दशों दिशाओं से शववाहना चामुण्डा देवी मेरी रक्षा करें । जया मेरे आगे, विजया मेरी पीठ की तरफ से रक्षा करें । बायें बगल बायीं ओर से अजिता, दाहिनी ओर से अपराजिता, शिखा की उद्योतिनी, मस्तक की उमा, ललाट की मालाधरी, भौंहों की यशस्विनी, भौंहो के बीच में त्रिनेत्रा, यमघण्टा देवी नासिका की ।

शङ्खिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोर्द्वारवासिनी ।
कपोलौ कालिका रक्षेद् कर्णमूले तु शाङ्करी ॥ २३ ॥
नासिकायां सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका ।
अधरे चामृतकला जिह्वायां च सरस्वती ॥ २४ ॥
दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठदेशे तु चण्डिका ।
घण्टिकां चित्रघण्टा च महामाया च तालुके ॥ २५ ॥
कामाक्षी चिबुकं रक्षेद् वाचं मे सर्वमङ्गला ।
ग्रीवायां भद्रकाली च पृष्ठवंशे धनुर्धरी ॥ २६ ॥
नीलग्रीवा बहिःकण्ठे नलिकां नलकूबरी ।
स्कन्धयोः खड्गिनी रक्षेद् बाहू मे वज्रधारिणी ॥ २७ ॥
हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चाङ्गुलीषु च ।
नखाञ्छूलेश्वरी रक्षेत्कुक्षौ रक्षेत्कुलेश्वरी ॥ २८ ॥

आँखों के बीच में शंखिनी, कानों के बीच की द्वारवासिनी, दोनों कपोलों की कालिका, कान की जड़ में शाङ्करी, नासिका में सुगन्धा, ऊपर के होंठ पर चर्चिका, अधर में अमृतकला, जिह्वा में सरस्वती, दाँतों की कौमारी और चण्डिका कण्ठ देश की रक्षा करें। चित्रघण्टा गले की घाँटी और महामाया तालु की रक्षा करें ॥ २०–२५ ॥

कामाक्षी ढोढी की और सर्वमङ्गला वाणी की रक्षा करें। भद्रकाली गर्दन की तथा धनुर्धरी पीठ की रक्षा करें। कण्ठ के बाहरी भाग में नीलग्रीवा, नलियों की नलकूबरी, दोनों कन्धे की खड्गिनी और दोनों भुजाओं की वज्रधारिणी रक्षा करें ॥ २६–२७ ॥

दण्डिनी मेरे दोनों हाथों की रक्षा करें। अम्बिका अङ्गुलियों की रक्षा करें। शूलेश्वरी नाखूनों की और कुलेश्वरी कुक्षि (पेट) में रहकर रक्षा करें ॥ २८ ॥

स्तनौ रक्षेन्महादेवी मनःशोकविनाशिनी ।
हृदये ललिता देवी उदरे शूलधारिणी ॥ २९ ॥
नाभौ च कामिनी रक्षेद् गुह्यं गुह्येश्वरी तथा ।
पूतना कामिका मेढ्रं गुदे महिषवाहिनी ॥ ३० ॥
कट्यां भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी ।
जङ्घे महाबला रक्षेत्सर्वकामप्रदायिनी ॥ ३१ ॥
गुल्फयोर्नारसिंही च पादपृष्ठे तु तैजसी ।
पादाङ्गुलीषु श्री रक्षेत्पादाधस्तलवासिनी ॥ ३२ ॥
नखान् दंष्ट्राकराली च केशांश्चैवोर्ध्वकेशिनी ।
रोमकूपेषु कौबेरी त्वचं वागीश्वरी तथा ॥ ३३ ॥
रक्तमज्जावसामांसान्यस्थिमेदांसि पार्वती ।
अन्त्राणि कालरात्रिश्च पित्तं च मुकुटेश्वरी ॥ ३४ ॥

मन के शोक को नाश करनेवाली महादेवी मेरे दोनों स्तनों की रक्षा करें। ललिता देवी हृदय और शूलधारिणी उदर में रक्षा करें। कामिनी नाभि भाग की, गुह्येश्वरी गुह्यस्थान की, पूतना और कामिनी लिङ्ग की तथा महिषवाहिनी गुदा की रक्षा करें ॥ २९–३० ॥

भगवती कमर में और विन्ध्यवासिनी घुटनों की रक्षा करें। सभी कामनाओं को देनेवाली महाबला दोनों मेरी जाँघों की रक्षा करें। दोनों घुट्ठियों की नारसिंही, दोनों चरणों के नीचे भाग की तैजसी, पैरों की अङ्गुलियों की श्री देवी और पैरों के तलुओं में रहकर तलवासिनी देवी मेरी रक्षा करें ॥ ३१–३२ ॥

दंष्ट्राकराली देवी नखों की रक्षा करें। केशों की रक्षा ऊर्ध्वकेशिनी करें। कौमारी रोमछिद्रों की रक्षा करें, वागीश्वरी चमरे की रक्षा करें। रक्त, मज्जा, वसा, मांस, हड्डी और मेद की रक्षा पार्वती करें। आतों की कालरात्रि और पित्त की मुकुटेश्वरी रक्षा करें ॥ ३३–३४ ॥

पद्मावती पद्मकोशे कफे चूडामणिस्तथा ।
ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसन्धिषु ॥ ३५ ॥
शुक्रं ब्रह्माणी मे रक्षेच्छायां छत्रेश्वरी तथा ।
अहंकारं मनो बुद्धिं रक्षेन्मे धर्मधारिणी ॥ ३६ ॥
प्राणापानौ तथा व्यानमुदानं च समानकम् ।
वज्रहस्ता च मे रक्षेत्प्राणं कल्याणशोभना ॥ ३७ ॥
रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च योगिनी ।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव रक्षेन्नारायणी सदा ॥ ३८ ॥
आयू रक्षतु वाराही धर्मं रक्षतु वैष्णवी ।
यशः कीर्तिं च लक्ष्मीं च धनं विद्यां च चक्रिणी ॥ ३९ ॥
गोत्रमिन्द्राणि मे रक्षेत्पशून्मे रक्ष चण्डिके ।
पुत्रान् रक्षेन्महालक्ष्मीर्भार्यां रक्षतु भैरवी ॥ ४० ॥

पद्मावती कमलकोश में, चूडामणि कफ की, ज्वालामुखी नखों के समूह की रक्षा करें। समस्त सन्धियों में रहकर अभेद्या देवी रक्षा करें। ब्रह्माणी मेरे वीर्य की रक्षा करें। छत्रेश्वरी, छाया और धर्मधारिणी देवी अहङ्कार, मन और बुद्धि की रक्षा करें ॥ ३५–३६ ॥

प्राण, अपान, व्यान, उदान तथा समान इन पाँचों वायुओं की और प्राणवायु की बज्रहस्ता देवी रक्षा करें। रस, रूप, गन्ध तथा स्पर्श की योगिनी देवी रक्षा करें। नारायणी सत्व, रज और तमोगुण की रक्षा करें। वाराही देवी आयु की तथा वैष्णवी धर्म की रक्षा करें। चक्रिणी देवी यश, कीर्ति, लक्ष्मी, धन तथा विद्या की रक्षा करें ॥ ३७–३९ ॥

हे इन्द्राणि ! आप मेरे गोत्र की रक्षा करें। चण्डिके ! आप मेरे पशुओं की रक्षा करें। महालक्ष्मी पुत्रों की, भैरवी पत्नी की, सुपथा मेरे पथ और

पन्थानं सुपथा रक्षेन्मार्गं क्षेमङ्करी तथा।
राजद्वारे महालक्ष्मीर्विजया सर्वतः स्थिता ॥ ४१ ॥
रक्षाहीनं तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन तु।
तत्सर्वं रक्ष मे देवि जयन्ती पापनाशिनी ॥ ४२ ॥
पदमेकं न गच्छेत्तु यदीच्छेच्छुभमात्मनः।
कवचेनावृतो नित्यं यत्र यत्रैव गच्छति ॥ ४३ ॥
तत्र तत्रार्थलाभश्च विजयः सार्वकामिकः।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम्।
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यते भूतले पुमान् ॥ ४४ ॥
निर्भयो जायते मर्त्यः संग्रामेष्वपराजितः।
त्रैलोक्ये तु भवेत्पूज्यः कवचेनावृतः पुमान् ॥ ४५ ॥

क्षेमङ्करी मार्ग की रक्षा करें। महालक्ष्मी राजद्वार में रहकर मेरी रक्षा करें। विजया सब तरफ से विद्यमान रहती हुई मेरी रक्षा करें ॥ ४०–४१ ॥

इसके अतिरिक्त भी जो स्थान हैं, कवच में जिसकी गणना नहीं की जा सकी है, पापों को नाश करनेवाली विजयशालिनी देवी उन सबों की रक्षा करें। अपना कल्याण चाहनेवाले को उचित है कि वह विना कवच पाठ के एक कदम भी न चले। सदा कवच से आवृत रहता हुआ मनुष्य जहाँ कहीं भी जाता है वहाँ उसे धन प्राप्त होता है एवं सभी प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति तथा विजय की प्राप्ति होती है। वह मनुष्य जिस किसी वस्तु की इच्छा करता है वह प्राप्त होती है, वह इसी भूमि पर अतुल ऐश्वर्य प्राप्त कर लेता है ॥ ४२–४४ ॥

कवच से सुरक्षित मनुष्य निर्भय हो जाता है। संग्राम में उसकी जीत होती है तथा तीनों लोकों में वह पूजनीय होता है ॥ ४५ ॥

इदं तु देव्याः कवचं देवानामपि दुर्लभम् ।
यः पठेत्प्रयतो नित्यं त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः ॥ ४६ ॥
दैवी कला भवेत्तस्य त्रैलोक्येष्वपराजितः ।
जीवेद् वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः ॥ ४७ ॥
नश्यन्ति व्याधयः सर्वे लूताविस्फोटकादयः ।
स्थावरं जङ्गमं चैव कृत्रिमं चापि यद्विषम् ॥ ४८ ॥
अभिचाराणि सर्वाणि मन्त्रयन्त्राणि भूतले ।
भूचराः खेचराश्चैव जलजाश्चोपदेशिका ॥ ४९ ॥
सहजा कुलजा माला डाकिनी शाकिनी तथा ।
अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महाबलाः ॥ ५० ॥

देवी का यह कवच देवताओं के लिये भी दुर्लभ है। जो मनुष्य प्रयत्न से और श्रद्धा पूर्वक तीनों समय इस कवच का पाठ करता है, उसे दैवी बल प्राप्त होता है तथा तीनों लोकों में किसी से भी वह पराजित नहीं होता है। सौ वर्ष से भी अधिक जीता है, किसी तरह उनकी अकाल मृत्यु नहीं होती है ॥ ४६–४७ ॥

लूता (दाद आदि चर्म रोग), चेचक आदि सभी बिमारियाँ नष्ट हो जाती हैं। भाँग धतूरे आदि स्थावर विष, साँप और बिच्छु आदि काटने से चढ़ा हुआ जङ्गमविष, अफीम एवं तेल और मधु एवं घी के संयोग से बनने-वाला कृत्रिम विष, ये सभी प्रकार के विष दूर हो जाते हैं। उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है ॥ ४८ ॥

पृथ्वी पर सभी मारण-मोहन आदि अभिचारिक तान्त्रिक प्रयोग तथा जितने भी तन्त्र, मंत्र आदि सभी इस कवच को धारण करनेवाले को देखकर नष्ट हो जाते हैं। पृथ्वी पर विचरण करनेवाले ग्राम देवता, आकाशगामी देवगण, जल में उत्पन्न होनेवाले हिंसक जन्तु, उपदेश मात्र से सिद्ध होनेवाले

ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।
ब्रह्मराक्षसवेतालाः कूष्माण्डा भैरवादयः ॥ ५१ ॥
नश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते ।
मानोन्नतिर्भवेद् राज्ञस्तेजोवृद्धिकरं परम् ॥ ५२ ॥
यशसा वर्द्धते सोऽपि कीर्तिमण्डितभूतले ।
जपेत्सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा तु कवचं पुरा ॥ ५३ ॥
यावद्भूमण्डलं धत्ते सशैलवनकाननम् ।
तावत्तिष्ठति मेदिन्यां सन्ततिः पुत्रपौत्रिकी ॥ ५४ ॥
देहान्ते परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।
प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामायाप्रसादतः ॥ ५५ ॥

शुद्रदेवता, सहज अर्थात् कफ पित्त से उत्पन्न होनेवाले ज्वरादि रोग, कुलज (कुल देवता), कण्ठमाला (रोग विशेष), डाकिनी (चुड़ैल), शाकिनी (डाइन), आकाश में विचरण करनेवाले, घोर वलवती (डाइन) स्त्रियाँ, ग्रह, भूत, पिशाच, गन्धर्व, राक्षस, ब्रह्मराक्षस, कूष्माण्ड (देवविशेष) और भैरव आदि सभी अनिष्ट कारक देवता भी इस कवच के प्रभाव से शक्तिहीन हो जाते हैं। कवच धारण करनेवाले मनुष्य को राजा के यहाँ सम्मान मिलता है। उसके मुख की श्री वढ़ जाती है। उस व्यक्ति के यश का विस्तार पृथ्वी मण्डल में हो जाता हैं। जो व्यक्ति इस सप्तशती के पाठ करने के पहले कवच का पाठ करता है, वह जब तक पर्वत, वन आदि से युक्त पृथ्वी स्थित रहती है, तब तक पुत्र पौत्र आदि वंश परम्परा से युक्त रहता है ॥ ४९–५४ ॥

मरने के वाद उसे महामाया की कृपा से दिव्य लोक की प्राप्ति होती है।

लभते परमं रूपं शिवेन सह मोदते ॥ ॐ ॥ ५६ ॥

इति देव्याः कवचं सम्पूर्णम् ।

—:०:—

जो देवताओं को भी दुर्लभ है। वह दिव्य रूप को पाता है तथा शिवजी के साथ सदा प्रसन्न रहता है ॥ ५५–५६ ॥

—:०:—

अथार्गलास्तोत्रम्

ॐ अस्य श्री अर्गलास्तोत्रमन्त्रस्य विष्णुर्ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहालक्ष्मीर्देवता, श्रीजगदम्बाप्रीतये सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ॥

ॐ नमश्चण्डिकायै ।

मार्कण्डे उवाच

ॐ जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तुते ॥ १ ॥
जय त्वं देवि चामुण्डे जय भूतार्तिहारिणि ।
जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥

(मनुष्य अपने घर की रक्षा हेतु गृह द्वार पर अर्गला (हुड़का) लगा देते हैं, जिससे कोई भी चोर आदि घर के अन्दर आसानी से घुस नहीं पाता । ठीक इसी तरह जप, पूजा, पाठ आदि के समय मनुष्य के अन्दर विषय-वासना आदि का प्रवेश न हो सके, इसीलिए अर्गलास्तोत्र का विधान किया गया है । इस स्तोत्र के पाठ के वाद ही सप्तशती का पाठ करना चाहिये, क्योंकि इसके पाठ करने पर विषय-वासना आदि के प्रवेश के अभाव में एकाग्र चित्त होने से मातृतंत्व तक पहुंचने में पाठक को सफलता मिलती है ।)

चन्द्रिका देवी को प्रणाम है ।

मार्कण्डेय ऋषि ने कहा—जयन्ती, मङ्गला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, क्षमा, शिवा, धात्री, स्वाहा, स्वधा देवियों को प्रणाम है ॥ १ ॥

हे देवि चामुण्डे ! आपकी जय हो । प्राणियों के क्लेश को दूर करनेवाली आपकी जय हो । सवों में व्याप्त रहनेवाली देवि ! आपकी जय हो । हे कालरात्रि देवि ! आपको प्रणाम है ॥ २ ॥

मधुकैटभविद्राविविधातृवरदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ३ ॥
महिषासुरनिर्णाशि भक्तानां सुखदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ४ ॥
रक्तबीजवधे देवि चण्डमुण्डविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ५ ॥
शुम्भस्यैव निशुम्भस्य धूम्राक्षस्य च मर्दिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ६ ॥
वन्दिताङ्घ्रियुगे देवि सर्वसौभाग्यदायिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ७ ॥

मधु और कैटभ नामक दैत्य को मारनेवाली तथा ब्रह्मा को वर देनेवाल हे देवि ! तुमको प्रणाम है । तुम मुझ को रूप (परमात्मा के साथ एकता) दो, जय (परमात्मा का साक्षात्कार) दो, यश परमात्मतत्व ज्ञान से सम्पादित मोक्ष) दो तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शत्रुओं को नाश करो ॥ ३ ॥

महिषासुर को नष्ट करनेवाली तथा भक्तों को सुख देनेवाली हे देवि ! रूप दो, जय दो, यश दो तथा शत्रुओं का नाश करो ॥ ४ ॥

रक्तबीज का वध और चण्डमुण्ड का विनाश करनेवाली हे देवि ! तुम मुझको रूप दो, जय दो, यश दो तथा शत्रुओं का नाश करो ॥ ५ ॥

शुम्भ, निशुम्भ तथा धूम्राक्ष का मर्दन करनेवाली हे देवि ! तुम मुझको रूप दो, जय दो, यश दो तथा शत्रुओं का नाश करो ॥ ६ ॥

बन्दनीय चरण कमलोंवाली तथा समस्त सौभाग्य को देनेवाली हें देवि ! तुम मुझको रूप दो, जय दो, यश दो तथा शत्रुओं का संहार करो ॥ ७ ॥

अचिन्त्यरूपचरिते सर्वशत्रुविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ८ ॥
नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरितापहे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ९ ॥
स्तुवद्भ्यो भक्तिपूर्वं त्वां चण्डिके व्याधिनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १० ॥
चण्डिके सततं ये त्वामर्च्चयन्तीह भक्तितः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ११ ॥
देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १२ ॥
विधेहि द्विषतां नाशं विधेहि बलमुच्चकैः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १३ ॥

अचिन्तनीय रूप तथा चरित्रवाली और सब शत्रुओं का नाश करनेवाली हे देवि ! तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा शत्रुओं का संहार करो ॥८॥

सर्वदा भक्ति से नतमस्तक रहनेवाली तथा अपने भक्तों के पाप को नष्ट करनेवाली हे चण्डिके ! तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा शत्रुओं का नाश करो ॥ ९ ॥

भक्ति पूर्वक स्तुति करनेवाले भक्तों की सभी व्याधियाँ नष्ट करनेवाली चण्डिके ! तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा शत्रुओं का नाश करो ॥ १० ॥

हे चण्डिके ! जो लोग इस संसार में भक्ति पूर्वक तुम्हारा पूजन करते हैं, उनको तुम रूप दो, जय दो, यश दो तथा उनके शत्रुओं का नाश करो ॥११॥

हे देवि ! मुझे सौभाग्य दो, आरोग्य दो, परम सुख दो, रूप दो, जय दो, यश दो तथा मेरे शत्रुओं का नाश करो ॥ १२ ॥

हे देवि ! मुझ से द्वेष रखनेवाले को नष्ट कर दो, बल की अभिवृद्धि करो । रूप दो, जय दो, यश दो तथा मेरे शत्रुओं का नाश करो ॥ १३ ॥

विधेहि देवि कल्याणं विधेहि परमां श्रियम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १४ ॥
सुरासुरशिरोरत्ननिघृष्टचरणेऽम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १५ ॥
विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं जनं कुरु ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १६ ॥
प्रचण्डदैत्यदर्पघ्ने चण्डिके प्रणताय मे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १७ ॥
चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रसंस्तुते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १८ ॥

हे देवि ! मेरा कल्याण करो । मुझे सर्वोत्तम सम्पत्ति दो । मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा शत्रुओं का संहार करो ॥ १४ ॥

अपने पैरों पर देवता और दैत्यों के मस्तक की मणि को घिसानेवाली अम्बिके ! मुझे रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे शत्रुओं का नाश करो ॥१५॥

हे देवि ! अपने भक्तों को विद्वान्, यशस्वी तथा समृद्धिशाली बनाओ । मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा मेरे शत्रुओं का नाश करो ॥ १६ ॥

प्रचण्ड दैत्यों के घमण्ड को चूर करनेवाली चण्डिके ! विनम्र सेवक को रूप दो, जय दो, यश दो तथा उनके शत्रुओं का नाश करो ॥ १७ ॥

चार भुजाओं को धारण करनेवाली तथा चतुर्मुख ब्रह्मा के द्वारा स्तूयमान हे परमेश्वरि ! मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा मेरे शत्रुओं का संहार करो ॥ १८ ॥

कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्भक्त्या सदाम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १९ ॥
हिमाचलसुतानाथसंस्तुते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २० ॥
इन्द्राणीपतिसद्भावपूजिते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २१ ॥
देवि प्रचण्डदोर्दण्डदैत्यदर्पविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २२ ॥
देवि भक्तजनोद्दामदत्तानन्दोदयेऽम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २३ ॥
पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम् ।
तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम् ॥ २४ ॥

हे देवि ! भगवान् कृष्ण सदा तुम्हारी स्तुति करते हैं। मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा शत्रुओं का विनाश करो ॥ १९ ॥

हिमालय की लड़की पार्वती के पति भगवान् शिव के द्वारा स्तुति की जानेवाली हे परमेश्वरि ! मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा शत्रुओं का नाश करो ॥ २० ॥

इन्द्राणी के पति इन्द्र के द्वारा सद्भाव से पूजित हे परमेश्वरि ! मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा शत्रुओं का नाश करो ॥ २१ ॥

प्रचण्ड दैत्यों के भुजदण्डों के घमण्ड को नष्ट करनेवाली देवि ! मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा शत्रुओं का नाश करो ॥ २२ ॥

भक्तों को सदा असीम आनन्द देनेवाली हे देवि ! मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा शत्रुओं का नाश करो ॥ २३ ॥

हे देवि ! मनोनुकूल चलनेवाली, दुर्गम संसार रूपी सागर से उद्धार करनेवाली, किसी अच्छे कुल में उत्पन्न सुन्दर रूपवाली पत्नी मुझे दो ॥ २४ ॥

इदं स्तोत्रं पठित्वा तु महास्तोत्रं पठेन्नरः ।
स तु सप्तशतीसंख्यावरमाप्नोति सम्पदाम् ॥ २५ ॥

इति देव्याः अर्गलास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

—०:०—

जो मनुष्य इस अर्गलास्तोत्र का पाठ करके महास्तोत्र (सप्तशती) का पाठ करता है। वह सप्तशती पाठ के समान उत्तम फल को पाता है और उसे अत्यधिक सम्पत्ति मिलती है ॥ २५ ॥

अर्गलास्त्रोत समाप्त

अथ कीलकस्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीकीलकमन्त्रस्य शिव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्री-महासरस्वती देवता, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थं सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ।

ॐ नमश्चण्डिकायै ।

मार्कण्डेय उवाच

ॐ विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे ।
श्रेयःप्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्द्धधारिणे ।। १ ।।

(कीलक शब्द का साधारण अर्थ है कील-काँटा । अति प्राचीन समय में बहुत मूल्यवान् वस्तु, धन, निधि इत्यादि की सुदृढ़ रक्षा के लिए उसे सुरक्षित गुप्त स्थान में बन्दकर ऊपर से काँटा ठोंक देते थे जिससे कोई सहसा उसे निकाल न सके ।

कीलक शब्द का अर्थ यहाँ अभीष्ट सिद्धि का प्रतिबन्धक है । जिसको शाप कहते हैं । प्रायः विशिष्ट मंत्र किसी ऋषि या देवताओं द्वारा कीलित—शापित रहता है । इस अभिप्राय से नहीं कि उक्त मंत्र की सिद्धि किसी को प्राप्त न हो । किन्तु वास्तविक अभिप्राय यह है कि वह किसी अनाधिकारी के हाथ न पड़े जिससे कि अर्थ का अनर्थ न हो जाय । अत एव कीलक-शाप का यथार्थ रहस्य अधिकार का निर्णय है । साधक की आध्यात्मिक योग्यता किस प्रकार है—उसके मानसिक नियन्त्रण की क्या परिस्थिति है जिससे वह मंत्र धारण का अधिकारी हो । दुर्गासप्तशती महादेव से अभिशप्त है । अतः उस शाप के उद्धार के लिये यह कीलक स्तोत्र है ।)

चण्डिका देवी को नमस्कार है ।

मार्कण्डेय ऋषि बोले—जिनके विशुद्ध ज्ञान शरीर है, तीनों वेद जिनके तीनों नेत्र हैं तथा कल्याण प्राप्ति के जो निमित्त कारण हैं, मस्तक पर अर्ध-चन्द्ररूपी मुकुट धारण करनेवाले उन शिव को नमस्कार है ।। १ ।।

सर्वमेतद्विजानीयान्मन्त्राणामपि कीलकम् ।
सोऽपि क्षेममवाप्नोति सततं जाप्यतत्परः ॥ २ ॥
सिद्ध्यन्त्युच्चाटनादीनि वस्तूनि सकलान्यपि ।
एतेन स्तुवतां देवी स्तोत्रमात्रेण सिद्ध्यति ॥ ३ ॥
न मन्त्रं नौषधं तत्र न किञ्चिदपि विद्यते ।
विना जाप्येन सिद्ध्येत सर्वमुच्चाटनादिकम् ॥ ४ ॥
समग्राण्यपि सिद्ध्यन्ति लोकशङ्कामिमां हरः ।
कृत्वा निमन्त्रयामास सर्वमेवमिदं शुभम् ॥ ५ ॥
स्तोत्रं वै चण्डिकायास्तु तच्च गुप्तं चकार सः ।
समाप्तिर्न च पुण्यस्य तां यथावन्नियन्त्रणाम् ॥ ६ ॥

मंत्रो का जो कीलक (मंत्र की सिद्धि में विघ्न डालनेवाला अभिशापरूपी कीलक का निवारण करनेवाला) है उसे अच्छी तरह समझ करके ही पाठ करना चाहिये। जो इसको जान करके मन्त्र आदि का जप तथा पाठ करने में तत्पर रहता हैं। उसका कल्याण होता है ॥ २ ॥

उच्चाटन आदि जितने भी वह प्रयोग करता है वे सभी सिद्ध हो जाते हैं। जो मनुष्य और कुछ न करके केवल इस कीलक स्तोत्र का पाठ करता है, उसे देवी सिद्ध हो जाती हैं। जिसके पास यह कीलक स्तोत्र है, उसको न किसी मन्त्र न औषध और न जप करने की आवश्यकता है केवल इस स्तोत्र द्वारा स्तुति मात्र से ही उच्चाटन आदि क्रिया पूर्ण हो जाती है ॥ ३-४ ॥

लोगों के मत में यह जिज्ञासा हुई कि सप्तशती पाठ की तरह अन्य मंत्रों के द्वारा भी सिद्धि मिलती है तब दोनों में कौन उत्तम है। इसका समाधान करते हुए शिवजी ने कहा—सप्तशती स्तोत्र ही सबों से उत्तम एवं कल्याणप्रद है। इसके बाद शिवजी ने चण्डिका देवी के स्तोत्र को गुप्त कर दिया। यह बड़े ही पुण्य से मानव को मिलता है। इससे लोगों का अत्यधिक कल्याण होता

सोऽपि क्षेममवाप्नोति सर्वमेव न संशयः ।
कृष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहितः ॥ ७ ॥

ददाति प्रतिगृह्णाति नान्यथैषा प्रसीदति ।
इत्थंरूपेण कीलेन महादेवेन कीलितम् ॥ ८ ॥

यो निष्कीलां विधायैनां नित्यं जपति संस्फुटम् ।
स सिद्धः स गणः सोऽपि गन्धर्वो जायते नरः ॥ ९ ॥

न चैवाप्यटतस्तस्य भयं क्वापीह जायते ।
नापमृत्युवशं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १० ॥

है। दूसरे मंत्र का जप करनेवाला साधक भी यदि इस स्तोत्र का पाठ करता है तो उसे अवश्य ही कल्याण होता है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। जो मनुष्य कृष्णपक्ष की अष्टमी या चतुर्दशी तिथि में एकाग्रचित्त होकर भगवती की सेवा में तत्पर हो जाता है, अर्थात् अपना सर्वस्व अर्पण करके पुनः उसे प्रसाद बुद्धि से ग्रहण करता है उसी के ऊपर देवी प्रसन्न हो जाती है और उसका कल्याण होता है। अन्यथा सिद्धि का कोई उपायान्तर नहीं है। इसी प्रकार शिवजी ने प्रतिबन्धकरूप कील के द्वारा इस स्तोत्र को कीलित कर रक्खा है। अर्थात् इस महास्तोत्र में आये हुए प्रतिबन्ध इस कीलक पाठ से समाप्त हो जाते हैं ॥ ५–८ ॥

जो मनुष्य इसका उत्कीलन कर नित्य-प्रति शुद्ध उच्चारण करते हुए पाठ करता है, वही सिद्ध होता है, वही देवी का गण होता है तथा वही गन्धर्व भी होता है ॥ ९ ॥

वह चाहे जहाँ भी भ्रमण करे, उसे कहीं भी भय नहीं होता। उसे अकाल मृत्यु नहीं होती और मरने के बाद उमें मोक्ष मिलता है ॥ १० ॥

ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत न कुर्वाणो विनश्यति ।
ततो ज्ञात्वैव सम्पन्नमिदं प्रारभ्यते बुधैः ॥ ११ ॥
सौभाग्यादि च यत्किञ्चिद् दृश्यते ललनाजने ।
तत्सर्वं तत्प्रसादेन तेन जाप्यमिदं शुभम् ॥ १२ ॥
शनैस्तु जप्यमानेऽस्मिन् स्तोत्रे सम्पत्तिरुच्चकैः ।
भवत्येव समग्रापि ततः प्रारभ्यमेव तत् ॥ १३ ॥
ऐश्वर्यं यत्प्रसादेन सौभाग्यारोग्यसम्पदः ।
शत्रुहानिः परो मोक्षः स्तूयते सा न किं जनैः ।ॐ ॥ १४ ॥

इति देव्याः कीलकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

साधक को चाहिये कि अच्छी तरह समझकर सप्तशती का पाठ प्रारम्भ करे। बिना विधि समझे जो पाठ करता है, वह विनाश हो जाता है। इसीलिये विधि को जान करके ही विद्वान् लोग सप्तशती का पाठ प्रारम्भ करते हैं और उन्हें सिद्धि अवश्य ही मिल जाती है ॥ ११ ॥

हे देवि ! स्त्रियों में जो सौभाग्य आदि गुण हैं, वह सब तुम्हारी ही कृपा का फल है। अतः इस शुभ स्तोत्र का पाठ अवश्य ही करना चाहिये ॥१२॥

जो धीरे-धीरे (सुन्दरस्वर से) इसका पाठ करता है उसे कम फल मिलता है तथा जो ऊँचे स्वर से पाठ करता है उसे पूर्ण फल मिलता है। अतः ऊँचे स्वर से ही पाठ करना चाहिये ॥ १३ ॥

जिसकी कृपा से ऐश्वर्य, सौभाग्य, आरोग्य तथा सम्पत्ति मिलती है। शत्रु नष्ट हो जाते हैं। अन्त में मोक्ष तक भी मिल जाता है, ऐसी देवी की स्तुति क्यों न करें, अर्थात् अवश्य करनी चाहिये ॥ १४ ॥

कीलकस्तोत्र समाप्त

अथ वेदोक्तं रात्रिसूक्तम्

ॐ रात्रीत्याद्यष्टर्चस्य सूक्तस्य कुशिकः सौभरो रात्रिर्वा भारद्वाज ऋषिः रात्रिर्देवता गायत्री छन्दः देवीमाहात्म्यपाठे विनियोगः ।

ॐ रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः विश्वा अधि श्रियोऽधित ॥ १ ॥

ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्युद्वतः । ज्योतिषा बाधते तमः ॥ २ ॥

निरुस्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती । अपेदु हासते तमः ॥ ३ ॥

सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि । वृक्षे न वसतिं वयः ॥ ४ ॥

रात्रि के समान अनेकों सुखों को देनेवाली, सबों का लालन-पालन करनेवाली, अनेकों प्रकार से संसार को अपने प्रकाश से प्रकाशित करनेवाली प्रभुशक्ति अपने व्यापक शक्तियों से सम्पूर्ण सम्पदाओ को धारण करती है ॥१॥

वह कभी भी नाश नहीं होती। सभी सुखों को देती हैं। ऊपर और नीचे सभी तरफ से अत्यधिक अपने प्रकाश के द्वारा सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करती है। अपने तेज से अन्धकार का नाश करती है ॥ २ ॥

वह प्रभुशक्ति सर्वसंचालक शक्तिरूपा हैं। ऊषा के समान कान्तिवाली जीवशक्ति को अपने मार्ग पर स्वयं चलने के लिये वह शक्ति प्रदान करती है और उसके अन्धकार को दूर करती है ॥ ३ ॥

हे देवि ! तुम्हारे इस सर्वनियन्त्रित शासन में वृक्ष पर स्थित पक्षियों की तरह हम वृक्षरूपी संसार में निवास करते हैं। तुम सुख पूर्वक मेरे संकट को दूर कर दो ॥ ४ ॥

नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः। नि श्येनासश्चिदर्थिनः ।। ५ ।।

यावया वृक्यं वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये। अथा नः सुतरा भव ।। ६ ।।

उपमा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित। उपऋणेवयातय ।। ७ ।।

उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः। रात्रिस्तोमं न जिग्युषे ।। ८ ।।

इति वेदोक्तं रात्रिसूक्तं सम्पूर्णम्।

हे देवि ! तुम्हारे शासन में अनेक जन-समूह निवास करते हैं। अनेकों मनुष्य, पशु, पक्षिगण, उत्तम आचरणवाले तथा बड़े शक्तिशाली लोग तुम्हारे आश्रित हैं ।। ५ ।।

रात्रि के समान सुख देनेवाली हे प्रभुशक्ते ! चोर के समान स्वभाववाली स्त्री तथा हिंसक जानवरों को तू सदा दूर कर दो तथा सुख पूर्वक इस संसार से उद्धार कर दो ।। ६ ।।

प्रातः कालीन समय के समान कान्तिवाली हे प्रभुशक्ते ! मेरे अन्दर गाढा और काला अज्ञानरूपी अन्धकार भरा पड़ा है। तुम उसे ऋण के समान नष्ट कर दो ।। ७ ।।

सूर्य की पुत्री उषा के समान तेजवाली ! तेरी विभिन्न वाणी को मैं प्राप्त करूँ तथा स्तुति वचनों से तेरी स्तुति करूँ ।। ८ ।।

वेदोक्त रात्रिसूक्त समाप्त

—:०:—

अथ तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तम्

(रात्रिसूक्त का हिन्दी अनुवाद प्रथम अध्याय
श्लोक ७० से ८७ में देखें ।)

ॐ विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ।
स्तौमि निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारस्वरात्मिका ।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ॥ २ ॥
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ।
त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा ॥ ३ ॥
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् ।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ॥ ४ ॥
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ॥ ५ ॥
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ॥ ६ ॥
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ।
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ॥ ७ ॥
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ॥ ८ ॥

खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डी परिघायुधा ॥ ९ ॥
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ।
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥ १० ॥
यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ॥ ११ ॥
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत् ।
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥ १२ ॥
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ॥ १३ ॥
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता ।
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ॥ १४ ॥
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ।
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥ १५ ॥

इति तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तं सम्पूर्णम् ।

3654
परिग्रहण सं......

★:—:★

अथ श्रीदेव्यथर्वशीर्षम्

ॐ सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः कासि त्वं महादेवीति ॥ १ ॥

साब्रवीत्—अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च ॥ २ ॥

अहमानन्दानानन्दौ। अहं विज्ञानाविज्ञाने। अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये। अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि। अहमखिलं जगत् ॥ ३ ॥

वेदोऽहमवेदोऽहम्। विद्याहमविद्याहम्। अजाहमनजाहम्। अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्चाहम् ॥ ४ ॥

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि। अहमादित्यैरुत विश्वदेवैः। अहं मित्रावरुणावुभौ बिभर्मि। अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ ॥ ५ ॥

सभी देवता देवी के पास गये और उनसे प्रश्न किये कि हे महादेवि! तुम कौन हो ॥ १ ॥

वह बोली—मैं साक्षात् ब्रह्मस्वरूपा हूं। मुझसे ही प्रकृति और पुरुषरूप संसार की उत्पत्ति हुई है। मैं ही सत् और असत् रूपा हूं। विज्ञान और अविज्ञान रूपा भी मैं ही हूँ। जानने योग्य ब्रह्म और अब्रह्मरूपा मैं ही हूँ। मैं ही पञ्चभूत तथा अपञ्चभूत स्वरूपा हूँ। सम्पूर्ण संसाररूप मैं ही हूँ ॥ ३ ॥

वेद और अवेद मैं ही हूँ। विद्या और अविद्या मैं हूँ। प्रकृति, अप्रकृति भी मैं ही हूँ। नीचे, ऊपर अगल-बगल सब मैं ही हूँ ॥ ४ ॥

मैं ही एकादश रुद्र के रूप में विचरण करती हूँ। मैं ही सब वस्तुओं के रूप में अवस्थान करती हूँ। मैं ही विष्णु आदि द्वादश आदित्य होकर विचरण करती हूँ। मैं ही समस्त देवताओं के रूप में स्थित हूँ। मैं ही इन्द्र, अग्नि तथा दोनों अश्विनी कुमारों को धारण करती हूँ ॥ ५ ॥

3654

अहं सोमं त्वष्टारं भगं दधामि । अहं विष्णुमुरुक्रमं ब्रह्माणमुत प्रजापतिं दधामि ॥ ६ ॥

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते । अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् । अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे । य एवं वेद । स दैवीं सम्पदमाप्नोति ॥ ७ ॥

ते देवा अब्रुवन्––नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः । नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥ ८ ॥

मैं ही सोम, त्वष्टा, पूषा और भग को धारण करती हूँ । मैं ही तीनों लोकों को आक्रान्त करने के लिये पैरों को फैलानेवाले विष्णु, ब्रह्मा और प्रजापति को धारण करती हूँ ॥ ६ ॥

सोमयज्ञ के द्वारा देवताओं को तृप्त करता हूँ । उस यज्ञ का फलरूप धनादि मैं ही प्रदान करती हूँ । मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की ईश्वरी हूँ । मैं ही उपासकगण को धनादि इष्टफल को प्रदान करती हूँ ।

ब्रह्मरूप तथा उपास्य देवों में मैं ही प्रथम (प्रधान) हूँ । मैं ही आत्मस्वरूप पर आकाश निर्माण करती हूँ । आत्मस्वरूप को धारण करनेवाली वृद्धि में मेरा स्थान है । जो इस प्रकार जानता है, वह दैवी सम्पत्ति को प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

वे देवगण बोले—देवी को प्रणाम हैं । महादेवी तथा शिवा को सदा प्रणाम है । प्रकृतिरूपिणी तथा भद्रा को नियमपूर्वक हम प्रणाम करते हैं ॥ ८ ॥

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं
वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ।
दुर्गां देवीं शरणं प्रपद्या-
महेऽसुरान्नाशयित्र्यै ते नमः ॥ ९ ॥
देवीं वाचमजनयन्त देवा-
स्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना
धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ॥१०॥
कालरात्रीं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्दमातरम् ।
सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम् ॥११॥
महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि ।
तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥१२॥

अग्नि के समान रूपवाली, तपस्या के द्वारा प्रज्वलित रूपवाली तथा कर्मफल को प्राप्त करने के लिये सेवा को समझनेवाली हे देवि ! हम तुम्हारी शरण में हैं। राक्षसों का विनाश करनेवाली देवी तुम्हें प्रणाम है ॥ ९ ॥

देवताओं ने वाग्रूपिणी देवी की उत्पत्ति की, इस बात को विश्व के सभी लोग कहते हैं। वह देवी कामधेनु के समान हम लोगों को आनन्द देती हैं। अन्न और बल प्रदान करती हैं। उत्तम स्तुतियों द्वारा प्रसन्न होकर वह हम लोगों के पास आवें ॥ १० ॥

कालरात्री, ब्रह्मा के द्वारा स्तुति करनेवाली, वैष्णवी, पार्वती, सरस्वती, देवमाता अदिति, दक्षकन्या (सती) सबों को पवित्र करनेवाली तथा सबों का कल्याण करनेवाली देवी को हम प्रणाम करते हैं ॥ ११ ॥

महालक्ष्मी तथा सर्वशक्तिमयी देवी को हम लोग जानते हैं और ध्यान करते हैं, वे हमें सत्कार्य में प्रवृत्त करें ॥ १२ ॥

अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव ।
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ॥१३॥

कामो योनिः कमला वज्रपाणि-
र्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः ।
पुनर्गुहा सकला मायया च
पुरूच्यैषा विश्वमातादिविद्योम् ॥१४॥

एषाऽऽत्मशक्तिः । एषा विश्वमोहिनी । पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा । एषा श्रीमहाविद्या । य एवं वेद स शोकं तरति ॥ १५ ॥

नमस्ते अस्तु भगवति मातरस्मान् पाहि सर्वतः ॥ १६ ॥

हे दक्ष ! आपकी लड़की अदिति है । वह उत्पन्न हुई हैं । एवं उनसे देव उत्पन्न हुए हैं जो अति सौम्य तथा कभी भी मरनेवाले नहीं हैं ॥ १३ ॥

काम (क), योनि (ए), कमला (ई), वज्रपाणि--इन्द्र (ल), गुहा (ह्रीं) । ह, स—वर्ण, मातरिश्वावायु (क), अभ्र (ह), इन्द्र (लं), पुनः गुहा (ह्रीं) । स, क, ल—वर्ण और माया (ह्रीं), यह सर्वात्मिका जगन्माता की मूल विद्या है तथा यह ब्रह्मस्वरूपिणी है ॥ १४ ॥

ये आत्मशक्ति (शिवशक्ति से अभिन्नरूपवाली हैं । ये संसार को मोहनेवाली हैं । ये पाश, अङ्कुश. धनुष और वाण को धारण करती हैं । ये महाविद्या हैं । जो व्यक्ति इस तरह देवी को जानता है, वह शोक को पार कर लेता है ॥ १५ ॥

हे भगवति ! आपको नमस्कार है । माता हमारी सब तरह से रक्षा करो ॥ १६ ॥

सैषाष्टौ वसवः सैषैकादश रुद्राः । सैषा द्वादशादित्याः सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च । सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः । सैषा सत्त्वरजस्तमांसि । सैषा ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणी । सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः । सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि । कलाकाष्ठादिकालरूपिणी । तामहं प्रणौमि नित्यम् ॥

पापापहारिणीं देवीं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् ।
अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां शिवाम् ॥ १७ ॥
वियदीकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम् ।
अर्धेन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम् ॥ १८ ॥
एवमेकाक्षरं ब्रह्म यतयः शुद्धचेतसः ।
ध्यायन्ति परमानन्दमया ज्ञानाम्बुराशयः ॥ १९॥

वही देवी आठ वसु हैं । वही ग्यारह रुद्र हैं । वही द्वादश आदित्य हैं । वही विश्वदेव हैं जो सोमरस का पान करती हैं और नहीं भी करती हैं । वही यातुधान नामक राक्षस, असुर, राक्षस, पिशाच, यक्ष और सिद्ध हैं । वही सत्व, रज तमोगुण रूपा हैं । वही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के रूप को धारण करनेवाली हैं । वही प्रजापति, इन्द्र और मनु हैं । वही ग्रह, नक्षत्र और तारे हैं । कला-काष्ठादि-कालस्वरूपिणी हैं । वे पापों का विनाश करनेवाली हैं । मुक्ति और भुक्ति को देनेवाली हैं । इनका कहीं अन्त नहीं है अतः वे अनन्ता हैं, विजयरूपिणी तथा शुद्धस्वरूपा हैं । शरण में लेने योग्य, कल्याण का प्रदान करनेवाली तथा कल्याणमयी हैं । उन देवियों को हम प्रणाम करते हैं ॥ १७ ॥

वियत्—आकाश (ह) और (ई) कार से युक्त, वीतिहोत्र—अग्नि (र) से संयुक्त, अर्धचन्द्र (ँ) से विभूषित देवी का बीज मंत्र (ह्रीं) सबों की अभिला की पूर्ति करनेवाली है । इस तरह एकाक्षर ब्रह्म (ह्रीं) का शुद्ध चितवाले यति लोग ध्यान करते हैं, जो परमानन्द से युक्त तथा ज्ञान के सागर हैं । १९॥

वाङ्माया ब्रह्मसूस्तस्मात् षष्ठं वक्त्रसमन्वितम् ।
सूर्योऽवामश्रोत्रबिन्दुसंयुक्तष्टात्तृतीयकः ।
नारायणेन संमिश्रो वायुश्चाधरयुक् ततः ।
विच्चे नवार्णकोऽर्णः स्यान्महदानन्ददायकः ॥ २० ॥
हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां प्रातःसूर्यसमप्रभाम् ।
पाशाङ्कुशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम् ।
त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे ॥ २१ ॥
नमामि त्वां महादेवीं महाभयविनाशिनीम् ।
महादुर्गप्रशमनीं महाकारुण्यरूपिणीम् ॥ २२॥

वाणी (ऐं) माया (ह्रीं), ब्रह्मसू-काम (क्लीं) इसके आगे छठा व्यञ्जन (च) वही वक्त्र अर्थात् आकार से युक्त (चा), सूर्य (म), 'आवास श्रोत्र'—दक्षिणवर्ण (उ) तथा बिन्दु अर्थात् अनुस्वार से युक्त (मुं) टकार से तीसरा (ड), वही नारायण अर्थात् 'आ' से युक्त (डा), वायु (य), वही अधर अर्थात् 'ऐ' युक्त (यै) और (विच्चे) यह नवार्णमन्त्र का अर्थ है। यह साधकों के लिये अत्यन्त आनन्ददायक है ॥२०॥

हृदयरूपी कमल के मध्य में स्थित रहनेवाली, प्रातःकालीन सूर्य के समान कान्तिवाली, पाश और अङ्कुश को धारण करनेवाली, सौम्यरूपवाली, हाथों में वरदा तथा अभयमुद्रा को धारण करनेवाली, तीन नेत्रवाली, रक्त वस्त्रवाली और भक्तों की अभिलाषा को कामधेनु की तरह पूरा करनेवाली देवी को मैं भजता हूँ ॥ २१ ॥

महाभय का नाश करनेवाली, महाविपत्ति को शान्त करनेवाली, अत्यन्त दया की मूर्तिवाली, महादेवी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २२ ॥

यस्याः स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यते अज्ञेया। यस्या अन्तो न लभ्यते तस्मादुच्यते अनन्ता। यस्या लक्ष्यं नोपलक्ष्यते तस्मादुच्यते अलक्ष्या। यस्या जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यते अजा। एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका। एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका। अत एवोच्यते अज्ञेयानन्तालक्ष्याजैका नैकेति ॥ २३ ॥

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी।
यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता ॥ २४ ॥

तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचारविघातिनीम्।
नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णवतारिणीम् ॥ २५ ॥

जिसके स्वरूप को ब्रह्मा आदि नहीं जानते हैं, इसलिये वह अज्ञेया कही जाती है। जिसके अन्त का पता नहीं लगता है, इसलिये वह अनन्ता कही जाती हैं। जिसके लक्ष्य का पता नहीं लगता, अतः वह अलक्ष्या कही जाती है। जिसकी उत्पत्ति के विषय में कुछ भी मालूम नहीं पड़ता, अतः वह अजा कही जाती है। अकेली हीं सभी जगह विद्यमान रहती है; अतः वह एका कही जाती हैं। अकेली ही वह विश्वरूप में विद्यमान हैं, अतः वह नैका कही जाती है। इसलिये वह अज्ञेया, अनन्ता अलक्ष्या, एका तथा नैक कही जाती हैं ॥ २३ ॥

मन्त्रों में मातृका देवी, शब्दों में ज्ञानस्वरूपिणी, ज्ञानों में चिन्मयातीता, शून्यों में शून्यसाक्षिणी और जिनसे बढ़कर कुछ नहीं हैं वही दुर्गा देवी के नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ २४ ॥

उन दुर्विज्ञेय, दुराचार का विनाश करनेवाली, संसाररूपी समुद्र से उद्धार-करनेवाली संसार से भयभीत होकर मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २५ ॥

इदमथर्वशीर्षं योऽधीते स पञ्चाथर्वशीर्षजपफलमाप्नोति। इदमथर्वशीर्षकज्ञात्वा योऽर्चां स्थापयति-शतलक्षं प्रजप्त्वापि सोऽर्चासिद्धिं न विन्दति। शतमष्टोत्तरं चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः।

दशवारं पठेद् यस्तु सद्यः पापैः प्रमुच्यते।
महादुर्गाणि तरति महादेव्याः प्रसादतः॥ २६॥

सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायं प्रातः प्रयुञ्जानो अपापो भवति। निशीथे तुरीयसन्ध्यायां जप्त्वा वाक्सिद्धिर्भवति। नूतनायां प्रतिमायां जप्त्वा देवतासान्निध्यं भवति। प्राण-

इस अथर्वशीर्ष को जो पढ़ता है, उसे पाँचों अथर्वशीर्ष के जप का फल मिल जाता है। इस अथर्वशीर्ष को बिना जाने ही जो मूर्ति की स्थापना करता है, उसे सौ लाख जप करने पर भी अर्चासिद्धि को नहीं प्राप्त कर सकता है। इसकी १०८ पुरश्चरण की विधियाँ बताई गयीं हैं। दस बार जो इस अथर्वशीर्ष का पाठ करता है, वह तत्काल ही सभी पापों से विमुक्त हो जाता है तथा महादेवी की प्रसन्नता से महाविपत्तियों से भी छुटकारा पा जाता है॥ २६॥

इसका पाठ सन्ध्या समय किया जाय तो दिन भर के किये हुए सभी पाप नाश हो जाते हैं। रात्रि में किये हुए पाप सवेरे पाठ करने से नष्ट हो जाते हैं। सन्ध्या काल तथा सवेरे पाठ करने से मनुष्य पाप रहित हो जाता है। रात में चौथी सन्ध्या के समय जप करके मनुष्य वाणी की सिद्धि को

प्रतिष्ठायां जप्त्वा प्राणानां प्रतिष्ठा भवति। भौमाश्विन्यां महा-देवीसन्निधौ जप्त्वा महामृत्युं तरति। स महामृत्युं तरति य एवं वेद। इत्युपनिषत्॥

इति श्रीदेव्यथर्वशीर्ष सम्पूर्णम्।

—:०:—

प्राप्त करता है। नई मूर्ति के पास जप करने से देवता का सान्निध्य होता है। प्राण प्रतिष्ठा के समय जप करने से प्राणों की प्रतिष्ठा होती है।

अमृत योग के समय महादेवी के पास जप करने से मानव महामृत्यु से बच जाता है। जो व्यक्ति इनको इस प्रकार जानता है, वह महामृत्यु को पार कर लेता है।

देव्यथर्वशीर्ष समाप्त

★

अथ नवार्णमन्त्रजपविधिः

देवीकवच, अर्गलास्तोत्र, कीलक, रात्रिसूक्त और देव्यथर्वशीर्ष आदि के पाठ करने के बाद निम्नलिखित प्रकार से नवार्णमन्त्र के विनियोग, ऋष्यादिन्यास आदि करना चाहिए।

ॐ अस्य श्री नवार्णमन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयो गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, श्रीमहाकाली - महालक्ष्मी महासरस्वत्यो देवताः ऐं बीजम्, ह्रीं शक्तिः क्लीं कीलकम्, श्री महाकाली महालक्ष्मी महासरस्वतीप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

इसे पढ़कर नीचे जल गिरावे।

अथ ऋष्यादिन्यासः

'ॐ ब्रह्मविष्णुरुद्रर्षिभ्यो नमः' इस मन्त्र से शिर का, 'ॐ गायत्र्युष्णिगनुष्बुछन्दोभ्यो नमः' इस मंत्र से मुख का, 'ॐ महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः' इस मन्त्र से हृदय का, 'ॐ ऐं बीजाय नमः' इस मन्त्र से गुह्येन्द्रिय का, 'ॐ ह्रीं शक्तये नमः' इस मंत्र से दोनों पैरों का तथा 'ॐ क्लीं कीलकाय नमः' इस मन्त्र से दाहिने हाथ की अनामिका अँगुली से नाभि का स्पर्श करे। 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इस मन्त्र से हाथ की शुद्धि करे।

अथ करन्यासः

'ॐ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः' इस मन्त्र से दोनों अँगूठों का दोनों हाथों की तर्जनी अँगुलियों से स्पर्श करे। 'ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः' इस मन्त्र से दोनों तर्जनी अँगुलियों का, 'ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः' इस मन्त्र से दोनों मध्यमा अँगुलियों का, 'ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः' इस मन्त्र से दोनों अनामिका अँगुलियों का तथा 'ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः' इस मन्त्र से दोनों कनिष्ठका अँगुलियों का दोनों अँगूठों से स्पर्श करे।' 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः' इस मन्त्र से वायें हाथ की हथेली पर दाहिने हाथ के पृष्ठ भाग का स्पर्श करे।

अथ हृदयादिन्यासः

ॐ ऐं हृदयाय नमः' इस मन्त्र से हृदय का, 'ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा' इस मन्त्र से शिर का, 'ॐ क्लीं शिखायै वषट्' इस मन्त्र से दाहिने हाथ की अनामिका अँगुली से शिखा का, 'ॐ चामुण्डायै कवचाय हुम्' इस मन्त्र से दाहिने हाथ की अनामिका अँगुली से वायें कन्धे का और वायें हाथ की अनामिका अँगुली से दाहिने कन्धे का तथा 'ॐ विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट्' इस मन्त्र से दाहिने हाथ की अनामिका अँगुली से तीनों नेत्रों का स्पर्श करे। 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट्' इस मन्त्र इस मन्त्र को पढ़कर शिर के पीछे की तरफ से चारो तरफ घुमाते हुए दाहिने हाथ की तर्जनी और मध्यमा अगुलियाँ वायें हाथ पर ताली बजावे।

अथ अक्षरन्यासः

'ॐ ऐं नमः' इस मन्त्र के शिखा का 'ॐ ह्रीं नमः' इस मन्त्र से दाहिने नेत्र का, 'ॐ क्लीं नमः' इस मन्त्र से वाम नेत्र का 'ॐ चां नमः' इस मन्त्र से दाहिने कान का, 'ॐ मुं नमः' इस मन्त्र से बायें कान का, 'ॐ डां नमः' इस मन्त्र से दाहिनी नाक के पुटभाग का, 'ॐ यैं नमः' इस मन्त्र से बायी नाक के पुटभाग का, 'ॐ विं नमः' त्रस मन्त्र से मुख का तथा 'ॐ च्यें नमः' इस मन्त्र से गुह्येन्द्रिय का दाहिने हाथ की अनामिका अँगुली से स्पर्श करे। तत्पश्चात् ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इस मन्त्र को आठ बार व्यापक (सिर से पैर तक के सभी अङ्गों का दोनों हाथों से स्पर्श) करे।

अथ दिगन्यासः

'ॐ ऐं प्राच्यै नमः' इस मन्त्र से पूरब दिशा में, 'ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः' इस मंत्र से अग्नि कोण में, 'ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः' इस मन्त्र से दक्षिण दिशा में, 'ॐ ह्रीं नैर्ऋत्यै नमः' इस मन्त्र से नैर्ऋत्य कोण में, 'ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः' इस मन्त्र से पश्चिम दिशा में, 'ॐ क्लीं वायव्यै

नमः' इस मन्त्र से वायुकोण में '३ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः' इस मन्त्र से उत्तर किशा में, '३ॐ चामुण्डायै ऐशान्यै नमः' इस मन्त्र से ईशानकोण में '३ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इस मन्त्र से ऊपर की ओर तथा '३ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डै विच्चे' इस मंत्र से नीचे की ओर चुटकी बजावे ।

अथ ध्यानम्

खड्गं चक्रगदेषु चापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् ।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ॥ १ ॥

अक्षस्रक्परशुं गदेषु कुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिञ्च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् ।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥ २ ॥

घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् ।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ॥ ३ ॥

(इसका अर्थ क्रमशः सप्तशती के प्रथम, द्वितीय और पञ्चम अध्याय के प्रारम्भ में देखें) ।

ध्यान समाप्त होने के बाद '३ॐ ऐं अक्षमालिकायै नमः' इस मन्त्र से माला को पूजा करे ।

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणी ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥

ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे ।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये ॥

ॐ अक्षमालाधिपते सुसिद्धिं देहि देहि सर्वमन्त्रार्थसाधिनि साधय साधय सर्वसिद्धिं परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा ।

उक्त स्तुति से माला की प्रार्थना करे। तत्पश्चात् 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इस मूल मन्त्र का १०८ बार जप करे ।

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मात् कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥

इसे पढ़ते हुए देवी के वाम हाथ में जप का निवेदन करे ।

अथ सप्तशतीन्यासः

तत्र विनियोगः

प्रथममध्यमोत्तरचरित्राणां ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, नन्दाशाकम्भरीभीमाः शक्तयः, रक्तदन्तिकादुर्गाभ्रामर्यो बीजानि, अग्निवायुसूर्यास्तत्त्वानि, ऋग्यजुः सामवेदाध्यानानि, सकलकामनासिद्धये श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः । इसे पढ़कर नीचे जल गिरावे ।

करन्यासः

ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ॥

अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, इस मन्त्र से दोनों अँगूठों का दोनों हाथों की तर्जनी अँगूठों से स्पर्श करे ।

ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिः स्वनेन च ॥

तर्जनीभ्यां नमः, इस मन्त्र से दोनों तर्जनी अंगुलियों का दोनों अँगूठों से स्पर्श करे ।

ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥

मध्यमाभ्यां नमः, इस मन्त्र से दोनों मध्यमा अंगुलियों का दोनों अंगूठों से स्पर्श करे ।

ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥

अनामिकाभ्यां नमः, इस मन्त्र से दोनों अनामिका अंगुलियों का दोनों अंगूठों से स्पर्श करे ।

ॐ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥

कनिष्ठिकाभ्यां नमः, इस मन्त्र से दोनों कनिष्ठिका अँगुलियों का दोनों अँगूठों से स्पर्श करे ।

ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमस्तु ते ।।

करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः, इस मन्त्र से बायें हाथ की हथेली पर दाहिने हाथ के पृष्ठभाग का स्पर्श करे ।

हृदयादिन्यासः

ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा० हृदयाय नमः, इस मंन्त्र से हृदय का, **ॐ शूलेन पाहिनो देवि० शिरसे स्वाहा,** इस मन्त्र से शिर का, **प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च० शिखयैवषट्** इस मन्त्र से शिखा का तथा, **ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि—०कवचाय हुम्,** इस मन्त्र से दाहिने हाथ की अनामिका अँगुली से बायें कन्धे का और बायें हाथ की अनामिका अँगुली से दाहिने कन्धे का स्पर्श करे । **ॐ खड्गशूलगदा-दीनि० नेत्रत्रयाय वौषट्,** इस मन्त्र से दाहिने हाथ की अनामिका अँगुली से तीनों नेत्र का स्पर्श करे । **ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे० अस्त्राय फट्,** इस मन्त्र से दाहिने हाथ को शिर के पीछे से बायें हाथ की ओर लाकरे फिर दाहिने की तर्जनी तथा मध्यमा अँगुलियों से बायें हाथ पर ताली बजावे ।

ध्यानम्

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवाल खेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम् ।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ।।

इस मंत्र से ध्यान करें । (इसका अर्थ बारहवें अध्यात के प्रारम्भ में देखें) ।

अथ दुर्गाशापोद्धारः

ॐ दुर्गादेव्यै नमः

ॐ चण्डिकाशापविमोचनमन्त्रस्य वशिष्ठनारदसामवेदाधिपतिब्राह्मण ऋषयः सर्वैश्वर्यकारिणी श्रीदुर्गा देवता अनुष्टुप्छन्दश्चरितत्रयम्बीजं ह्रीं शक्तिरूपिणी चण्डीशापविमोचने विनियोगः ।

ॐ रीं रेतः स्वरूपायै मधुकैटभमर्द्दिन्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।

ॐ श्रीं बुद्धिरूपिण्यै महिषासुरसैन्यनाशिन्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।

ॐ रं रक्तरूपिण्यै महिषासुरमर्दिन्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।

ॐ क्षुं क्षुधारूपिण्यै देववन्दिन्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।

ॐ छां छायारूपिण्यै दूतसंवादिन्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।

ॐ श्रीं शक्तिरूपिण्यै धूम्रलोचनघातिन्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।

ॐ तृं तृष्णारूपिण्यै चण्डमुण्डवधकारिण्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।

ॐ क्षां क्षान्तिरूपिण्यै रक्तबीजवधकारिण्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।

ॐ जां जातिरूपिण्यै निशुम्भवधकारिण्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।

ॐ लं लज्जारूपिण्यै शुम्भवधकारिण्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।

ॐ शाँ शान्तिरूपिण्यै देवस्तुत्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।

ॐ श्रं श्रद्धारूपिण्यै फलदात्र्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।

ॐ कां कान्तिरूपिण्यै राजवरदात्र्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।

ॐ मां मातृरूपिण्यै अर्गलसहितायै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।

ॐ ह्रीं श्रीं दुं दुर्गायै सर्वैश्वर्यकारिण्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं ॐ नमः शिवायै अभेदकवचरूपिण्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।

ॐ क्रीं काल्यै कालि ह्रीं फट् स्वाहायै ऋग्वेदरूपिण्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपिण्यै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गादेव्यै नमः ।

इत्येवं हि महामन्त्रान् पठित्वा परमेश्वरि ।
चण्डीपाठं दिवारात्रौ कुर्यादेव न संशयः ॥
एवम्मन्त्रन्न जानाति चण्डीपाठं करोति यः ।
आत्मनश्चैव दातृणां क्षयं कुर्यान्न संशयः ॥

इति रुद्रयामले चण्डिकाशापविमोचनं सम्पूर्णम् ।

—०:०—

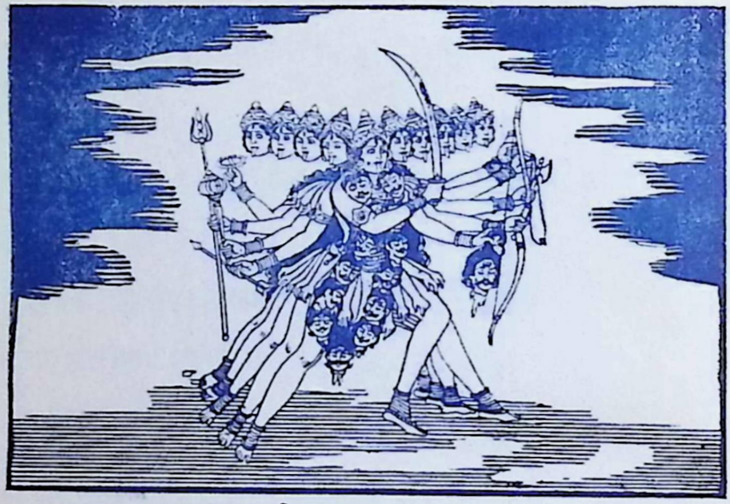

श्री १०८ महाकाली

अथ

दुर्गासप्तशती

'जयमङ्गला' हिन्दीव्याख्योपेता

प्रथमोऽध्यायः

विनियोगः

ॐ प्रथमचरित्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, महाकाली देवता, गायत्री छन्दः, नन्दा शक्तिः, रक्तदन्तिका बीजम्, अग्निस्तत्त्वम्, ऋग्वेदः स्वरूपम्, श्रीमहाकालीप्रीत्यर्थं प्रथमचरित्रजपे विनियोगः। ध्यानम्—

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः।
शङ्खं सन्दधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥

सप्तशती का सन्दर्भ—प्राचीन काल में भगवान् व्यास के शिष्य महर्षि जैमिनी वेद वेदाङ्ग और नाना शस्त्रों के पारदर्शी होने पर भी कुछ धर्म के तत्वों को नहीं समझ सके थे, उस समय उनके गुरु महाराज को अवकाश न रहने से उन्होंने परम ज्ञानी महर्षि मार्कण्डेय के निकट जाकर बहुत से रहस्यों की जिज्ञासा की थी। तब महर्षि मार्कण्डेय जी ने कहा कि मेरे पास अभी समयाभाव है, 'पितृशापग्रस्त पक्षीरूपधारी पिङ्गाख्य, विराध, सुपुत्र और सुमुख नामक सर्वशास्त्र विशारद चार मुनिपुत्र हैं, उनके पास जाकर इन सब प्रश्नों की जिज्ञासा करो। तुरन्त ही तुम्हारे सब सन्देह दूर हो जाएँगे। महर्षि जैमिनी ने इस प्रकार से गुरुकृपा प्राप्त करके उन पक्षी शरीरधारी महात्माओं के निकट जाकर जानने की इच्छा की। तब मार्कण्डेय, क्रौष्टु के सम्वाद के उपक्रम द्वारा उन्होंने नाना प्रकार की शंकाओं का समाधान करके महर्षि जैमिनी को सन्तुष्ट किया था। इसी प्रसङ्गों में चारों पक्षियों ने सातों

ॐ नमश्चण्डिकायै

'ॐ ऐं' मार्कण्डेय उवाच ।। १ ।।

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः ।
निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम ।। २ ।।
महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः ।
स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः ।। ३ ।।
स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः ।
सुरथो नाम राजाऽभूत् समस्ते क्षितिमण्डले ।। ४ ।।

मन्वन्तरों की कथाएं जो उन्होंने मार्कण्डेय और क्रौष्टु के सम्वाद में सुनी थी, जैमिनी को सुनाई । आँठवें मन्वन्तर की कथा भी चारों पक्षियों ने जैमिनी से 'मार्कण्डेय उवाच' इत्यादि कहकर प्रारम्भ की । यही प्रसङ्ग मेधाऋषि ने ये राजा सुरथ तथा समाधि नामक वैश्य को सुनाया था, इस ग्रन्थ में वही कथा वर्णित है ।

ध्यान—क्षीरसागर में सोनेवाले श्री विष्णु भगवान के सो जाने पर मधु और कैटभ के वध के लिये कमल से उत्पन्न ब्रह्माजी ने जिनकी स्तुति की थी, उन महाकालिका देवी की मैं सेवा करता हूं । जो अपने दसो हाथों में खड्ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिघ, शूल, भुशुण्डी, मस्तक और शङ्ख धारण की है । उनके समस्त अङ्ग दिव्य आभूषण से विभूषित हैं उनके तीन नेत्र हैं । नील मणि के समान उनके शरीर की कान्ति हैं । उन्हें दस मुख और दस पैर हैं ।

मार्कण्डेयजी बोले ।।१।। सूर्य का पुत्र सावर्णि जिनको अष्टम मनु कहते हैं उनकी उत्पत्ति मैं विस्तार पूर्वक कहता हूं सुनो ।।२।। महाभाग वे सावर्णि महामाया की कृपा से जिस प्रकार सूर्य से जन्म लेकर मन्वन्तर के राजा हुए (उसे भी कहता हूं सुनो) ।।३।। पहले स्वारोचिष मन्वन्तर में चैत्र वंश से उत्पन्न सुरथ नामक व्यक्ति सारे भूमण्डल के राजा हुए ।।४।। वे अपने औरस

तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ।
बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तथा ॥ ५ ॥
तस्य तैरभवद् युद्धमतिप्रबलदण्डिनः ।
न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥ ६ ॥
ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत् ।
आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः ॥ ७ ॥
अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः ।
कोशो बलं चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः ॥ ८ ॥
ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः ।
एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥ ९ ॥
स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य मेधसः ।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम् ॥१०॥

पुत्र के समान प्रजाओं का पालन करते थे । उसी समय कोलाविध्वंसी (अनार्य जाति विशेष) भूपति गण उनके शत्रु हो गये ।।५।। तब उन राजाओं के साथ अति प्रबल दण्डधारी सुरथ का युद्ध हुआ । उस समय कोलाविध्वंसी राजागण सुरथ की अपेक्षा अल्पसंख्यक होने पर भी युद्ध में पराजित कर दिये ।।६।। अनन्तर सुरथ अपने नगर में आकार केवल अपने देश के राजा हुए । तब भी प्रबल शत्रुओ ने आकर महाभाग सुरथ पर आक्रमण किया ।।७।। तब वे अत्यन्त दुर्बल हो गये, इस कारण दुष्ट, दुरात्मा मन्त्रियो ने भी (शत्रुओ के साथ मिलकर) राजधानी का कोशागार (खजाना) और सेना समस्त हरणकर लिया ।।८।। तदनन्तर राजा सुरथ आधिपत्य से वञ्चित होकर शिकार के वहा`से एक घोड़े पर सवार होकर एकाकी अति दुर्गम वन को चले गये ।।९।। उन्होंने उस वन में द्विज मेधस मुनि का आश्रम देखा । वह आश्रम शान्त, वैरभावरहित पशुओं से व्याप्त एवं मुनि शिष्यों

तस्थौ कंचित्स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः ।
इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन् मुनिवराश्रमे ।।११।।
सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतनः ।
मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत् ।।१२।।
मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा ।
न जाने स प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः ।।१३।।
मम वैरिवशं यातः कान् भोगानुपलप्स्यते ।
ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः ।।१४।।
अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम् ।
असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम् ।।१५।।
संचितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति ।
एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः ।।१६।।

के द्वारा सुशोभित था ।।१०।। उस मुनि ने सुरथ का आतिथ्य सत्कार किया और सुरथ इधर-उधर विचरण करते हुए उसी आश्रम में रहने लगे ।।११।।

तब वे ममता से आकृष्ट चित्त होकर इस प्रकार चिन्ता करने लगे कि जिस पुरी की रक्षा हमारे पूर्वजों ने की थी, मेरे द्वारा त्यक्त उसकी क्या हमारे असाधु सेवकगण धर्मानुसार पालन कर रहे हैं ? हमारा सदा मदस्रावी शूर नामक प्रधान हाथी शत्रु के वश में जाकर किन-किन भोगों को प्राप्त करता होगा, वह भी मैं नहीं जानता । जो सेवकगण मेरी प्रसन्नता के कारण धन और भोजनादि प्राप्त करने से हर समय मेरे अनुगामी थे, वे निश्चय ही दूसरे राजाओं की सेवा करते होंगे । अन्यायरूप से व्यय करनेवाले निरन्तर व्यय करते हुए उन सेवकों के द्वारा अत्यन्त कष्ट से संचित किया हुआ खजाना नष्ट हो गया होगा । इस प्रकार राजा सुरथ अन्यान्य नाना प्रकार की चिन्ता करने लगे ।।१२–१६।। एक दिन राजा सुरथ उस मुनि के आश्रम

तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः ।
स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः ॥१७॥
सशोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे ।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम् ॥१८॥
प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम् ॥१९॥

वैश्य उवाच ॥ २० ॥

समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले ॥२१॥
पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः ।
विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम् ॥२२॥
वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः ।
सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम् ॥२३॥
प्रवृत्तिं स्वजनानां च दाराणां चात्र संस्थितः ।
किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम् ॥२४॥

के समीप एक वैश्य को देखा और राजा ने उस वैश्य से पूछा—तुम कौन हो, किसलिये यहाँ आये हो ॥१७॥ तुम चिन्तित एवं शोकाकुल क्यों दिखाई देते हो ? वैश्य राजा के उस प्रेमपूर्ण वचन को सुनकर नम्रतापूर्वक उत्तर दिया ॥१८–१९॥ वैश्य ने कहा—॥२०॥ मैं 'समाधि नाम का वैश्य हूँ, धनवान् कुल में मेरा जन्म हुआ है ॥२१॥ दुष्ट मेरे स्त्री-पुत्रों ने धन के लोभ से लुब्ध होकर मेरा सब धन छीन लिया है और मुझको घर से निकाल दिया है। इस समय मैं धन, पुत्र और स्त्री से विहीन हूँ ॥२२॥ इस कारण मेरे भाई बन्धुओं ने भी त्याग दिया है। इसलिये मैं दुःखी होकर वन में आया हूँ। यहाँ अपने पुत्रों, बान्धवों तथा स्त्रियों के कुशल तथा अकुशल की बात भी नहीं जानता हूं ॥२३॥ इस समय मैं वन में रह रहा हूं इसलिये मेरे पुत्रादि दुःखी हैं या

कथं ते किं नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः ।।२५।।

राजोवाच ।। २६ ।।

यैर्निरस्तो भवाँल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः ।।२७।।
तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम् ।।२८।।

वैश्य उवाच ।। २९ ।।

एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः ।।३०।।
किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः ।
यैः संत्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः ।।३१।।
पतिस्वजनहार्दं च हार्दितेष्वेव मे मनः ।
किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते ।।३२।।
यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु ।
तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते ।।३३।।

ुखी हैं, अच्छे आचरण करते हैं या बुरे आचरण में लग गये हैं, इस ारिस्थिति को भी मैं नहीं जान रहा हूँ ।। २४–२५ ।।

राजा ने कहा—।। २६ ।।

जिन लालची पुत्र स्त्री इत्यादि ने तुमको धन के लालच से निकाल दिया है, उनके प्रति अब तुम्हारा इतना स्नेह क्यों हो रहा है ।। २७–२८ ।।

वैश्य ने कहा—।। २९ ।।

हे राजन् ! आपने जो कहा, वह बिलकुल सत्य है, किन्तु मैं क्या करूँ ? मेरा चित्त किसी भी प्रकार निष्ठुर नहीं होता । जिन्होंने धन के लोभ से पितृस्नेह एवं पति के प्रति प्रेम को त्याग करके मुझको घर से निकाल दिया है, उन्हीं लोगों के लिये मेरा मन लगा हुआ है । हे महामते राजन् ! आपने जो कहा, वह सब मैंने समझ लिया है, तथापि न जाने क्यों हमारा चित्त उन गुण रहित बन्धु-बान्धवों के प्रति प्रेमासक्त हो रहा है, इसका कारण

करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम् ॥३४॥

मार्कण्डेय उवाच ॥३५॥

ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ ॥३६॥
समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः ।
कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम् ॥३७॥
उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥३८॥

राजोवाच ॥ ३९ ॥

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तद् ॥४०॥
दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना ।
ममत्वं मम राज्यस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि ॥४१॥
जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम ।
अयं च निकृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः ॥४२॥

समझ में नहीं आता। उन्हीं के निमित्त मेरा दीर्घ विश्वास और चित्त खिन्न होता है, किन्तु क्या करूँ उन निर्मोहियों में मेरा मन कठोर नहीं होता ॥३०–३४॥

मार्कण्डेय जी बोले—॥ ३५ ॥

हे विप्र ! इसके बाद राजा सुरथ और समाधि नामक वैश्य दोनों मिलकर उस मेधा मुनि के निकट गये ॥ ३६ ॥ वहाँ जाकर वे दोनों न्यायोचित मुनि के साथ सम्भाषण करके बैठने के बाद नाना प्रकार के प्रश्न करने लगे ॥ ३७–३८ ॥

राजा ने कहा—॥ ३९ ॥

भगवन् ! मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ उसे कृपया बताइये। ॥ ४० ॥ मेरा मन बिल्कुल वश में नहीं है, इस कारण हमें अत्यन्त कष्ट होता है। मूर्ख लोग जैसे विषयासक्त होकर मुग्ध होते हैं, मैं ज्ञानवान् होकर भी उसी प्रकार राज्य एवं सब राज्याङ्गों में ममत्वाकृष्ट हो रहा हूँ, इसका क्या कारण है। मैं अकेला नहीं हूं, यह जो समाधि है, यह भी पुत्र, स्त्री,

स्वजनेन च संत्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति ।
एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ ॥४३॥
दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ ।
तत्केनैतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि ॥४४॥
ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता ॥४५॥
ऋषिरुवाच ॥ ४६ ॥
ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे ॥४७॥
विषयाश्च महाभाग यान्ति चैवं पृथक् पृथक् ।
दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे ॥४८॥
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ।
ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किन्तु ते न हि केवलम् ॥४९॥

स्वजन और भृत्यजनों द्वारा परित्यक्त होनें पर भी उन पर अत्यन्त स्नेहशील है। इस प्रकार हम दोनों इस विषय में अत्यन्त दुःखी हैं ॥ ४०–४३ ॥ विषय का दोष देखकर भी ममता के कारण हम दोनों अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं। हे महाभाग ! जो अज्ञानी हैं, उनका मुग्ध होना सम्भव है, लेकिन हम लोग ज्ञानी होकर भी मोहित हो रहे हैं इसका क्या कारण है, इसे अवश्य बताइये ॥ ४४–४५ ॥

ऋषि ने कहा—॥ ४६ ॥

हे महाभाग ! समस्त प्राणिमात्र को ही विषय सम्बन्धी ज्ञान है। विषय भी अलग-अलग होते हैं। देखो, कितने ही प्राणी (उलूकादि) दिन को ही नहीं देख सकते, कितने ही प्राणी (काकादि) रात्रि में अन्धे हो जाते हैं, कुछ प्राणी दिन और रात्रि में समान देखते हैं। (हे सुरथ !) मनुष्य ज्ञानी है यह सत्य है, परन्तु केवल उन्हीं को ज्ञान है, यह बात नहीं है, क्योंकि पशु, पक्षी, मृग आदि सब प्राणियों में भी ज्ञान विद्यमान है। मृग पक्षी आदि को जैसा ज्ञान है, मनुष्यों में भी प्रायः वैसा ही ज्ञान दिखाई पड़ता है

यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः ।
ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम् ॥५०॥
मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः ।
ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतङ्गाञ्छावचञ्चुषु ॥५१॥
कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपि क्षुधा ।
मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति ॥५२॥
लोभात् प्रत्युपकाराय नन्वेते किं न पश्यसि ।
तथापि ममतावर्ते मोहगर्ते निपातिताः ॥५३॥
महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणः ।
तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ॥५४॥
महामाया हरेश्चैषा तया संमोह्यते जगत् ।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ॥५५॥

और मनुष्यों में जैसी ज्ञान प्रियता है, मृग पक्षियों में भी वैसा ही ज्ञान प्रियता विद्यमान है। इसके अलावा अज्ञानांश में भी दोनों समान है। देखो, आत्मप्रीतिविषयक ज्ञान विद्यमान होने पर भी यह पक्षी स्वयं क्षुधा से अति पीड़ित होने पर भी मोहवश बच्चों की चोंच में बड़े आदरपूर्वक चावल के कण आदि खाद्य द्रव्य अर्पण करते हैं। हे राजन् ! मनुष्य लोग पुत्रादि पर अभिलाषा सम्पन्न अर्थात् स्नेहशील हैं। ये जिस लोभवश प्रत्युपकार की आशा से ऐसा करते हैं, क्या इसे नहीं देखते ? किन्तु जगत् की स्थिति करने वाले परमेश्वर की माया के प्रभाव से ही प्राणिगण ममता के आवर्त में फंसकर मोह के गड्ढे में गिरते हैं ॥ ४७–५३ ॥

इसलिये हे सुरथ ? इस विषय में कुछ विस्मय मत करो। यह महामाया जगत पति भगवान् की ही योगनिद्रा स्वरूपा है, यह जीव जगत उसी के द्वारा सम्यक् प्रकार से मोहाच्छन्न रहता है। वह देवी भगवती महामाया

बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ॥५६॥
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ।
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ॥५७॥
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥५८॥

राजोवाच ॥ ५९ ॥

भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान् ॥६०॥
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज ।
यत्स्वभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा ॥६१॥
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥६२॥

ऋषिरुवाच ॥ ६३ ॥

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम् ॥६४॥

ज्ञानियों के चित्त को भी बलपूर्वक आकर्षण करके विषय विमुग्ध कर देती है। यह स्थावर जङ्गमात्मक नित्यपरिवर्तनशील विश्व उसी के द्वारा सृष्ट है। वह प्रसन्न और वरदा रूप से अत्यन्त प्रसन्न होने पर ही मनुष्य को मुक्ति पाने के लिये वरदान देती है। वह विद्या और अविद्या, परमा और अपरमा है, इस कारण संसार के बन्धन और मुक्ति दोनों का ही हेतु है। वह सनातनी देवी सभी ईश्वर की भी ईश्वरी है ॥ ५४–५८ ॥

राजा ने कहा— ॥ ५९ ॥

हे भगवन् ! हे द्विज ! आप जिसे देवी महामाया कहते हैं वह कौन है ? वह क्यों उत्पन्न होती है और उसका काम क्या है ? उसका जिस प्रकार का स्वभाव है, जो स्वरूप है और जिससे वह उत्पन्न है; हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ! मैं आप से यह सब तत्व श्रवण करना चाहता हूँ ॥ ६०–६२ ॥

ऋषि ने कहा— ॥ ६३ ॥

वे नित्या हैं, जगत्रूपिणी हैं, उन्हीं के द्वारा सब परिव्याप्त हैं, यद्यपि

तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम ।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा ॥६५॥
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ।
योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ॥६६॥
आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पान्ते भगवान् प्रभुः ।
तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ ॥६७॥
विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ।
स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ॥६८॥
दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम् ।
तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयः स्थितः ॥६९॥
विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम् ।
विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ॥७०॥
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥७१॥

उनकी उत्पत्ति हम लोगों की तरह नहीं होती है, तथापि उनका आविर्भाव अनेक प्रकार से होता है। वह हमसे सुनो। देवताओं की कार्यसिद्धि के लिये वे जब आविर्भूत होती हैं, तभी लोग नित्या होने पर भी उनको "उत्पन्ना" अर्थात् उत्पन्न होनेवाली कहते हैं। प्रलयकाल में जब संसार एक ही महासागर में निमग्न हो रहा था, तब प्रभु भगवान् विष्णु शेषनाग की शय्या पर योगनिद्रा में निद्रित थे; उस समय मधु और कैटभ नामक दो भयानक असुर विष्णु के कर्णमल से उत्पन्न होकर ब्रह्मा को मारने के लिये उद्यत हुए, तब भगवान् विष्णु के नाभि कमल में अवस्थित प्रजापति ब्रह्मा भयानक दोनों असुरों को मारने के लिये आते देखकर एवं विष्णु को सोते हुए देखकर एकाग्रचित्त हो भगवान् को जगाने के लिये हरिनेत्र की आश्रय करनेवाली जगत्कर्त्री संसार का पालन और संहार करनेवाली चैतन्यरूपी विष्णु की निद्रारूपी भगवती योगनिद्रा की स्तुति करने लगे ॥ ६४–७१ ॥

ब्रह्मोवाच ।। ७२ ।।

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारस्वरात्मिका ।।७३।।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ।
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ।।७४।।
त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा ।
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् ।।७५।।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ।
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ।।७६।।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ।
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ।।७७।।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ।
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ।।७८।।

ब्रह्मा जी ने कहा—।। ७२ ।।

हे देवि ! तुम देवहविर्दानमन्त्ररूपा स्वाहा हो, तुम पितृहविर्दान का मन्त्ररूपा स्वधा हो, तुम्हीं वषट्कार (इन्द्र को यज्ञ का हिस्सा पहुंचानेवाला मंत्र) हो । तुम वर्णमालाओं में मात्रास्वरूपा हो, एवं ह्रस्वदीर्घप्लुतरूपा हो, विना स्वर की सहायता से जिसका स्पष्ट उच्चारण नहीं किया जा सकता है वह व्यञ्जनरूपा तुम्हीं हो । तुम्हीं सन्ध्यारूपा हो, तुम्हीं गायत्री-रूपा हो एवं तुम्हीं सबकी जननी हो । हे देवि सृष्टिकाल में तुम ही सृष्टिरूपा हो पालन में तुम ही स्थितिरूपा हो, फिर प्रलयकाल में तुम ही इस जगत की संहर्त्रीरूपा हो । तुम ही महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति और महारूपा हो । महादेवी और महासुरीरूपा भी तुम्हीं हो । तुम्हीं सत्व रज तम तीनों गुणों को उत्पन्न करनेवाली सबकी प्रकृति हो ।। ७२–७८ ।।

कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ।
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ॥७९॥
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ।
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ॥८०॥
शङ्खिनी चापिनी वाणभुशुण्डीपरिघायुधा ।
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ॥८१॥
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ।
यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ॥८२॥
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे सदा ।
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पाताऽत्ति यो जगत् ॥८३॥
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ।
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ॥८४॥

कालरात्रि (प्रलय), महारात्रि (मृत्यु) एवं भयानक मोहरात्रि (निद्रा) भी तुम्हीं हो। तुम्हीं लक्ष्मीरूपा हो, तुम्हीं सभी ऐश्वरशालिनी ईश्वरी हो, तुम्हीं ह्रीं (लज्जा) हो, एवं तुम्हीं बोधलक्षणा बुद्धिरूपा हो तुम्हीं लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति एवं क्षमारूपिणी हो। तुम्हीं खड्ग, शूल गदा, चक्र, शङ्ख, धनुष, बाण, भुशुंण्डी (कान्तीदार लोहे की लाठी विशेष) एवं परिघ (लोहमुद्गर) धारण करनेवाली हो ॥ ७९–८०½ ॥

तुम सौम्या हो, सौम्यतरा हो, एवं सम्पूर्ण सौंदर्यों की अपेक्षा भी अधिक सुन्दरी हो। तुम पर एवं ऊपर दोनों का ही आश्रय—पूजनीया हो, इस कारण तुन्हीं परमेश्वरी हो ॥८१½॥

हे सर्वमयी देवि ! इस अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड में जहाँ कहीं जो कुछ सत असत् पदार्थ है, उन सबों की शक्तिभूता तुम्हीं हो, अतएव तुम्हारी स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है। विष्णु, मैं (ब्रह्मा) एवं शिव सबों ने तुम्हारे द्वारा ही शरीर धारण किया है। अतएव तुम्हारी स्तुति करने में कौन

कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ।
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता ॥८५॥
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ।
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ॥८६॥
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥८७॥

ऋषिरुवाच ॥ ८८ ॥

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा ॥८९॥
विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ ।
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ॥९०॥
निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः ॥९१॥

समर्थ हो सकता है। हे देवि ! इस प्रकार तुम अपने उदार प्रभाव के द्वारा मधु और कैटभ नामक इन दोनों असुरों को जो अतीव दुर्धर्ष है मोहित करो। और जगत्स्वामी अच्युत को जगाओ ए इन दोनों महाअसुरों को मारने के लिये इनके अन्दर इनकी क्षक्ति को विस्फुरित करो ॥८१३–८७॥

ऋषि बोले—॥८८॥

इस प्रकार ब्रह्माजी स्तुति करने पर तामसी देवी विष्णु का निद्राभंग और मधुकैटभवध के लिये विष्णु के नेत्र, मुखमण्डल, नासिका, बाहु, हृदय एवं वक्षस्थल से निकलकर स्वयम्भू ब्रह्मा की दृष्टि के सामने आविर्भूत हुई ॥

योगनिद्रा से विमुक्त होकर जगत्स्वामी भगवान् विष्णु अनन्तशय्या से उठे एवं उठते ही दोनों असुरों को देखा। तब बलशाली एवं पराक्रमी दोनों असुर अपनी लाल-लाल आँखें किये हुए ब्रह्माजी को खाने के लिए उद्यत हो रहे थे ॥

एकार्णवेऽहिशयनात्ततः स ददृशे च तौ ।
मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ॥९२॥
क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ ।
समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ॥९३॥
पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ।
तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ॥९४॥
उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम् ॥९५॥

श्रीभगवानुवाच ॥९६॥

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ॥९७॥
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम ॥९८॥

ऋषिरुवाच ॥९९॥

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत् ॥१००॥

अनन्तर जगत् व्यापक भगवान् हरि ने उठकर पाँच हजार वर्ष तक उन असुरों के साथ बाहुयुद्ध किया । उस समय बल से उन्मत्त दोनों असुरों ने महामाया से मोहित होकर भगवान् विष्णु को कहा कि हम तुम्हारी वीरता से प्रसन्न हैं, तुम हमसे वर माँग लो ॥ ८९–९५ ॥

भगवान् विष्णु ने कहा—॥ ९६ ॥

तुम लोग यदि मुझ से प्रसन्न हो तो तुम दोनों की हमारे द्वारा मृत्यु हो यही मेरा वरदान है । इस युद्ध क्षेत्र में अन्य किसी वर का प्रयोजन नहीं है, केवल यही वर मैं चाहता हूँ ॥ ९७–९८ ॥

ऋषि ने कहा—॥ ९९ ॥

इस प्रकार दोनों असुरों ने भगवान् के धोखे में आ गये तब सारा संसार जल मग्न देखकर कमलनयन विष्णु को कहा कि जो स्थान जल मग्न नहीं है,

विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः ।
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥१०१॥

ऋषिरुवाच ॥१०२॥

तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता ।
कृत्वा चक्रेण वै छिन्ने जघने शिरसी तयोः ॥१०३॥

एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् ।
प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते ॥ऐं ॐ॥१०४॥

इति श्रीमार्कंडेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
मधुकैटभवधो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
उवाच १४ अर्द्धश्लोकाः २४, श्लोकाः ६६,
एवमादितः ॥ १०४ ॥

—:०:—

ऐसे स्थान में हम लोगों का वध करो ॥ १००–१०१ ॥

ऋषि बोले—॥ १०२ ॥

तब शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् ने 'ऐसा ही होगा' ऐसा कहकर उन दोनों की गर्दन अपनी जाँघ पर रखकर चक्र से काट डाली॥ १०३ ॥

इस प्रकार ब्रह्मा के स्तुति करने पर महामाया देवी स्वयं प्रकट हुई थीं। उस महामाया का प्रभाव मैं पुनः तुमसे कहता हूँ, सुनो ॥ १०४ ॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की
कथा के अन्तर्गत देवी माहात्म्य में मधुकैटभवध नामक
पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥ १ ॥

★

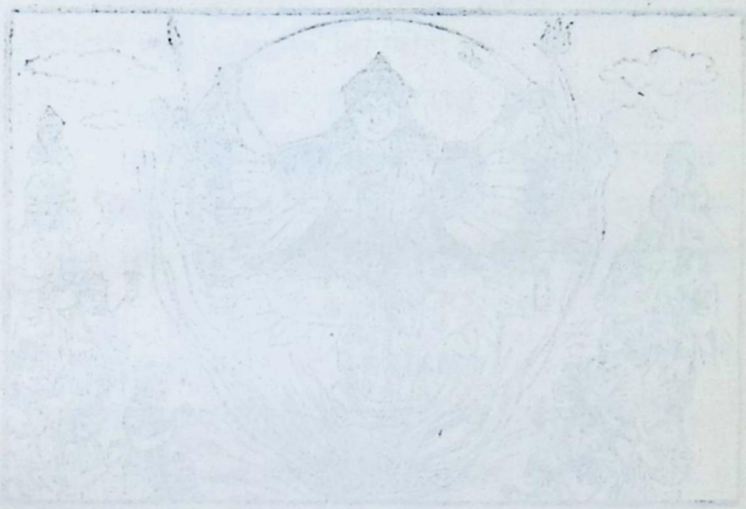

श्री १०८ महालक्ष्मी

द्वितीयोऽध्यायः

विनियोगः

ॐ मध्यमचरित्रस्य विष्णुर्ऋषिर्महालक्ष्मीर्देवता उष्णिक् छन्दः शाकम्भरी शक्तिः दुर्गा बीजं वायुस्तत्त्वं यजुर्वेदः स्वरूपं श्रीमहालक्ष्मीप्रीत्यर्थं मध्यमचरित्रजपे विनियोगः।

ध्यानम्— ॐ अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥

'ॐ ह्रीं' ऋषिरुवाच॥ १॥

देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा।
महिषेऽसुराणामधिपे देवानां च पुरन्दरे॥२॥

ध्यान—जिसने अपने हाथों में रुद्राक्ष, फरसा, गदा, बाण, वज्र, कमल, धनुष कुण्डिका, दण्ड, शक्ति, खड्ग, ढाल, शङ्ख, घण्टा, मधुपात्र, शूल, पाश और चक्र धारण किये हैं, उस प्रसन्न मुखवाली कमलासन पर बैठी हुई महिषासुर मर्दिनी महालक्ष्मी की मैं यहाँ सेवा करता हूँ।

ऋषि बोले—॥ १॥

पहले जब महिषासुर असुरों और इन्द्र देवताओं के नायक थे तब पूरे सौ वर्ष तक देवासुर नामक युद्ध हुआ था॥ २॥

महिषासुर के जन्म की कथा—हजारों वर्ष पहले की बात है, एक समय महिषासुर के पिता रम्भासुर पुत्रप्राप्ति के लिये घोर जंगल में तपस्या कर रहा था। अत्यन्त दयालु भगवान् शिव ने भगवती के वाहन सिंह को

तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं पराजितम् ।
जित्वा च सकलान् देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः ॥ ३ ॥
ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम् ।
पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजौ ॥ ४ ॥
यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् ।
त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ॥ ५ ॥

उस युद्ध में महाबलशाली असुरों द्वारा देवों की सेनाएँ पराजित होने पर देवताओं को हराकर महिषासुर स्वयं इन्द्र बन गया। तब हारे हुए देवगण प्रजापति ब्रह्मा को आगे कर जहाँ शिव और विष्णु थे वहाँ गये। और देवताओं ने उनसे दोनों देवेशों को महिषासुर का कार्य कलाप और देवताओं की पराजय का सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ३–५ ॥

जो बहुत दिनों से कार्य में रत रहने से थका था, उसे मुक्त करने के लिये अन्य वाहन को खोजने के लिये उसी जंगल में पहुंचा जहाँ रम्भासुर तपस्या कर रहा था। वह भगवान् शङ्कर के ध्यान में तल्लीन था। शङ्कर जी वहाँ पहुंचे और उसे वर देने के लिये उद्यत हुए। शङ्कर जी ने कहा मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, जो वर माँगना चाहते हो उसे माँग लो। अनेकों बार हठ करने पर जब उन्होंने अपना नेत्र नहीं खोला तब शंकर जी अपना विराटरूप दिखाया। तब रम्भासुर के नेत्र पट खुल गये एवं अभिलषित वर की माँग की। इसके वर की चर्चा कालिका-पुराण में इस प्रकार है—

"अपुत्रोऽहं महादेव यदि ते मय्यनुग्रहः ।
मम जन्मत्रये पुत्रो भवान् भवतु शंकरः ॥
अवध्यः सर्वभूतानां जेता त्रिदिवौकसाम् ।
चिरायुश्च यशस्वी च लक्ष्मीवान् सत्यसङ्करः ॥"

अर्थात् हे शिव ! तुम यदि मुझ पर प्रसन्न हो तो मैं पुत्र हीन हूँ, तुम्हीं तीन जन्म तक मेरा पुत्र होओ। जो किसी से वध करने योग्य नहीं हो, सभी

सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च ।
अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति ॥ ६ ॥
स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि ।
विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना ॥ ७ ॥
एतद्वः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम् ।
शरणं च प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ॥ ८ ॥
इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः ।
चकार कोपं शम्भुश्च भ्रुकुटीकुटिलाननौ ॥ ९ ॥
ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः ।
निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शङ्करस्य च ॥१०॥

सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वायु, चन्द्र, यम, वरुण और अन्यान्य देवताओं के अधिकारों को महिषासुर ने अपने हाथ में ले लिया है ॥ ६ ॥

उस दुरातमा महिषासुर के द्वारा स्वर्ग से निकाले गये देवगण मनुष्य की तरह मृत्यु लोक में विचरण करते हैं। हम सबों ने आप को असुरों का सब कार्य विवरण कह दिया है। हम आप की शरग में आये हैं, आप उस असुरों के वध के उपायों को सोचें ॥ ७–८ ॥

उस समय भगवान् विष्णु और शिव देवताओं के प्रति अत्याचार को सुनकर क्रुद्ध हो गये। जिससे उनका मुखमण्डल लाल एवं भौंहें कुटिल हो गईं। तब अत्यन्त क्रोधित विष्णु, ब्रह्मा और शङ्कर के मुख मण्डल से एक

देवताओं को जीतनेवाला हो, चिरायु हो, श्रीमान् एव दृढ़प्रतिज्ञ हो। तब दयालु शँकरजो "एवमस्तु" ऐसा कहकर चले गये। रम्भासुर अपनी आसुरी स्वभाव के कारण कामोन्मत्त हो रास्ते में ही एक महिषी से सम्भोग किया। तब शंकर जी को महिषासुर के रूप में उसके गर्भ में प्रवेश करना पड़ा। इस तरह महिषासुर की उत्पत्ति हुई।

अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः ।
निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत ॥११॥

अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम् ।
ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥१२॥

अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् ।
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ॥१३॥

यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम् ।
याम्येन चाभवन् केशा बाहवो विष्णुतेजसा ॥१४॥

सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाभवत् ।
वारुणेन च जङ्घोरू नितम्बस्तेजसा भुवः ॥१५॥

ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदङ्गुल्योऽर्कतेजसा ।
वसूनां च कराङ्गुल्यः कौबेरेण च नासिका ॥१६॥

महान् तेज निकला। इसी तरह इन्द्रादि अन्यान्य देवताओं के शरीर से भी बहुत तेज निकल कर सब एकत्रित हो गया। तब उन देवताओं ने देखा कि प्रज्वलित पर्वत की भाँति तेजो राशि की शिखायें दिगन्त परिव्याप्त हो रही थी। इसके बाद वहाँ सब देवताओं के शरीर से उत्पन्न तेजो राशि, सम्मिलित होकर नारीरूप में परिणत हुई और उनकी कान्ति के द्वारा तीनों लोक प्रकाशित हो गया। शम्भु के तेज से देवी का मुख, यम के तेज से केश एवं विष्णु के तेज से बाहु उत्पन्न हुए। चन्द्रमा, इन्द्र, वरुण और पृथ्वी के तेज से यथाक्रम-स्तनद्वय, मध्यभाग जङ्घा-उरुदेश एवं नितम्बदेश निर्मित हुए। ब्रह्मा के तेज से दोनों चरण, सूर्य के तेज से चरणों की अँगुलियाँ, वसुओं के तेज से हाथों की अँगुलियाँ और कुबेर के तेज से नासिका प्रकट हुईं॥ ९–१६॥

अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः ।
पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः ॥४२॥
अयुतानां शतैः षड्भिर्बाष्कलो युयुधे रणे ।
गजवाजिसहस्रौघैरनेकैः परिवारितः ॥४३॥
वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत ।
बिडालाख्योऽयुतानां च पञ्चाशद्भिरथायुतैः ॥४४॥
युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः ।
अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृताः ॥४५॥
युयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः ।
कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा ॥४६॥
हयानां च वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः ।
तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा ॥४७॥

महाहनु नामक असुर एक करोड़ रथ एवं सैनिकों को लेकर तथा असिलोमा नामक महासुर पाँच करोड़ सैनिकों को लेकर युद्ध करने लगा ॥ ४२ ॥

वाष्कल नामक राक्षस ने साठ लाख रथ के साथ उस युद्ध क्षेत्र में युद्ध करना आरम्भ कर दिया। परिवारित नामक असुर भी हजारों हाथी, घोड़े, एवं करोड़ों रथों को साथ लेकर युद्ध में प्रवृत हो गया। विडाल नामक असुर पचास करोड़ सैनिकों से सुसज्जित होकर युद्ध करने लगा। उस रण क्षेत्र में अन्यान्य असुरगण भी अनेकों रथ, हाथी एवं घोड़ों से सुसज्जित होकर देवी के साथ युद्ध करने लगे। उस युद्ध में महिषासुर भी करोड़ों रथ, हाथी एवं घोड़ों से परिवृत था। उस समय कोई राक्षस तोमर (गड़ासे की तरह एक पुराना हथियार) कोई भिन्दिपाल (जाली-विशेष, जिसमें ढेला रखकर शत्रुओं पर फेका जाता है), कोई शक्ति (एक प्रकार की वर्छी) कोई मुद्गर, कोई खड्ग, कोई फरसा, कोई पट्टिस (लघुखड्ग विशेष) आदि अस्त्र-शस्त्रों से देवी

युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः ।
केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित्पाशांस्तथापरे ।।४८।।
देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः ।
सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका ।।४९।।
लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी ।
अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः ।।५०।।
मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी ।
सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेशरी ।।५१।।
चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः ।
निःश्वासान् मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका ।।५२।।
त एव सद्यः सम्भूता गणाः शतसहस्रशः ।
युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालसिपट्टिशैः ।।५३।।

साथ युद्ध करने लगे । देवी को लक्ष्य करके कोई शक्ति का प्रहार किया, ोई पाश अस्त्र फेकने लगा ।। ४३–४८ ।।

वहुत से राक्षसों ने खड्ग प्रहार करके देवी को मारने का प्रयास करने लगा । अनन्तर देवी ने अपने अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करके अनायास ही असुरों के अस्त्रों को काट दिया । एवं सर्वशक्तिमयी देवी देवता एवं ऋषियों के द्वारा संस्तूयमाना होकर असुर-देह में अस्त्र-शस्त्र प्रहार करने लगीं । उस समय देवी का वाहन सिंह भी क्रोध में आकर गर्दन के वालों को हिलाता हुआ दावानल की तरह सेनाओं के वीच में विचरण करने लगा । तब देवी अम्बिका ने रणक्षेत्र में असुरों के साथ युद्ध करती हुई जितने निश्वास छोड़े, वे सभी सैकड़ों हजारों, गणों के रूप में प्रकट हो गये, एवं वे सव देवी की शक्ति से शक्तिशाली होकर परशु, भिन्दिपाल तलवार और पट्टिश आदि अस्त्र लेकर असुरों का विनाश करते हुए युद्ध करने लगे ।। ४९–५३ ।।

नाशयन्तोऽसुरगणान् देवीशक्त्युपबृंहिताः ।
अवादयन्त पटहान् गणाः शङ्खांस्तथापरे ॥५४॥
मृदङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन् युद्धमहोत्सवे ।
ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिवृष्टिभिः ॥५५॥
खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान् ।
पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान् ॥५६॥
असुरान् भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत् ।
केचिद् द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे ॥५७॥
विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते ।
वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशं हताः ॥५८॥
केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि ।
निरन्तराः शरौघेण कृताः केचिद्रणाजिरे ॥५९॥
श्येनानुकारिणः प्राणान् मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः ।

उस युद्ध महोत्सव में गणसैन्यों में कोई पटह (ढोल) कोई शङ्ख, कोई मृदङ्ग बजाने लगे। अनन्तर देवी त्रिशूल, गदा, शक्ति खड्ग आदि वे प्रहार से सैकड़ों असुरों को मारने लगीं। कुछ असुरों को देवी ने घण्टे की भयंकर आवाज से मूछित कर भूतल पर गिरा दिगा और कुछ को पाश से बाँधकर धरती पर घसीटने लगी। कुछ असुरों को तीक्ष्ण तलवार से काटकर दो टुकड़े कर दिये, कुछ राक्षस गदा की चोट से मूछित होकर धरती पर सो गये। कुछ असुर मुसल की चोट से अत्यन्त घायल होकर रक्तवमन करने लगे, कुछ छाती में शूल विध जाने पर धरती पर गिर गये। कुछ असुर वाणों की वर्षा से हतोत्साह होकर ज्यों के त्यों खड़े रह गये ॥ ५४–५९ ॥

श्येन पक्षी की तरह दूसरे पक्षियों को झपटनेवाले तथा देवताओं को पीड़ा देनेवाले वहुत से असुर अपने प्राणों का त्याग कर दिया। कितने को

केषांचिद् बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ॥६०॥
शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः ।
विच्छिन्नजङ्घास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुराः ॥६१॥
एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद्देव्या द्विधा कृताः ।
छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः ॥६२॥
कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधाः ।
ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः ॥६३॥
कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः ।
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः ॥६४॥
पातितै रथनागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा ।
अगम्या साऽभवत्तत्र यत्राभूत्स महारणः ॥६५॥
शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र प्रसुस्रुवुः ।

भुजायें, कुछ की गर्दन और बहुतों के सिर कट गये और कुछ की छाती फट गई। कुछ असुर जङ्घा कट जाने से भूमि पर गिर पड़े। कुछ असुरों के देवी द्वारा ऐसे दो खण्ड हुए कि एक-एक खण्ड में एक भुजा, एक आँख और एक टाँग थी मानो शिर से गुदा तक आरे से चीर कर दो भाग किये हों। कितने ही असुर मस्तक फट जाने पर भी गिरकर, फिर उठ उठकर—केवल सिर रहित कलेवर के रूप में अच्छे-अच्छे हथियार हाथ में लेकर चण्डिका के साथ युद्ध करने लगे। कितने मस्तक रहित धड़ युद्ध क्षेत्र में तुरई (युद्ध के बाजों) की तान और लय के अनुसार नाचने लगे ॥ ६०–६३ ॥

कितने ही बिना सिर के धड़ हाथों में तलवार, शक्ति और ऋष्टि (द्विधारी तलवार) लेकर देवी से 'ठहरो-ठहरो' कहते हुए लड़ने लगे। जिस भू भाग पर वह भयंकर संग्राम हुआ था वहाँ पर पड़े रथ, हाथी, घोड़े और असुरों के पड़े होने के कारण वहाँ पैर रखने की भी जगह खाली नहीं थी।

मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम् ॥६६॥
क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका।
निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥६७॥
स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेशरः।
शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ॥६८॥
देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं महासुरैः।
यथैषां तुष्टुवुर्देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ॥ॐ॥६९॥

इति श्रीर्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
महिषासुरसैन्यवधो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥
उवाच १, श्लोकाः ६८, एवम् ६९,
एवमादितः १७३ ॥

—:०:—

वहाँ उस असुर सेना में हाथी, असुर और घोड़ों के रक्त की नदी बहने लगी ॥ ६४–६६ ॥

अग्नि जिस तरह क्षण भर में तृण काष्ठ के बड़े ढेर को भस्मीभूत कर देती है उसी तरह माँ अम्बिका ने भी असुरों की महान् सेना को क्षण भर में नष्ट कर दिया। तब देवी का वाहन सिंह भी गर्दन के बालों को हिलाता हुआ महान् गर्जन करके अवशिष्ट असुरों का मानों प्राण निकालने लगा। उस समय देवी के सैन्य गण भी असुरों के साथ घोर युद्ध किया, उसको देखकर देवताओं ने प्रसन्न होकर आकाश से पुष्पवृष्टि की ॥ ६७–६९ ॥

श्री मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत
देवी माहात्म्य में 'महिषासुर की सेना का वध' नामक दूसरा
अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६९–२ ॥

तृतीयोऽध्यायः

ध्यानम्—

ॐ उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम् ।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं
देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्देऽरविन्दस्थिताम् ।

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः ।
सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौ योद्धुमथाम्बिकाम् ॥२॥
स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः ।
यथा मेरुगिरेः शृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः ॥३॥
तस्यच्छित्त्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान् ।

तृतीय अध्याय—(सेनाओं के साथ महिषासुर का वध ।)

ध्यान—मैं ऐसी देवी को प्रणाम करता हूँ । जो देवी सैकड़ों सूर्य की कान्ति के समान है, एवं लाल वस्त्र को धारण की हुई हैं । मुण्ड की मालाएँ जिनके गले में सुशोभित हो रही हैं । रक्तचन्दन का लेप जिनके स्तन पर लगा हुआ है । जो अपने हाथों में जयमालिका तथा अविद्या अभय तथा वर नामक मुद्राएँ ली हुई हैं । जिनके मुख कमल की शोभा तीनों नेत्रों से हो रही है । चन्द्रमा से युक्त रत्नजडित मुकुट जिनके मस्तक पर बँधा हुआ है और पद्मासन पर बैठी हुई हैं ।

ऋषि ने कहा—॥ १ ॥

इसके बाद मरती हुई असुर सेनाओं को देखकर प्रधान सेनापति चिक्षुर स्वयं युद्ध करने के लिये क्रोध करके अम्बिका की ओर दौड़ा । सुमेरु पर्वत

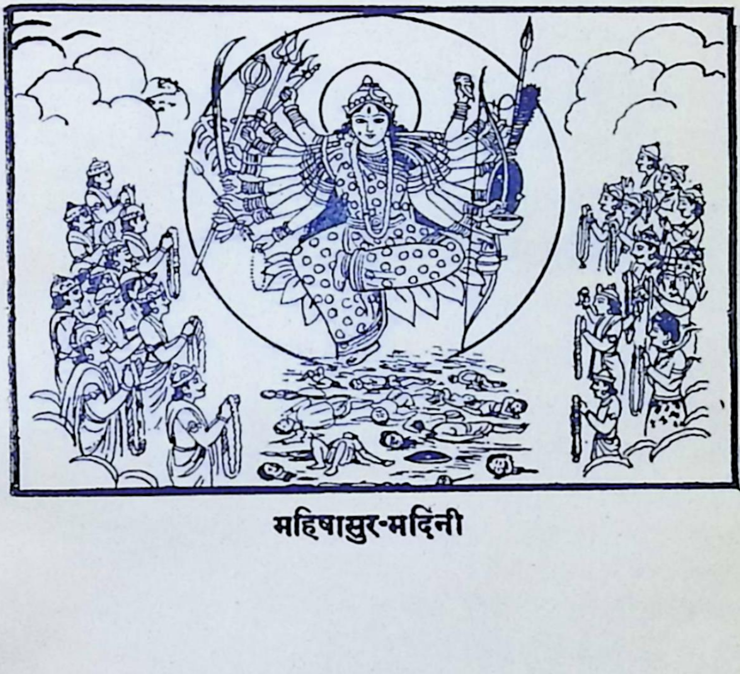

महिषासुर-मर्दिनी

जघान तुरगान् बाणैर्यन्तारं चैव वाजिनाम् ।।४।।
चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजं चातिसमुच्छ्रितम् ।
विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः ।।५।।
सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्मधरोऽसुरः ।।६।।
सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्धनि ।
आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान् ।।७।।
तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन ।
ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः ।।८।।
चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः ।
जाज्वल्यमानं तेजोभी रविबिम्बमिवाम्बरात् ।।९।।
दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत ।

के शिखर पर जैसे मेघ जल वर्षाते हैं उसी तरह रण क्षेत्र में देवी पर बाणों की वर्षा करने लगे। तब देवी ने अनायास ही उस चिक्षुर के बाण काटकर, अपने बाणों से उसके घोड़े और सारथी को मार डाला और बाणों के द्वारा तुरन्त उसके धनुष और बहुत ऊँची ध्वजा काटकर वही टूटा धनुष असुर के शरीर में वेध दिया ।। २–५ ।।

इस तरह चिक्षुर का धनुष कटा, रथ टूटा, घोड़े और सारथी मारा गया, तब वह असुर ढाल, तलवार लेकर देवी पर दौड़ा। फिर चिक्षुर ने अति वेग से तलवार की तीक्ष्णधार से सिंह के मस्तक पर और देवी के बायें हाथ पर आघात किया। हे राजकुमार सुरथ ! उस असुर की तलवार देवी की बाँह छूते ही टूट गई, तब उसने क्रोध से लाल नेत्र करके शूल हाथ में लिया ।। ६–८ ।।

अनन्तर महासुर (चिक्षुर) ने भद्रकाली पर शूल चलाया। सूर्य मण्डल की भाँति ज़ाज्वाल्यमान वह शूल आकाश में गिरता देखकर देवी ने भी अपना

तच्छूलं शतधा तेन नीतं स च महासुरः ॥१०॥
हते तस्मिन्महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ ।
आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥११॥
सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिका द्रुतम् ।
हुंकाराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ॥१२॥
भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः ।
चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत् ॥१३॥
ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरे स्थितः ।
बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥१४॥
युद्ध्यमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ ।
युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः ॥१५॥

शूल चलाया, देवी के शूल से राक्षस के शूल के सैकड़ों खण्ड करके महासुर चिक्षुर के भी सैकड़ों टुकड़े कर दिये ॥ ९–१० ॥

जब महिषासुर का सेनापति चिक्षुर मारा गया तब देवताओं को पीड़ा देनेवाला चामर हाथी पर सवार होकर युद्ध के लिये आया ॥ ११ ॥

उस चामर ने भी देवी को लक्ष्य करके शक्ति नामक हथियार चलाया, किन्तु अम्बिका के हुंकार द्वारा वह आहत और तेजहीन होकर वह धरती पर गिर गया ॥ १२ ॥

शक्ति अस्त्र निष्फल हुआ देखकर चामर ने क्रोध से शूल चलाया देवी ने बाण चलाकर उसे काटकर गिरा दिया ॥ १३ ॥

अनन्तर सिंह उछलकर चामर राक्षस के हाथी के मस्तक पर खड़ा होकर राक्षस से भयंकर मल्लयुद्ध करने लगा ॥ १४ ॥

वे दोनों (चामर और देवी का वाहन सिंह) युद्ध करते-करते धरती पर उतरकर अत्यन्त क्रोधित हो अति कठोर प्रहार से युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥

ततो वेगात् खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा ।
कर प्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक्कृतम् ॥१६॥
उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः ।
दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः ॥१७॥
देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम् ।
वाष्कलं भिन्दिपालेन वाणैस्ताम्रं तथान्धकम् ॥१८॥
उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम् ।
त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥१९॥
बिडालस्यासिना कायात्पातयामास वै शिरः ।
दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥२०॥
एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः ।
माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान् गणान् ॥२१॥

तब सिंह ने आकाश में उछलकर थप्पर मारकर चामर का सिर धड़ से अलग कर दिया ॥ १६ ॥

देवी ने उदग्र असुर को पत्थर और वृक्षादि प्रहार से एवं कराल असुर को दाँत, मुक्कों और पत्थरों के प्रहार से गिरा दिया ॥ १७ ॥

देवी ने क्रुद्ध होकर उद्धत असुर को गदा के प्रहार से, वास्कल असुर को भिन्दिपाल अस्त्र से, ताम्र और अन्धक असुर को बाणों से मार डाला। तब तीन नेत्रवाली परमेश्वरी ने त्रिशूल के आघात से उग्रास्य, उग्रवीर्य और महाहनु नामक तीन असुरों को भी उसी तरह मार डाला। तलवार से विडालाक्ष नामक असुर का शिर काट दिया और दुर्मुख तथा दुर्द्धर इन दो असुरों को बाण द्वारा यमपुरी भेज दिया ॥ १८–२० ॥

इस प्रकार अपनी सेना का वल क्षीण होते देखकर महिषासुर महिष का रूप धारण करके देवी के गणों को विशेष भयभीत करने लगा ॥ २१ ॥

कांश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान् ।
लाङ्गूलताडितांश्चान्याञ्छृङ्गाभ्यां च विदारितान् ॥२२॥
वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च ।
निःश्वासपवनेनान्यान् पातयामास भूतले ॥२३॥
निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः ।
सिंहं हन्तुं महादेव्याः कोपं चक्रे ततोऽम्बिका ॥२४॥
सोऽपि कोपान्महावीर्यः खुरक्षुण्णमहीतलः ।
शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च ॥२५॥
वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत ।
लाङ्गूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः ॥२६॥
धुतशृङ्गविभिन्नाश्च खण्डं खण्डं ययुर्घनाः ।
श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः ॥२७॥

महिषासुर ने कुछ गण सैन्य को, होठों की चोट से, कुछ को खुरों की चोट से, कुछ को पूंछ के आघात से, कुछ को सींगों के आघात से विदारित किया और कुछ को अपने तीव्र दौड़ से, कुछ को तेजी से गरजकर और कुछ को भ्रमण एवं निश्वास की हवा से धरती पर गिरा दिया ॥ २२–२३ ॥

गण की सेनाओं को गिरा करके वह असुर महादेवी की हत्या करने को दौड़ा । इससे अम्बिका अति क्रोधित हो गई ॥ २४ ॥

तब वह महापराक्रमी असुर भी खुर के द्वारा पृथिवी तल को खोदता हुआ अपने सींगों से ऊँचे-ऊँचे पर्वतों को फेकने लगा एवं जोर से गरजने लगा ॥ २५ ॥

उसके द्रुतगति से भ्रमण करने के कारण पृथिवी विदीर्ण हो गई और पूंछ से टकराकर समुद्र पृथिवी को डुबोने लगा ॥ २६ ॥

उस समय उसके कम्पित सिंगों के द्वारा मेघ समूह विदीर्ण होकर खण्ड-खण्ड हो गये एवं निश्वास की प्रचण्ड हवा के द्वारा पर्वत समूह आकाश में उड़कर पृथिवी पर गिरने लगे ॥ २७ ॥

इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम् ।
दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाकरोत् ॥२८॥
सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम् ।
तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे ॥२९॥
ततः सिंहोऽभवत्सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः ।
छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत ॥३०॥
तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः ।
तं खड्गचर्मणा सार्द्धं ततः सोऽभून्महागजः ॥३१॥
करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च ।
कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत ॥३२॥
ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः ।
तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥३३॥

इस प्रकार से क्रोधित होकर महिषासुर को आते देखकर चण्डिका देव उसके वध के लिये क्रोधित हो उठीं ॥ २८ ॥

एवं पाश फेककर उस असुर को बाँध लिया, उसने भी उस युद्ध में महिष रूप को छोड़कर सिंह रूप धारण कर लिया। जब तक अम्बिका उसका सिर काटनेवाली थी कि वह तुरन्त खड्गधारी एक पुरुष का रूप धारण कर लिया ॥ २९–३० ॥

उस समय देवी ने बाण के द्वारा खड्ग और चर्म सहित उसको छिन्न कर डाला, उसने तत्क्षण हाथी के रूप को धारण कर लिया ॥ ३१ ॥

तब सूंड़ के द्वारा वह देवी के सिंह को खींचकर गरजने लगा, तब देवी ने खड्ग से उसके सूंढ़ को काट डाला ॥ ३२ ॥

तब महिषासुर पुनः महिष के रूप को धारण कर लिया और पूर्ववत् सभी चराचरों को क्षुब्ध करने लगा ॥ ३३ ॥

ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम् ।
पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना ।।३४।।
ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः
विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान् ।।३५।।
सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः ।
उवाच तं महोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् ।।३६।।

देव्युवाच ।।३७।।

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम् ।
मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः ।।३८।।

ऋषिरुवाच ।। ३९ ।।

एवमुक्त्वा समुत्पत्य साऽऽरूढा तं महासुरम् ।
पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत् ।।४०।।

तब जगदम्बा ने क्रुद्ध होकर अनेकों बार अत्युत्तम मद्यपान किया। तब उनका नेत्र लाल हो उठा, एवं बारम्बार हँसने लगीं ।। ३४ ।।

बल, पराक्रम एवं मद से उद्धत वह असुर भी गरजता हुआ अपने सिंग से पर्वतों को उठाकर देवी चण्डिका के ऊपर फेकने लगा ।। ३५ ।।

तब चण्डिका शरों के द्वारा असुर के फेके हुए पर्वतों को चूर्ण करती हुई अस्पष्ट शब्द से उसको कहने लगी, उस समय उनका मुखमण्डल मद्यपान से अत्यन्त लाल हो गया ।। ३६ ।।

देवी ने कहा—।। ३७ ।।

रे मूढ़ ! मैं जब तक मधुपान करती हूँ तब तक तू गरज ले। मेरे द्वारा तुम्हारी मृत्यु होने पर अभी यहाँ देवता लोग गर्जन करेंगे ।। ३८ ।।

ऋषि ने कहा—।। ३९ ।।

देवी महिषासुर से ईस प्रकार कहकर उसके ऊपर चढ़ गई एवं अपने पैरों से उसे दबाकर शूल से उसके कण्ठ में प्रहार करने लगीं ।। ४० ।।

ततः सोऽपि पदाऽऽक्रान्तस्तया निजमुखात्ततः ।
अर्धनिष्क्रान्त एवासीद् देव्या वीर्येण संवृतः ॥४१॥
अर्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः ।
तया महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः ॥४२॥
ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत् ।
प्रहर्षं च परं जग्मुः सकला देवतागणाः ॥४३॥
तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः ।
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥४४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
महिषासुरवधो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥
उवाच ३, श्लोकाः ४१, एवम् ४४,
एवमादितः ॥ २१७ ॥

★:—:★

तव देवी के द्वारा इस प्रकार चरण से आक्रान्त उस असुर के अपने मुख से दूसरा शरीर निकलने लगा, उसके आधा निकलते ही देवी ने उसको बलात् रोक दिया ॥ ४१ ॥

तव आधे शरीर निकलने पर भी युद्ध में प्रवृत होने पर देवी ने अपनी तलवार से उसके सिर को काट डाला ॥ ४२ ॥

तब बची हुई उसकी सेनाएँ हाहाकार शब्द करती हुई भाग गई और देवता गण अत्यन्त प्रसन्न हो गये ।४३ ॥

एवं दिव्य महर्षियों के साथ देवतागण देवी की स्तुति करने लगे, । गन्धर्वराज गाने लगे और अप्सरायें नाचने लगी ॥ ४४ ॥

श्री मार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के
अन्तर्गत देवी महात्म्य में 'महिषासुर वध' नामक
तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥३—४४॥

चतुर्थोऽध्यायः

ध्यानम्—

ॐ कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम् ।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं
ध्यायेद्दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये
तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या ।
तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा
वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥ २ ॥

ध्यान—उन जया नाम की दुर्गा का ध्यान करना चाहिये। जिनके शरीर की कान्ति श्यामवर्ण मेघ के समान है। जो अपने कटाक्षों से शत्रुओं के कुलों को भय प्रदान करती है, जिनके मस्तक पर चन्द्रमा की रेखा लगी हुई है, जो अपने हाथों में शङ्ख, चक्र, कृपाण तथा त्रिशूल धारण की है, जो तीन नेत्रों से युक्त है, जो सिंह के कन्धे पर चढ़ी हुई है, एवं अपने तेज से तीनों लोकों को व्याप्त करती है, जो सिद्धि की इच्छा करने वाले लोगों से सेवित ए देवताओं से घिरी हुई है। ऋषि ने कहा—॥ १ ॥

देवी के द्वारा जब अत्यन्त बल शाली दुरात्मा महिषासुर और उसकी सेना मारी गई, तब इन्द्रादि देवगण सिर और कन्धे को झुकाकर सुकोमल वाक्यों द्वारा देवी की स्तुति करने लगे। उस समय हर्ष से उन लोगों का शरीर पुलकित हो उठा था ॥ २ ॥

श्रीशक्रादि-स्तुतिः

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥ ३ ॥

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च ।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥ ४ ॥

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥ ५॥

जो देवी अपनी शक्ति द्वारा इस संसार में व्याप्त हैं, जो सब देवताओं की शक्ति से आविर्भूत हैं, जिनकी पूजा समस्त देवतागण और महर्षिगण करते हैं, उस देवीं को हम भक्ति पूर्वक प्रणाम करते हैं, वे हमलोगों का कल्याण करें ।।१३।।

जिनकी अतुलनीय शक्ति तथा प्रभाव का वर्णन अनन्त देव, ब्रह्मा एवं शिव भी करने में असमर्थ है, वे चण्डिका सम्पूर्ण संसार का परिपालन एवं राक्षसों का विनाश करने की इच्छा करें ॥ ४ ॥

जो पुण्यात्माओं के घर में स्वयं लक्ष्मी हैं, पापियों के घर में अलक्ष्मी रूपा है, जो निर्मल चित्तवाले व्यक्तियों के हृदय में बुद्धि रूपिणी हैं, जो साधुओं में श्रद्धारूपिणी तथा अच्छे कुल में उत्पन्न व्यक्तियों की लज्जा रूपिणी हैं, ऐसे तुमको हम प्रणाम करते हैं । हे देवि ? तुम विश्व का परिपालन करो ॥ ५ ॥

किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि।
किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि
सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥ ६ ॥
हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषै-
र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥ ७ ॥
यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन
तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु-
रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ॥ ८ ॥

हे देवि ? तुम्हारा रूप और पराक्रम हम लोगों से अचिन्त्य है, इसलिये हम उस रूप एवं असुरों के विनाशकारी प्रचुर्यवीर्य का वर्णन कैसे कर सकते हैं, तुमने देवताओं और असुरों के बीच में जो युद्ध सम्बन्धी चरित्र प्रकट किया हैं, वह भी हमारे वाक् तथा मन के परे हैं। इस प्रकार के तुम्हारे गुणों का वर्णन हम कैसे कर सकते हैं ॥ ६ ॥

तुम सारे संसार का कारण हो, तुम सत्व, रज एवं तमो गुणमयी हो। हम लोगों की तो बात ही क्या है, ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी तुम्हारा पार नहीं पा सकते हैं। तुम अनन्त ब्रह्माण्डों की आधार भूता हो, पुनः सारा जगत् तुम्हारा ही अंशभूत है। तुम ही अव्याकृत तथा परमप्रकृत आदि शक्ति हो ॥ ७ ॥

हे देवि ? सभी प्रकार के यज्ञों में देवतागण जिसके उच्चारण से तृप्त होते हैं, वह स्वाहा मंत्र तुम हो। जिसके उच्चारण से पितृगण तृप्त होते हैं वह स्वधा मंत्र रूप भी तुम ही हो। इसी कारण तुमको स्वाहा और स्वधारूप से लोग उच्चारण करते हैं ॥ ८ ॥

या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्व-
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः ।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तदोषै-
र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥ ९ ॥
शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम् ।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
वार्त्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री ॥१०॥
मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा ।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा
गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥११॥

तुम्हीं मुक्ति का कारण परमाविद्यारूपिणी हो, इसी कारण मोक्षार्थी मुनिगण राग द्वेष आदि सब दोषों का परित्याग करके संयतेन्द्रिय हो ब्रह्म-तत्वनुसन्धान की इच्छा से तुम्हारी चिन्तन करते हैं। हे देवि ? तुम अवि-चिन्त्य हो, तुम सर्वोत्कृष्ट हो ॥ ९ ॥

तुम शब्दरूपिणी हो, इसीलिये तुम को उद्गीथ एवं रमणीय पदपाठ विशिष्ट ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद का आश्रय कहते हैं, पुनः तुम वेद-रूपिणी हो, तुम ही ईश्वरी हो, तुम ही संसार के पालन के निमित्त कृष्यादि-रूप से विद्यमान हो, एवं जगत् के कष्टों को तुम्हीं दूर करती हो ॥ १० ॥

हे देवि ? सभी शास्त्रों के तत्व को जाननेवाली मेधा तुम ही हो। तुम दुर्गम संसारसागर की नौका रूपी दुर्गा हो। तुम्हारी कहीं भी आशक्ति नहीं हैं। तुम ही कैटभारि विष्णु के हृदय में लक्ष्मी रूप से विराजमान हो, भगवान् शङ्कर से सम्मानित गौरी तुम ही हो ॥ ११ ॥

ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र-
बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम् ।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ॥१२॥
दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकराल-
मुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः ।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ॥१३॥
देवि प्रसीद परमा भवती भवाय
सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि ।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत-
न्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥१४॥

हे देवि ! अत्युत्तम सुवर्ण की सुन्दर कान्ति से सुशोभित, मृदु मन्द हास्य युक्त निर्मल तुम्हारा मुखमण्डल पूर्ण चन्द्र विम्ब को नीचा दिखा रहा है, ऐसे मुखमण्डल को देखकर भी महिषासुर ने क्रोधित होकर तुम पर प्रहार किया यह बड़ा ही आश्चर्य है ।। १२ ॥

हे देवि ! वही मुख क्रोध में आने पर उदयकालीन चन्द्रमा के समान लाल हो गया एवं भौंहें टेढ़ी हो गई । इस प्रकार के मुखमण्डल को देखकर भी महिषासुर ने प्राण नहीं त्याग किया, यह बड़ा ही आश्चर्य की वात है । क्योंकि कुपित यम के समान तुम्हारे मुखमण्डल को देखकर कोई जीवित नहीं रह सकता है ॥ १३ ॥

हे देवि ! आप संसार के कल्याण के लिये प्रसन्न हों, क्योंकि जिस पर आप कुपित हो जाती हैं, उसके कुल का तत्क्षण नाश हो जाता है । यह वात अभी ही मालूम हो चुकी है कि आपके कुपित होने से महिषासुर की विपुल सेना का नाश हो गया है ॥ १४ ॥

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥१५॥
धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्मा-
ण्यत्याद्दतः प्रतिदिनं सुकृती करोति।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादा-
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ॥१६॥
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता ॥१७॥

हे देवि ! जिन पर आप प्रसन्न होती हैं वे ही देश में सम्मानित होते हैं, उनका ही धन, यश और कर्म सुरक्षित रहता है। उनके पुत्र, मृत्यु और पत्नी विनीत और स्वस्थ हैं। अतएव संसार में वे ही धन्य हैं ॥ १५ ॥

हे देवि ? तुम्हारी प्रसन्नता से ही पुण्यवान् लोग प्रतिदिन श्रद्धा के साथ धामिक कर्मों का अनुष्ठान करते हैं, एवं धामिक कर्मों के अनुष्ठान से स्वर्ग के अधिकारी होते हैं, अत एव तुम्हारी प्रसन्नता त्रिलोक में फलदात्री हुआ करती है ॥ १६ ॥

हे दुर्गे ? भयभीत होकर आपत्तिकाल में तुमको स्मरण करने से तुम प्राणिमात्र का भय दूर करती हो, और पुनः जो लोग स्वस्थ होकर स्मरण करते हैं, उनका तुम अत्यन्त कल्याण करती हो, तुम सब का पारिद्रय दुःख विनाश करती हो, तुम्हारे विना प्राणिमात्र के सब प्रकार के उपकार के लिये किसका चित्त दयार्द्र होगा ? ॥ १७ ॥

एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम् ।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि ॥१८॥

दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम् ।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी ॥१९॥

खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः
शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम् ।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्ड-
योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥२०॥

हे देवि ? इन असुरों का विनाश करने से संसार में सभी सुखी हों, और ये राक्षस नरक में रहने के निमित्त भले ही पाप करते हों, लेकिन युद्ध में मरकर इनको स्वर्ग मिले यह विचार कर ही आप इन राक्षसों को मारती हैं ॥ १८ ॥

हे देवि ! तुम दृष्टिपात-मात्र से ही तो असुरों को भस्म कर सकती थीं, फिर भी ऐसा न करके सब शत्रुओं पर जो शस्त्र चलाये हैं, इसका हेतु-शत्रुगण भी तुम्हारे शस्त्राघात से निष्पाप होकर स्वर्ग में गमन करेंगे। इस प्रकार शत्रुओं के प्रति भी आपका विचार उत्तम रहता है ॥ १९ ॥

अत्युग्र तलवार के प्रभापुञ्जों के द्वारा एवं त्रिशूल के तीक्ष्ण नोक की चमक से असुरों की आँखें तत्काल नष्ट नहीं हुई थीं, इसका एकमात्र कारण यही था कि वे मनोहर किरणों से सुशोभित चन्द्रमा के समान आनन्द देनेवाले आपके मुख का दर्शन करते थे ॥ २० ॥

दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः ।
वीर्यं च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥२१॥
केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य
रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र ।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥२२॥
त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन
त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा ।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त-
मस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ॥२३॥

हे देवि ! दुष्टों के बुरे स्वभाव को शमन करना तुम्हारा मृदुल स्वभाव है, दूसरी ओर अतुलनीय रूप एवं देवताओं के पराक्रम को नष्ट करनेवाले असुरों के नाश में समर्थ आपका पराक्रम अचिन्तनीय है। इस प्रकार आपने शत्रुओं पर भी दया प्रदान की है ॥ २१ ॥

हे देवि ! तुम्हारे इस पराक्रम की उपमा कहीं भी किसी के साथ नहीं हो सकती है, एवं शत्रुओं के लिये भयजनक फिर भी अति मनोहारी इस रूप का भी अन्यत्र तुलना नहीं हो सकती है। हे वरदे ! युद्ध में निष्ठुरता एवं चित्त में दया एक साथ तुम में ही सम्भव है, तुम्हारे अलावा त्रिभुवन में अन्यत्र इसका दृष्टान्त नहीं है ॥ २२ ॥

हे देवि ! तुमने युद्ध में शत्रुओं का विनाश करके तीनों लोकों का परित्राण किया हैं; शत्रुगण भी तुम्हारे द्वारा इस प्रकार युद्ध में प्राण त्याग करके स्वर्गगामी हुए हैं, हम लोगों का उद्धत असुरकुलजनित भय दूर हुआ है, अतः आपको नमस्कार है ॥ २३ ॥

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥२४॥
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥२५॥
सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥२६॥
खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥२७॥

ऋषिरुवाच ॥ २८ ॥

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः ।
अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ॥२९॥
भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता ।
प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ॥३०॥

हे देवि ! शूल से हमारी रक्षा करो, हे अम्बिके ! तुम तलवार के द्वारा घण्टा की आवाज के द्वारा तथा धनुष की टंकार से हम लोगों की रक्षा करो ॥ २४ ॥

हे चण्डिके ! तुम अपने त्रिशूल को घुमाकर पूरब, पश्चिम दक्षिण एवं उत्तर दिशाओं में हमारी रक्षा करो ॥ २५ ॥

तुम्हारे जो सौम्यरूप एवं भयानकरूप तीनों लोकों में विराजमान हैं, उनके द्वारा हमारी तथा संसार की रक्षा करो ॥ २६ ॥

हे अम्बिके ! खड्ग, शूल, गदा आदि जो अस्त्र तुम्हारे करवल्लभ में सुशोभित हो रहे हैं, उनके द्वारा हमारी सब ओर से रक्षा करो ॥ २७ ॥

ऋषि ने कहा—॥ २८ ॥

हे सुरथ; देवताओं ने इस तरह जगद्धात्री की स्तुति करके, नन्दन वन में उत्पन्न दिव्य पुष्पों से, गन्ध और अनुलेपन द्वारा उनकी पूजा की। तब सब देवताओं ने भक्ति पूर्वक धूप प्रदान किया, उस समय प्रसन्न होकर सुमुखी देवी ने प्रणत देवताओं से कहा ॥ २९–३० ॥

देव्युवाच ॥ ३१ ॥

व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् ॥३२॥

देवा ऊचुः ॥ ३३ ॥

भगवत्या कृतं सर्वं न किंचिदवशिष्यते ॥३४॥
यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ।
यदि चापि वरो देयस्त्वयाऽस्माकं महेश्वरि ॥३५॥
संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः ।
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ॥३६॥
तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम् ।
वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ॥३७॥

ऋषिरुवाच ॥ ३८ ॥

देवी ने कहा—॥ ३१ ॥

हे देवतागण ! मैं तुम लोगों की स्तुति से प्रसन्न हूँ, अत एव तुम लोग अभीष्ट वर की माँग करो, वह मैं प्रेमपूर्वक देती हूँ ॥ ३२ ॥

नेवताओं ने कहा—॥ ३३ ॥

हे देवि ! आपने हमारे शत्रु महिषासुर का विनाश करके सब कुछ किया है और कुछ अवशिष्ट नहीं है। हे महेश्वरि ! यदि आप हम लोगों को वर देना चाहती हैं तो, जब-जब हमलोग आपका स्मरण करें तब-तब आप हमारी विपत्तियाँ दूर कर दें। हे निर्मलमुखी देवि ! आप से एक और भी प्रार्थना करते हैं कि, जो मनुष्य इस स्तोत्रों से आपकी स्तुति करे, उसे वित्त, ऋद्धि और वैभव देने के साथ ही उसके धन, कलत्रादि का अभ्युदय हो। हे अम्बिके ! सदा हम लोगों पर आप प्रसन्न रहें ॥ ३४–३७ ॥

ऋषि ने कहा—॥ ३८ ॥

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः ।
तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥३९॥
इत्येतत्कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा ।
देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ॥४०॥
पुनश्च गौरीदेहात् सा समुद्भूता यथाऽभवत् ।
वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः ।४१॥
रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी ।
तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत्कथयामि ते ॥ह्रीं ॐ॥४२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
शक्रादिस्तुतिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
उवाच ५, अर्धश्लोकौ २, श्लोकाः ३५,
एवम् ४२ एवमादितः २५९ ॥

—:०:—

देवताओं के इस प्रकार अपने लिए एव जगत् के लिये देवी को प्रसन्न करने पर "ऐसा ही होगा" कहकर भद्रकाली देवी अन्तर्हित हो गयीं ॥ ३९ ॥

हे राजन् ! तीनों लोकों का हित चाहनेवाली देवी पूर्वकाल में देवताओं के शरीर से आविर्भूत हुई थीं ॥ ४० ॥

अब धूम्रलोचन आदि दुष्ट दैत्यगण एवं शुम्भ, निशुम्भ के वध के लिये तथा तीनों लोकों की रक्षा के लिये देवताओं का उपकार करनेवाली देवी जिस प्रकार गौरी के शरीर से आविर्भूत हुई थीं, उसे भी विस्तारपूर्वक कहता हूँ, सुनो—॥ ४१–४२ ॥

श्री मार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत
देवीमाहात्म्य में शक्रादि की स्तुति नामक
चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ ॥४॥

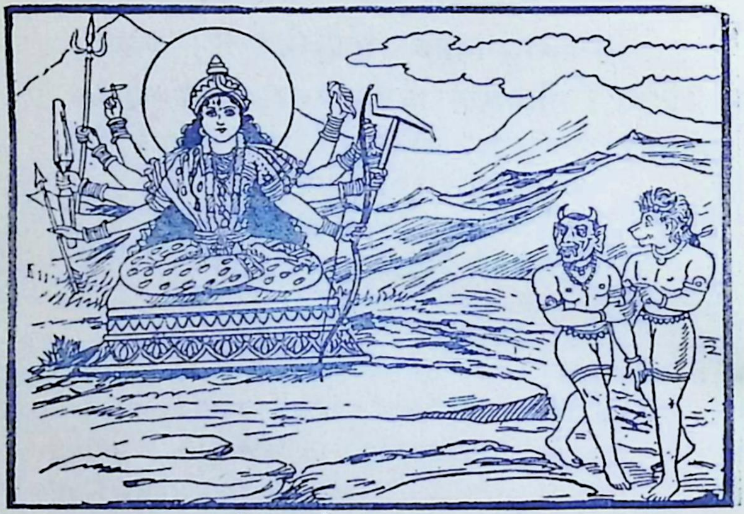

श्री १०८ देव्यादूतसम्वादः

पञ्चमोऽध्यायः

विनियोगः

ॐ अस्य श्री उत्तरचरित्रस्य रुद्रऋषिः, महासरस्वती देवता, अनुष्टुप् छन्दः, भीमा शक्तिः भ्रामरी बीजम्, सूर्यस्तत्त्वम्, सामवेदः स्वरूपम्, महासरस्वतीप्रीत्यर्थे उत्तरचरित्रपाठे विनियोगः ।

ध्यानम्—

ॐ घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् ।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ॥

'ॐ क्लीं' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः ।
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात् ॥ २ ॥

ध्यान का अर्थ—जिसने अपने करकमलों में घण्टा, शूल, हल, शङ्ख, मूसल, चक्र, धनुष और वाणों को धारण किया है । शरद कालीन चन्द्रमा की सुन्दर कान्ति की तरह जिसकी कान्ति है । जिसकी उत्पत्ति गौरी के शरीर से हुई है, जो शुम्भ-निशुम्भ आदि दैत्यों का विनाश करनेवाली हैं, उन महासरस्वती देवी का मैं भजन करता हूँ ।

ऋषि ने कहा—॥ १ ॥

प्राचीनकाल में शुम्भ और निशुम्भ नामक दो असुरों ने गर्व एवं बल से इन्द्र के तीनों लोकों का आधिपत्य तथा यज्ञभाग को छीन लिया था ॥ २ ॥

तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम् ।
कौबेरमथ याम्यं च चक्राते वरुणस्य च ॥ ३ ॥
तावेव पवनर्द्धिं च चक्रतुर्वह्निकर्म च ।
ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः ॥ ४ ॥
हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः ।
महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम् ॥ ५ ॥
तयास्माकं वरो दत्तो यथाऽऽपत्सु स्मृताखिलाः ।
भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात् परमापदः ॥ ६ ॥
इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम् ।
जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥ ७ ॥

देवा ऊचुः ॥ ८ ॥

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।

तथा उन दोनों ने ही सूर्य, चन्द्र, कुबेर, यम एवं वरुणदेव के अधिकारों को अपने अधिकार में ले लिया था ॥ ३ ॥

तब शुम्भ और निशुम्भ ही वायु और अग्नि के कार्य करने लगे। इस प्रकार सभी देवों को अपमानित, राज्यभ्रष्ट, पराजित एवं अधिकारहीन करके वे असुर उन्हें स्वर्ग से निकाल दिये ॥ ४ ॥

उस समय महा असुर शुम्भ-निशुम्भ द्वारा अधिकारच्युत एवं स्वर्ग से वहिष्कृत होकर देवताओं ने अपराजिता देवी का स्मरण किया ॥ ५ ॥

एवं सोचने लगे कि देवी ने पहले हम लोगों को वर प्रदान किया है कि तुम लोगों के स्मरण करते ही मैं आविर्भूत होकर तत्क्षण तुम लोगों की विपत्ति दूर करूँगी ॥ ६ ॥

इस प्रकार सोचकर नगाधिराज हिमालय पर जाकर देवतागण विष्णु-माया देवी की स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥

देवताओं ने कहा—॥ ८ ॥

देवी तथा महादेवी को हमारा प्रणाम है। कल्याणरूपिणी शिवा को सदा

नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ।। ९ ।।
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः ।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ।।१०।।
कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः ।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ।।११।।
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै ।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ।।१२।।
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः ।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ।।१३।।
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।
नमस्तस्यै।।१४।।नमस्तस्यै ।१५।।नमस्तस्यै नमो नमः ।।१६।।

प्रणाम है। मूलप्रकृति एवं भद्रा देवी को प्रणाम है। नियमपूर्वक देवी को हमलोग प्रणाम करते हैं ।। ९ ।।

भयानकरूपा, नित्या, गौरी और धात्री देवी को प्रणाम है। ज्योत्स्ना सर्पिणी, इन्द्ररूपिणी तथा आनन्दरूपिणी देवी को सतत प्रणाम है ।। १० ।।

कल्याण करनेवाली. वृद्धि और सिद्धि को देनेवाली देवी को बार-बार प्रणाम है। नैर्ऋति (दैत्यों की लक्ष्मी), राजलक्ष्मी तथा शर्वाणी देवी को प्रणाम है ।। ११ ।।

तुम दुर्गम्या दुर्गा हो, पुनः तुम ही संसार से उद्धार करनेवाली हो, तुम सब की कारणभूता हो, तुम प्रतिष्ठारूपिणी हो, तुम कृष्णवर्णा एवं धूम्रा हो तुमको सतत नमस्कार है ।। १२ ।।

तुम अतिमधुरा हो, पुनः भयानक रूपधारिणी हो, तुमको प्रणतभाव से बार-बार प्रणाम है। तुम संसार की प्रतिष्ठारूपिणी हो, तुमको प्रणाम है, तुम देवी हो, तुम क्रियारूपिणी हो, तुमको बार-बार नमस्कार है ।। १३ ।।

जो देवी विष्णुमाया रूप से प्रत्येक प्राणियों में विद्यमान हैं, उनको बार-बार प्रणाम है ।। १४–१६ ।।

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै॥१७॥नमस्तस्यै॥१८॥नमस्तस्यै नमो नमः॥१९॥
या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै।२०॥नमस्तस्यै॥२१॥नमस्तस्यै नमो नमः॥२२॥
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥२३॥नमस्तस्यै॥२४॥नमस्तस्यै नमो नमः॥२५॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥२६॥नमस्तस्यै॥२७॥नमस्तस्यैनमो नमः॥२८॥
या देवी सर्वभूतेषुच्छायारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै।२९॥नमस्तस्यै॥३०॥नमस्तस्यै नमो नमः॥३१॥
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥३२॥नमस्तस्यै॥३३॥नमस्तस्यै नमो नमः॥३४॥

जो देवी समस्त प्राणियों में चेतनारूप से विद्यमान हैं, उनको बार-बार प्रणाम है ॥ १७–१९ ॥

जो देवी सब प्राणिमात्र में बुद्धिरूप से विराजमान हैं, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ २०–२२ ॥

जो देवी सभी प्राणियों में निद्रारूप से विराजमान हैं, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ २३–२५ ॥

जो देवी सब भूतों में क्षुधारूप से स्थित हैं, उनको पुनः-पुनः प्रणाम है ॥ २६–२८ ॥

जो समस्त प्राणियों के हृदय में छायारूप अर्थात् अविद्यारूप से विद्यमान हैं, उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ २९–३१ ॥

जो देवी सब प्राणियों में शक्तिरूप से विद्यमान हैं, उनको पुनः पुनः प्रणाम है ॥ ३२–३४ ॥

या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ।।३५।।नमस्तस्यै।।३६।। नमस्तस्यै नमो नमः ।।३७।।
या देवी र्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै।।३८।।नमस्तस्यै ।।३९।।नमस्तस्यै नमो नमः ।।४०।।
या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै।।४१।।नमस्तस्यै।।४२।।नमस्तस्यैनमो नमः ।।४३।।
या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै।।४४।।नमस्तस्यै।।४५।।नमस्तस्यै नमो नमः ।।४६।।
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै।।४७।।नमस्तस्यै।।४८।।नमस्तस्यै नमो नमः ।।४९।।
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै।।५०।।नमस्तस्यै।।५१।।नमस्तस्यै नमो नमः ।।५२।।

जो देवी समस्त प्राणियों में तृष्णा (वासना) रूप से विराजमान हैं, उनको बारम्वार प्रणाम है ।। ३५-३७ ।।

जो देवी समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में क्षमारूप से विद्यमान हैं, उनको नमस्कार है, उनको नमस्कार है, उनको बारम्वार नमस्कार है ।।३८-४०।।

जो देवी समस्त प्राणियों में जातिरूप से स्थित है, उनको नमस्कार है, उनको नमस्कार है, उनको बारम्वार नमस्कार है ।। ४१-४३ ।।

जो देवी समस्त प्राणियों में लज्जारूपिणी हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्वार नमस्कार है ।। ४४-४६ ।।

जो देवी सभी प्राणियों में शान्तिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्वार नमस्कार है ।। ४७-४९ ।।

जो देवी सभी प्राणियों में श्रद्धारूप से स्थित है, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्वार नमस्कार है ।। ५०-५२ ।।

या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै।।५३।।नमस्तस्यै।।५४।।नमस्तस्यै नमो नमः ।।५५।।
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै।।५६।।नमस्तस्यै ।।५७।।नमस्तस्यै नमो नमः ।।५८।।
या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै।।५९।।नमस्तस्यै।।६०।।नमस्तस्यै नमो नमः ।।६१।।
या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै।।६२।। नमस्तस्यै ।।६३।।नमस्तस्यै नमो नमः ।।६४।।
या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै।।६५।।नमस्तस्यै।।६६।।नमस्तस्यै नमो नमः ।।६७।।
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै।।६८।।नमस्तस्यै।।६९।।नमस्तस्यै नमो नमः ।।७०।।

जो देवी समस्त प्राणियों में कान्तिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारम्वार नमस्कार है ।। ५३–५५ ।।

जो देवी सभी प्राणियों में लक्ष्मीरूप से विद्यमान हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारम्वार नमस्कार है ।। ५६–५८ ।।

जो देवी सभी प्राणियों में क्लिष्ट और अक्लिष्ट वृत्तिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारम्वार नमस्कार है ।।५९–६१।।

जो देवी समस्त प्राणियों के हृदय में स्मृतिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारम्बार नमस्कार है ।। ६२–६४ ।।

जो देवी समस्त प्राणियों में दयारूप से विराजमान हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बार-बार नमस्कार है ।। ६५–६६ ।।

जो देवी समस्त प्राणियों में तुष्टिरूप से विद्यमान हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बार-बार नमस्कार है ।। ६८–७० ।।

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥७१॥नमस्तस्यै॥७२॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥७३॥

या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥७४॥नमस्तस्यै॥७५॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥७६॥

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥७७॥

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै॥७८॥नमस्तस्यै॥७९॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥८०॥

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रया-
त्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥८१॥

जो देवी समस्त प्राणियों में मातारूप से विद्यमान हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बार-बार नमस्कार है ॥ ७१–७३ ॥

जो देवी समस्त प्राणियों में भ्रान्तिरूप से विद्यामान है, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बार-बार नमस्कार है ॥ ७४–७६ ॥

जो देवी सभी इन्द्रियों एवं प्राणियों की अधिष्ठात्री हैं, जो समस्त प्राणिमात्र में निरन्तर विराजमान हैं, उनको बार-बार प्रणाम हैं ॥ ७७ ॥

जो चैतन्यरूप से समस्त संसार में व्याप्त होकर विराजमान हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बार-बार नमस्कार है ॥ ७८–८० ॥

पूर्व में महिषासुर के वध के समय देवताओं ने जिनकी स्तुति की थी, देवेन्द्र जिनकी प्रतिदिन सेवा करते थे, जिनको हमलोग अभी भी उद्धत

या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै-
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते ।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ।।८२।।

ऋषिरुवाच ।। ८३ ।।

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती ।
स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन ।।८४।।
साऽब्रवीत्तान् सुरान् सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का ।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा ।।८५।।
स्तोत्रं ममैतत् क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः ।
देवैः समेतैः समरे निशुम्भेन पराजितैः ।।८६।।
शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका ।
कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ।।८७।।

दैत्यों से उद्‌विग्न होकर विनम्र भाव से प्रणाम करते हैं, जो स्मरणमात्र से ही सब विपत्तियों का नाश करती हैं, वे कल्याण विधायिनी देवी सदा हमलोगों का मंगल करें एवं विपत्तियों को दूर करें ।। ८१—८२ ।।

ऋषि ने कहा ।। ८३ ।।

हे राजन् ! इस प्रकार देवतागण स्तुति कर रहे थे, कि इतने में पार्वती देवी गंगाजल में स्नान करने के लिए आयीं ।। ८४ ।।

उन्होंने समस्त देवताओं से पूछा कि, आप लोग किसकी स्तुति कर रहे हैं ? सुन्दर भौंह वाली भगवती के पूछते ही उनके अपने शरीर से आविर्भूत होकर बोली—हे देवगण ! युद्धक्षेत्र में शुम्भ-निशुम्भ के द्वारा पराजित होकर हमारी ही स्तुति कर रहे हैं ।। ८५—८६ ।।

यह देवी पार्वती के शरीर से उत्पन्न होने के कारण जगत् में "कौशिकी" नाम से विख्यात हुई ।। ८७ ।।

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत् सापि पार्वती ।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥८८॥
ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम् ।
ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः ॥८९॥
ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा ।
काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ॥९०॥
नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम् ।
ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर ॥९१॥
स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा ।
सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान् द्रष्टुमर्हति ॥९२॥
यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो ।
त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे ॥९३॥

अनन्तर शरीरकोश से कौशिकी के आविर्भूत होने से पार्वती कृष्णवर्ण हो गईं, तब वे हिमालय को आश्रय करके रहीं और कृष्णवर्णा होने 'कालिका' नाम से विख्यात हुईं ॥ ८८ ॥

जब कौशिकी अम्बिका परम रमणीय रूप धारण करके विराजमान हुईं, उस समय शुम्भ और निशुम्भ के सेवक चण्ड और मुण्ड ने उनको देखा ॥८९॥

चण्ड और मुण्ड ने शुम्भ से कहा कि—महाराज ! अत्यन्त सुन्दरी एक कोई स्त्री हिमालय को अपनी प्रभा से प्रकाशित कर रही है ॥ ९० ॥

वैसा सुन्दररूप शायद कभी किसी ने नहीं देखा है, । हे असुरेन्द्र ! आप एक बार जानकारी करें कि वह स्त्री कौन है ? एवं जानकर आप उसको ग्रहण करें ॥ ९१ ॥

हे दैत्येन्द्र ! वह स्त्रियों में रत्नरूपा है, उसके प्रभापटल से सारा दिङ्मण्डल प्रकाशित हो रहा है । आप चाहें तो उसको देख सकते हैं ॥ ९२ ॥

हे प्रभो ! तीनों लोकों में जितने श्रेष्ठ हाथी, घोड़े आदि, रत्न तथा पद्मरागादि मणि हैं, वे सभी इस समय आपके पास सुशोभित है ॥ ९३ ॥

ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात् ।
पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवा हयः ॥९४॥
विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गणे ।
रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्भुतम् ॥९५॥
निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात् ।
किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम् ॥९६॥
छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठति ।
तथायं स्यन्दनवरो यः पुराऽऽसीत् प्रजापतेः ॥९७॥
मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हृता ।
पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ॥९८॥
निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः ।
वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी ॥९९॥

आप हाथियों में श्रेष्ठ ऐरावत, घोड़ों में श्रेष्ठ उच्चैःश्रवा तथा वृक्षों में श्रेष्ठ पारिजातादि को इन्द्र के यहाँ से लाये हैं। हंस से युक्त विमान भी आपके पास रक्खा है। वह विमान रत्न से सुशोभित है, जो ब्रह्मा के पास था, अभी आपके यहाँ लाया गया है ॥ ९४–९५ ॥

आप यह महापद्म नामक विधि धनपति कुवेर के पास से ले आये हैं, किञ्जल्किनी नामक माला भी समुद्र ने आप को दिया है, जिसका कमल कभी मलिन नहीं होता ॥ ९६ ॥

आपके पास वरुण का छत्र शोभायमान हो रहा है, जिससे स्वर्ण की वर्षा होती रहती है। आपके पास प्रजापति का श्रेष्ठ रथ भी विद्यमान है ॥ ९७ ॥

आपने यम की उत्क्रान्ति नामक शक्ति भी अपहरण करके अपने यहाँ रक्खी है। वरुणदेव का पारा और समुद्र से उत्पन्न सारे रत्न समूह भी आपके भाई निशुम्भ के हाथ शोभायमान है। अग्नि ने भी स्वयं वस्त्र को शुद्ध करके आपको दिये हैं ॥ ९८–९९ ॥

एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते ।
स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते ॥१००॥

ऋषिरुवाच ॥ १०१ ॥

निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्डमुण्डयोः ।
प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम् ॥१०२॥

इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम ।
यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु ॥१०३॥

स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने ।
सा देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥१०४॥

दूत उवाच ॥ १०५ ॥

देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः ।
दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥१०६॥

हे दैत्यराज ! इस प्रकार आपने सभी श्रेष्ठ रत्न अपने अधिकार में कर लियो है, तो इस मंगलमयी रत्नस्वरूपा स्त्री को आप क्यों नहीं ग्रहण करते हैं ? ॥ १०० ॥

ऋषि ने कहा—॥ १०१ ॥

उस समय शुम्भ ने इस प्रकार चण्ड और मुण्ड की बात सुनकर देवी के पास महा असुर सुग्रीव नामक दूत को भेजा ॥ १०२ ॥

और उससे कहा कि, तुम हमारे कथनानुसार देवी को कहना तथा ऐसा करना कि वह प्रेम सहित यहाँ शीघ्र चली आवे ॥ १०३ ॥

इसके बाद दूत अत्यन्त रमणीय हिमालय प्रदेश पर जहाँ देवी विराजमान थीं, जाकर अति मधुर वाक्य मृदुल भाव से बोलने लगा ॥ १०४ ॥

दूत ने कहा—॥ १०५ ॥

हे देवि ! दैत्यराज शुम्भ तीनों लोकों का राजा है, मैं उसीका दूत हूँ, उन्होंने ही मुझको तुम्हारे पास भेजा है ॥ १०६ ॥

अव्याहताज्ञः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु ।
निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत् ॥१०७॥
मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः ।
यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक् ॥१०८॥
त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः ।
तथैव गजरत्नं च हृत्वा देवेन्द्रवाहनम् ॥१०९॥
क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः ।
उच्चैःश्रवससंज्ञं तत् प्रणिपत्य समर्पितम् ॥११०॥
यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च ।
रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ॥१११॥
स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम् ।
सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम् ॥११२॥

जिसकी आज्ञा सभी देवताओं के यहाँ निर्बाध रूप से चलती है, जिन्होंने सब शत्रुओं को पूर्णरूप से पराजित कर दिया है, उसी शुम्भ ने आपको जो कहा है, वह सुनिये—॥ १०७ ॥

समस्त त्रैलोक्य हमारे वश में हैं, देवगण हमारे अधीन हैं, मैं सारे देवताओं का यज्ञभाग पृथक्-पृथक् भाव से भोग करता हूँ ॥ १०८ ॥

तीनों लोकों में जो कुछ श्रेष्ठ रत्न हैं वे सब हमारे पास हैं, उसी प्रकार हाथियों में श्रेष्ठ ऐरावत हमारे ही वश में है, । क्षीरसागर मथन करके जो उच्चैःश्रवा नामक अश्वरत्न देवताओं ने पाया था, उसे भी वे विनयपूर्वक मुझको समर्पण कर दिये हैं ॥ १०९–११० ॥

हे देवि ! देव, गन्धर्व और नागों के पास जो रत्न थे वे सभी हमारे पास हैं ॥ १११ ॥

हे देवि ! संसार की स्त्रियों में हम लोग तुमको रत्न मानते हैं, तुम मेरे पास चली आओ, क्योंकि सभी रत्नों का उपभोग करने वाले केवल हम ही है ॥ ११२ ॥

मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम् ।
भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः ॥११३॥
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात् ।
एतद् बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ॥११४॥

ऋषिरुवाच ॥ ११५ ॥

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तःस्मिता जगौ ।
दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् । ११६॥

देव्युवाच ॥ ११७ ॥

सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किंचित्त्वयोदितम् ।
त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः । ११८॥
किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम् ।
श्रूयतामल्पबुद्धित्वात् प्रतिज्ञा या कृता पुरा ॥११९॥

हे चञ्चल नेत्र वाली ! तुम मेरी या मेरे प्रबल पराक्रमी भाई निशुम्भ की सेवा के लिये आ जाओ, क्योंकि तुम स्त्रियों में रत्नरूपा हो ? ॥ ११३ ॥

मेरे आश्रय में आने से तुम अतुल ऐश्वर्यों की अधिकारिणी बनोगी ऐसा सोचकर मेरी स्त्री बनो ॥ ११४ ॥

ऋषि ने कहा—॥ ११५ ॥

इस प्रकार देवी से दूत के कहने पर मंगलमयी जगद्धात्री भगवती दुर्गा थोड़ा मुस्कुराकर गम्भीर भाव से बोली ॥ ११६ ॥

देवी ने कहा—॥ ११७ ॥

हे दूत ! तुमने यह जो कुछ भी कहा है, वह सब सत्य है, कुछ भी मिथ्या नहीं है, शुम्भ तीनों लोकों का राजा है तथा उसका भाई निशुम्भ भी उसी तरह का है ॥ ११८ ॥

किन्तु अल्पबुद्धिवशात् मैंने पहले एक प्रतिज्ञा कर ली है उसको मिथ्या कैसे करूँ ? वह प्रतिज्ञा सुनो ॥ ११९ ॥

योमां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति ।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ।।१२०।।
तदागच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः ।
मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु ।।१२१।।
दूत उवाच ।। १२२ ।।
अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः ।
त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः ।।१२३।।
अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि ।
तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका ।।१२४।।
इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे ।
शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम् ।।१२५।।
सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः ।

जो युद्ध में मुझको पराजित कर देगा, एवं मेरे घमण्ड को चूर कर देगा, और संसार में जो मेरे समान बलवान् होगा, वही मेरा पति होगा ।। १२० ।।

अतएव अब देरी करने की आवश्यकता नहीं है । शुम्भ अथवा निशुम्भ शीघ्र ही युद्ध में मुझे पराजित करके मेरा पाणिग्रहण करें ।। १२१ ।।

दूत बोला—देवि ! आप इस प्रकार अभिमान की बातें हमारे सामने न करें, क्योंकि संसार में ऐसा कौन पुरुष है, जो युद्ध क्षेत्र में शुम्भ और निशुम्भ के सामने ठहर सके ।। १२२—१२३ ।।

हे देवि ! शुम्भ की तो बात ही क्या है, सब देवतागण एकत्र होकर अन्य दैत्यों के सम्मुख भी युद्ध में ठहर नहीं सकते, तुम स्त्री होकर अकेली किस प्रकार उनके सामने युद्ध में ठहर सकोगी ? ।। १२४ ।।

इन्द्र आदि देवगण युद्धक्षेत्र में जिनके निकट ठहर नहीं सके, उन शुम्भ आदि के निकट तुम स्त्री होकर कैसे जाओगी ? ।। १२५ ।।

अत एवं मैं तुमको कहता हूँ, तुम शीघ्र ही शुम्भ निशुम्भ के निकट

केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि ॥१२६॥

देव्युवाच ॥ १२७ ॥

एवमेतद् बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्यवान् ।

किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा ॥१२८॥

स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमादृतः ।

तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु तत् ॥ॐ॥१२९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्या दूतसंवादो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

उवाच ९, त्रिपान्मन्त्राः ६६, श्लोकाः ५४, एवम् १२९, एवमादितः ३८८ ॥

—०:०—

चलो, अन्यथा तुम्हारा केश पकड़कर बलात् तुमको ले जाएँगे, उसमें तुम्हारा गौरव अवश्य ही नष्ट हो जायगा ॥ १२६ ॥

देवी बोलीं, शुम्भ बलशाली है, निशुम्भ भी अति पराक्रमी है, यह सत्य है, किन्तु मैंने जो बिना विचारे पहले प्रतिज्ञा कर डाली है, उसके लिये क्या करू ? अतएव तुम जाकर मैंने जो कहा वह सब अति आदरपूर्वक असुरराज से कह दो वे जो उचित समझें, करें ॥ १२७—१२९ ॥

श्री मार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत देवी-माहात्म्य में देवी के दूतसम्वाद नामक पञ्चम अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ नागाधीश्वरविष्टरां फणिफणोत्तंसोरुरत्नावली-
भास्वद्देहलतां दिवाकरनिभां नेत्रत्रयोद्भासिताम् ।
मालाकुम्भकपालनीरजकरां चन्द्रार्धचूडां परां
सर्वज्ञेश्वरभैरवाङ्कनिलयां पद्मावतीं चिन्तये ।।

ऋषिरुवाच ।। १ ।।

इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः ।
समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात् ।। २ ।।
तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् ततः ।
सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम् ।। ३ ।।
हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः ।
तामानय बलाद् दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम् ।। ४ ।।

ध्यान का अर्थ—मैं उस पद्मावती देवी का चिन्तन करता हूँ, जो सिंह के आसन पर विराजमान हैं, जिनकी देहलताएँ सर्पों के फणों से युक्त रत्न की माला से सुशोभित हो रही हैं, सूर्य की कान्ति के समान तीनों नेत्र जिनके शोभायमान हैं। जो कुम्भ, कपाल और कमल अपने हाथों में धारण की हुई हैं, अर्धचन्द्र से सुशोभित जिनके मुकुट है तथा जो सर्वेश्वर भैरव की गोद में निवास कर रही हैं।

ऋषि ने कहा—।। १ ।।

दूत ने इस प्रकार देवी की बात सुनकर क्रोधित हो दैत्यराज के निकट आकर सब वृत्तान्त सविस्तर कह सुनाया ।। २ ।।

तब दैत्यराज ने दूत की सब बातें सुनकर क्रोधित होकर असुरों के नायक धूम्रलोचन से कहा—।। ३ ।।

हे धूम्रलोचन ! तुम शीघ्र ही अपनी सेनाओं के साथ जाकर उस दुष्टा स्त्री का बाल पकड़कर घसीट कर ले आओ ।। ४ ।।

धूम्रलोचनवधः

तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठतेऽपरः ।
स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व एव वा ॥ ५ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ६ ॥

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः ।
वृतः षष्ट्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ ॥ ७ ॥
स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम् ।
जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ८ ॥
न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्तारमुपैष्यति ।
ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम् ॥ ९ ॥

देव्युवाच ॥ १० ॥

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान् बलसंवृतः ।
बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम् ॥११॥

ऋषिरुवाच ॥ १२ ॥

यदि उसकी रक्षा करने के लिये कोई दूसरा खड़ा हो, तो वह देव, यक्ष, या गन्धर्व ही क्यों न हों, उन सबों को मार डालना ॥ ५ ॥

ऋषिबोले—तब दैत्य धूम्रलोचन शुम्भ की आज्ञा पाते ही उसी समय साठ हजार असुर सैन्यों को लेकर चल पड़ा ॥ ६–७ ॥

और वहाँ धूम्रलोचन हिमालय पर निवास करने वाली उस देवी को देखकर उच्च स्वर से बोला,–तुम शीघ्र ही शुम्भ और निशुम्भ के निकट चलो ॥८॥

यदि प्रेमपूर्वक हमारे स्वामी के समीप नहीं जाओगी, तो अभी तुमको बलात् बाल पकड़कर घसीटते हुए ले चलेंगे ॥ ९ ॥

देवी बोली—आप दैत्यराज शुम्भ के द्वारा भेजे हुए आये हैं, स्वयं भी बलवान् हैं तथा सैन्य सहित हैं, अतएव बलपूर्वक मुझको ले जाने पर मैं क्या करूँगी ॥ १०–११ ॥

ऋषि ने कहा—॥ १२ ॥

इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः ।
हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः ॥१३॥
अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका ।
ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः ॥१४॥
ततो धुतसटः कोपात् कृत्वा नादं सुभैरवम् ।
पपातासुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहनः ॥१५॥
कांश्चित् करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान् ।
आक्रम्य चाधरेणान्यान् स जघान महासुरान् ॥१६॥
केषांचित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केशरी ।
तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान् पृथक् ॥१७॥
विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे ।
पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः ॥१८॥

देवी के ऐसा कहने पर असुर धूम्रलोचन देवी की ओर दौड़ पड़ा; तब देवी ने हुंकार द्वारा ही उसको भस्मीभूत कर डाला ॥ १३ ॥

अनन्तर असुरसैन्य क्रोधित होकर शक्ति एवं कुठार को अम्बिका देवी पर फेंकने लगा ॥ १४ ॥

उस समय देवी के वाहन सिंह ने भी अपनी गर्दन के बालों को हिलाता हुआ अति भयानक नाद करके असुर सेनाओं के बीच में प्रवेश कर गया ॥ १५ ॥

तथा उसने किसी-किसी असुर को अपने पञ्जों के प्रहार से, कितने को मुख से तथा कितने को होठ या दाढ़ों से घायल कर मार डाला ॥ १६ ॥

कितने ही का नख के द्वारा पेट फाड़ डाला, अन्य कितने असुरों को पञ्जों के प्रहार से धड़ सिर से अलग कर दिया ॥ १७ ॥

तथा अन्यान्य असुरों की भुजाएँ एवं मस्तक छिन्न-भिन्न करके रोमावलियों को कम्पित करता हुआ, उन लोगों के पेट से रक्त-पान करने लगा ॥ १८ ॥

क्षणेन तत्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना ।
तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना ॥१९॥
श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम् ।
बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेसरिणा ततः ॥२०॥
चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः ।
आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥२१॥
हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभिः परिवारितौ ।
तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥२२॥
केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि ।
तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥२३ ॥
तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते ।
शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम् ॐ ॥२४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शुम्भनिशुम्भ सेनानीधूम्रलोचनवधो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥
उवाच ४, श्लोकाः २०, एवम् २४,
एवमादितः ॥ ४१२ ॥

इस प्रकार क्षण भर में ही अति क्रोधी देवी के वाहन उस सिंह ने सब असुर-सैन्यों को नष्ट कर दिया। यह समाचार सुनकर दैत्यराज शुम्भ क्रोधित हो उठा, उस समय क्रोध से उसका ओठ स्फुरित होने लगा, अनन्तर शुम्भ ने महासुर चण्डमुण्ड को आज्ञा दी ॥ २०—२१ ॥

हे चण्ड ! हे मुण्ड ! तुम दोनों बहुत-सी सेनाओं को साथ लेकर उस रमणी के निकट जाकर उसको शीघ्र ले आओ ॥ २२ ॥

उसका केश पकड़कर अथवा उसे बाँधकर ले आना। यदि किसी प्रकार यह भी न कर सको तो, तुम सब असुर मिलकर अनेकों प्रकार के अस्त्रों से उसको मार डालना ॥ २३ ॥

उस स्त्री के हतप्राय होने पर उसके सिंह को मार डालना और उस अम्बिका को बाँध कर ले आना ॥ २४ ॥

श्रीमार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत
देवी माहात्म्य में शुम्भ-निशुम्भ के सेनानी धूम्रलोचन वध
नामक छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ ध्यायेयं रत्नपीठे शुककलपठितं शृण्वतीं श्यामलाङ्गीं
न्यस्तैकाङ्घ्रि सरोजे शशिशकलधरां वल्लकीं वादयन्तीम् ।
कह्लाराबद्धमालां नियमितविलसच्चोलिकां रक्तवस्त्रां
मातङ्गीं शङ्खपात्रां मधुरमधुमदां चित्रकोद्भासिमालाम् ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः ।
चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः ॥ २ ॥
ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम् ।
सिंहस्योपरि शैलेन्द्र-शृङ्गे महति काञ्चने ॥ ३ ॥

ध्यान का अर्थ—मैं उस मातङ्गी देवी को ध्यान करता हूँ, जो रत्न से जड़े हुए सिंहासन पर विराजमान हैं, जो तोते की मीठी वाणी को श्रवण करने वाली श्याम वर्ण की हैं, जिनका एक पैर कमल के आसन पर स्थित है तथा मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण की हुई हैं, जो अपनी गर्दन में कटार फूलों की माला पहनी हुई हैं। जो वीणा बजा रहीं हैं जो चोली एवं रक्त वस्त्र धारण की हुई हैं, जो अपने करकमलों में शङ्ख का पात्र धारण करके मधुर मद से युक्त हैं तथा जिनके मस्तक पर बिन्दी लगी हुई हैं ।

ऋषि ने कहा—॥ १ ॥

शुम्भ की आज्ञा पाते ही चण्ड-मुण्ड आदि दैत्यगण हाथी, घोड़े, रथ तथा, पैदल सेनाओं से युक्त होकर अस्त्र-शस्त्र से तैयार होकर चल पड़े ॥ २ ॥

और वहाँ उन्होने हिमालय के स्वर्णशिखर के ऊपर सिंह पर बैठी हुई, ईषत् हास्य से युक्त देवी को देखा ॥ ३ ॥

चण्डमुण्डवधः

ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः ।
आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः ॥ ४ ॥
ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन् प्रति ।
कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूत्तदा ॥ ५ ॥
भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद् द्रुतम् ।
काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी ॥ ६ ॥
विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा ।
द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा ॥ ७ ॥
अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा ।
निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा ॥ ८ ॥
सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान् ।
सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद्बलम् ॥ ९ ॥

तब उद्धत चण्ड-मुण्ड आदि प्रधान दैत्यगण धनुष, तलवार धारण करके देवी के निकट जाकर उनको पकड़ने की चेष्टा करने लगे ॥ ४ ॥

अम्बिका ने उन शत्रु राक्षसों के प्रति अति क्रोधित हो उठीं, जिससे उनका मुखमण्डल काला हो गया ॥ ५ ॥

ललाट के भौंहें टेढ़ी हो गयीं एवं उसी समय तलवार तथा पाश धारण हुई की काली रूप में प्रकट हो गयीं ॥ ६ ॥

वे विचित्र लोहमय यष्टि धारण की हुई थी, गले में मुण्ड की माला से विभूषित थी तथा शरीर में मांस न होने से अति भयानक आकृति वाली मालूम हो रही थी ॥ ७ ॥

उनका मुखमण्डल अति विस्तृत तथा चञ्चल जिह्वा अत्यन्त भयानक दिखाई पड़ती थी। उनका नेत्र धसा हुआ और लाल था। उनके भयानक शब्द से दिशायें गूंज रही थीं ॥ ८ ॥

इस प्रकार अति वेग से शत्रु सैन्यों में आकर असुर सैन्यों को आहत करती हुई भक्षण करने लगीं ॥ ९ ॥

पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहि-योधघण्टासमन्वितान् ।
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान् ॥१०॥
तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह ।
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम् ॥११॥
एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम् ।
पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत् ॥१२॥
तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः ।
मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि ॥१३॥
बलिनां तद् बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम् ।
ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत् तदा ॥१४॥
असिना निहताः केचित्केचित्खट्वाङ्गताडिताः ।
जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा ॥१५॥

वे पार्श्वरक्षकों, अंङ्कुश आदि लिये महावतों तथा घण्टा सहित कितने हाथियों को एक हाथ से पकड़-पकड़ कर, मुख में डालने लगी ॥ १० ॥

उसी तरह घोड़े तथा सारथियों से युक्त रथ को पकड़कर अतिभयानक रूप से चबाने लगीं ॥ ११ ॥

किसी को केश पकड़कर, किसी को गला दबाकर तथा किसी को पावों से गिराकर तथा किसी को छाती का धक्का दे-देकर मार डालीं ॥ १२ ॥

वे असुरों के द्वारा चलाये गये अस्त्र-शस्त्र को क्रोध से अपने मुंह में डालकर दाँत से चबाने लगीं ॥ १३ ॥

इस प्रकार महाकाली ने दुष्ट असुरों तथा उनकी सेनाओं का मर्दन कर डाली कितने को खा गईं तथा अन्यान्य कितने को मार डालीं ॥ १४ ॥

कितने ही तो तलवार से टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये, कितने ही खट्वाङ्ग से पीटे गये तथा अन्य कुछ असुरों को देवी ने अपने दातों के अग्रभाग के प्रहार से ही मार गिराया ॥ १५ ॥

क्षणेन तद् बलं सर्वमसुराणां निपातितम् ।
दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम् ॥१६॥
शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः ।
छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः ॥१७॥
तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम् ।
बभुर्यथार्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम् ॥१८॥
ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी ।
काली करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥१९॥
उत्थाय च महासिंहाद् देवी चण्डमधावत ।
गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत् ॥२०॥
अथ मुण्डोऽभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् ।
तमप्यपातयद्भूमौ सा खड्गाभिहतं रुषा ॥२१॥

इस प्रकार क्षणमात्र में ही असुर सैन्यों को देवी ने जब मार गिराया, तब यह देखकर चण्ड अत्यन्त भयानक रूप से देवी की ओर दौड़ पड़ा ॥ १६ ॥

उधर महासुर मुण्ड ने भी अत्यन्त भयङ्कर बाणों की वर्षा से तथा हजारों फेंके गये चक्रों से भयंकर नेत्रवाली उन काली जी को ढक दिया ॥ १७ ॥

उस समय असुर के शरसमूह देवी के मुखमण्डल में प्रविष्ट होकर जब मेघ में प्रविष्ट अनेकों सूर्य के प्रति विम्ब की तरह सुशोभित होने लगे ॥ १८ ॥

तब विकराल मुख के अन्दर कठिनता से दिखाई देनेवाली दाँतों की कान्ति से युक्त, भीषण शब्द करने वाली काली क्रोध से अट्टहास करने लगीं ॥ १९ ॥

अनन्तर देवी ने "हूं" ऐसा उच्चारण करती हुई तलवार लेकर चण्ड की ओर दौड़ी तथा बाल पकड़कर तलवार से उसकी गर्दन काट डाली ॥ २० ॥

चण्डासुर को मृत देखकर मुण्ड ने जब दौड़ा तब देवी ने उसे भी तलवार से मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ २१ ॥

हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् ।
मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम् ।।२२।।

शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च ।
प्राह प्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम् ।।२३।।

मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डौ महापशू ।
युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि ।।२४।।

ऋषिरुवाच ।। २५ ।।

तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ ।
उवाच कालीं कल्याणी ललितं चण्डिका वचः ।।२६।।

तब शेष बची हुई उसकी सेनाएँ अतिपराक्रमी चण्ड और मुण्ड को मरा हुआ देखकर भयभीत हो इधर-उधर जब भाग गईं ।। २२ ।।

तब काली चण्ड मुण्ड का सिर लेकर भयङ्कर अट्टहास करती हुई चण्डिका के पास आकर बोलीं ।। २३ ।।

इस युद्धयज्ञ में चण्ड-मुण्ड नामक महापशु को मारकर आपके उपहार के लिये लायी हूँ, अब आप स्वयं शुम्भ और निशुम्भ का विनाश करियेगा ।। २४ ।।

ऋषि ने कहा—।। २५ ।।

चण्ड-मुण्ड का सिर काली द्वारा लाये हुए देखकर चण्डिका अति कोमल वाक्य से बोली ।। २६ ।।

यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहित्वा त्वमुपागता ।
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि ॥ॐ॥२७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
चण्डमुण्डवधो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥
उवाच २, श्लोकाः २५, एवम् २७,
एवमादितः ४३९ ॥

—:०:—

हे देवि ! तुम चण्ड-मुण्ड का सिर लेकर मेरे निकट आई हो, अतएव तुम जगत् में "चामुण्डा" नाम से प्रसिद्ध होगी ॥ २७ ॥

श्री मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के
अन्तर्गत देवीमहात्म्य में चण्डमुण्ड-वध नामक
सातवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ अरुणां करुणातरङ्गिताक्षीं धृतपाशाङ्कुशबाणचापहस्ताम् ।
अणिमादिभिरावृतां मयूखैरहमित्येव विभावये भवानीम् ।।

ॐ ऋषिरुवाच ।। १ ।।

चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते ।
बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः ।। २ ।।
ततः कोपपराधीनचेताः शुम्भः प्रतापवान् ।
उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ।। ३ ।।
अद्य सर्वबलैर्दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः ।
कम्बूनां चतुरशीतिर्निर्यान्तु स्वबलैर्वृताः ।। ४ ।।
कोटिवीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै ।
शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ।। ५ ।।

ध्यान का अर्थ—मैं उन भवानी का ध्यान करता हूँ, जिनके शरीर का रंग लाल है, जिनकी आँखों से दया की लहरे निकल रहीं हैं, जो अपने हाथों में पाश, अंकुश, बाण तथा धनुष धारण की हुई हैं, जो अणिमा आदि सिद्धि से पूर्ण है-और जो किरणों से आवृत हैं ।

ऋषि ने कहा ।। १ ।।

चण्ड-मुण्ड एवं बहुत सी उसकी सेनाओं को मारे जाने पर प्रतापशाली असुरेश्वर शुम्भ ने क्रोधित होकर सब असुर सैन्यों को युद्ध के निमित्त तैयार होने की आज्ञा दी ।। २—३ ।।

आज उदायुध नाम के छियासी दैत्य-सेनापति तथा कम्बू नाम के चौरासी सेना-नायक अपनी सेनाओं को लेकर युद्ध के लिये प्रस्थान करें ।। ४ ।।

कोटिवीर्य कुल के पचास तथा धूम्रवंश के एक सौ दैत्य मेरी आज्ञा से युद्ध के लिये चलें ।। ५ ।।

रक्तबीजवधः

कालका दौर्हृदा मौर्याः कालकेयास्तथासुराः ।
युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम ॥ ६ ॥
इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भो भैरवशासनः ।
निर्जगाम महासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृतः ॥ ७ ॥
आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम् ।
ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम् ॥ ८ ॥
ततः सिंहो महानादमतीव कृतवान् नृप ।
घण्टास्वनेन तन्नादमम्बिका चोपबृंहयत् ॥ ९ ॥
धनुर्ज्यासिंहघण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा ।
निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारितानना ॥१०॥
तं निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम् ।
देवी सिंहस्तथा काली सरोषैः परिवारिताः ॥११॥

कालक, दौर्हृद, मौर्य तथा कालकेय असुरगण मेरी आज्ञा से अतिशीघ्र युद्ध के लिये सुसज्जित होकर चलें ॥ ६ ॥

कठोर शासन करने वाला असुरराज शुम्भ इस प्रकार आज्ञा की घोषणा करके हजारों सैन्यों से परिवेष्टित होकर चल पड़ा ॥ ७ ।

तब चण्डिका ने शुम्भ के भयानक सैन्यों को देखकर धनुष की टङ्कार से पृथिवी और आकाश को गुंजित कर दिया ॥ ८ ॥

हे राजन् ! तब सिंह ने भी अत्यन्त गर्जन किया, अम्बिका ने घण्टा की आवाज से उसको और भी बढ़ा दिया ॥ ९ ॥

धनुष की टङ्कार, सिंह की गर्जना तथा घण्टे की आवाज से सभी दिङ्मण्डल गूज उठे। काली ने भी मुंह फैलाकर तेजी से आवाज की, जिससे पहले के शब्द से भी यह शब्द अधिक बढ़ गया ॥ १० ॥

अनन्तर दैत्यसैन्यों ने देवी के शब्द को सुनकर क्रोधित हो काली तथा उनके सिंह को चारों ओर से घेर लिया ॥ ११ ॥

एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम् ।
भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विताः ॥१२॥
ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः ।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः ॥१३॥
यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम् ।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ ॥१४॥
हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः ।
आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते ॥१५॥
माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी ।
महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखाविभूषणा ॥१६॥
कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना ।
योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी ॥१७॥

हे राजन् ! इसी समय देवताओं के शत्रु असुरों के विनाश तथा देवताओं के कल्याण के लिये ब्रह्मा शिव, कार्तिकेय, विष्णु, एवं इन्द्र की अति बलशालिनी शक्तियाँ उन लोगों के शरीर से निकल कर उन्हीं के रूप में चण्डिका के निकट उपस्थित हो गयीं ॥ १२–१३ ॥

जिस देवता का जो रूप, जैसा आभूषण और वाहन था, उसकी शक्ति वैसा ही रूप, आभूषण और वाहन सहित असुरों के साथ युद्ध करने को उपस्थित हो गयीं ॥ १४ ॥

पहले अक्षमाला और कमण्डल धारण करके हंसयुक्त विमान पर चढ़कर ब्रह्मा की शक्ति युद्ध क्षेत्र में आई, जो ब्रह्माणी नाम से पुकारी गई ॥ १५ ॥

उसके बाद त्रिशूलधारिणी महेश्वर की शक्ति बैल पर आरूढ होकर युद्ध भूमि में आई, जो महासर्प के कंकण तथा चन्द्ररेखा से विभूषित थीं ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् स्वामी कार्तिकेय की शक्ति कुमारी अम्बिका देवी शक्ति धारण करके मयूर पर सवार होकर असुरों से युद्ध करने के लिये आईं ॥ १७ ॥

तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि संस्थिता ।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥१८॥
यज्ञवाराहमतुलं रूपं या बिभ्रतो हरेः ।
शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम् ॥१९॥
नारसिंहीं नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः ।
प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः ॥२०॥
वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरि स्थिता ।
प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा ॥२१॥
ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः ।
हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याऽऽह चण्डिकाम् ॥२२॥
ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा ।
चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी ॥२३॥

उसके बाद वैष्णवी शक्ति भी शङ्ख, चक्र, गदा, धनुष और तलवार हाथ में धारण करके गरुड पर चढ़कर वहाँ आई ॥ १८ ॥

वाराहरूप को धारण करनेवाली विष्णु की शक्ति वाराही रूप को धारण करके वहाँ आई ॥ १९ ॥

नृसिंह भगवान् की नारसिंही शक्ति उन्हीं के समान शरीर धारण करके वहाँ आई, जिनकी गर्दन के बाल हिलने से आकाश के सभी तारे हिलने लगते थे ॥ २० ॥

उसी प्रकार इन्द्र की शक्ति हाथ में वज्र धारण करती हुई ऐरावत पर चढ़कर वहाँ आई, जिनका सहस्र नेत्र इन्द्र के समान थे ॥ २१ ॥

तब शिवजी समस्त शक्तियों के द्वारा परिवेष्टित होकर चण्डिका से बोले, हमारी प्रसन्नता के लिये आप इन असुरों का शीघ्र वध करें ॥ २२ ॥

शिवजी के ऐसा कहते ही देवी चण्डिका के शरीर से अत्यन्त भयानक एवं अति उग्र उनकी शक्ति आविर्भूत हुई जो सैकड़ों शिवा (गीदड़) की तरह आवाज करने वाली थीं—॥२३ ॥

सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता ।
दूत त्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः ॥२४॥
ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च दानवावतिगर्वितौ ।
ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः ॥२५॥
त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः ।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥२६॥
बलावलेपादथ चेद्भवन्तो युद्धकाङ्क्षिणः ।
तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः ॥२७॥
यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम् ।
शिवदूतीति लोकेऽस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता ॥२८॥
तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः सर्वाख्यातं महासुराः ।
अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र कात्यायनी स्थिता ॥२९॥

उन्होंने धूम्रवर्ण जटाओं से विभूषित महादेव जी से कहा कि भगवन्—आप दूतरूप से शुम्भ-निशुम्भ के निकट जाइये ॥ २४ ॥

अत्यन्त घमण्डी उस शुम्भ-निशुम्भ से तथा युद्धार्थी अन्यान्य दानवों से कहिये कि तुमलोग यदि जीना चाहते हो तो शीघ्र ही पाताल लोक में चले जाओ । अब इन्द्र तीनों लोकों के रक्षाकार्य में नियुक्त हों तथा देवता-गण अपना-अपना यज्ञभाग ग्रहण करें ॥ २५—२६ ॥

यदि बल के घमण्ड से युद्ध ही करना चाहते हो तो शीघ्र ही आओ । तुम लोगों के मांस से हमारी शिवाएँ (योगिनियाँ) तृप्ति लाभ करें ॥ २७ ॥

इस प्रकार देवी ने शिव को दूत रूप में नियुक्त किया, इस कारण "शिवदूती" नाम से संसार में विख्यात हुई ॥ २८ ॥

देवी का कथन महादेवजी के द्वारा सुनकर क्रोधित होकर असुरगण जहाँ अम्बिका विराजमान थीं, वहाँ उपस्थित हो गये ॥ २९ ॥

ततः प्रथमसेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः ।
ववर्षुरुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः ॥३०॥
सा च तान् प्रहितान् बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान् ।
चिच्छेद लीलयाऽऽध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥३१॥
तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान् ।
खट्वाङ्गपोथितांश्चारीन् कुर्वती व्यचरत्तदा ॥३२॥
कमण्डलुजलाक्षेप-हतवीर्यान् हतौजसः ।
ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून् येन येन स्म धावति ॥३३॥
माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी ।
दैत्याञ्जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना ॥३४॥
ऐन्द्रीकुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः ।
पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः ॥३५॥

तब पहले ही असुरगण क्रोधित होकर शर, शक्ति और ऋद्धि अस्त्र देवी पर वर्षा ने लगे ॥ ३० ॥

पर देवी ने असुर के द्वारा चलाये गये बाण, शूल, चक्र एवं कुठारसमूहों को अपने बाणों की टङ्कारों से अनायास ही काट डाला ॥ ३१ ॥

तब काली भी अवशिष्ट असुरों में किसी को शूलाघात से विदीर्ण कर, किसी को खड्वाङ्ग (शिव का एक अस्त्र) द्वारा मर्दित करती हुई शुम्भासुर के सामने विचरण करने लगीं ॥ ३२ ॥

ब्रह्माणी ने भी इधर-उधर घूम-घूम कर कमण्डलु के जलक्षेपण के द्वारा शत्रुओं को बलहीन एवं निस्तेज कर दिया ॥ ३३ ॥

माहेश्वरी त्रिशूल, वैष्णवी चक्र और कार्तिकेयी शक्ति, अस्त्र द्वारा दैत्यों को आहत करने लगीं ॥ ३४ ॥

तब इन्द्रशक्ति ने भी वज्र के द्वारा सैकड़ों दैत्यों को विदीर्ण कर डाला, ये सब के सब रक्त वमन करते हुए पृथिवी पर गिर पड़े ॥ ३५ ॥

तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः ।
वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः ॥३६॥
नखैर्विदारितांश्चान्यान् भक्षयन्ती महासुरान् ।
नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिगम्बरा ॥३७॥
चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः ।
पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा ॥३८॥
इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान् ।
दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ॥३९॥
पलायनपरान् दृष्ट्वा दैत्यान् मातृगणार्दितान् ।
योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः ॥४०॥
रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः ।
समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणस्तदाऽसुरः ॥४१॥

उस समय वाराही देवी ने किसी को थूथुन के प्रहार से समाप्त कर दिया। कितने ही दानवों के वक्षस्थलों को दन्त के अग्रभाग से फाड़ डाला। कितने को तो चक्र के प्रहार से विदीर्ण करके पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ ३६ ॥

नारसिंह मूर्ति भी अनेकों असुरों को नखों से विदीर्ण कर खा गईं, एवं सिंहनाद करती हुईं युद्धक्षेत्र में विचरण करने लगीं ॥ ३७ ॥

शिवदूती भी अति भयानक अट्टहास करती हुईं असुरों को आहत और पृथ्वी पर गिराकर भ्रमण करने में तत्पर हुईं ॥ ३८ ॥

इस प्रकार नाना उपायों के द्वारा देवियाँ महासुरों का विनाश करने लगीं, जिससे दैत्यसेनापतिगण भी युद्धस्थल से भागने लगे ॥ ३९ ॥

तब देवियों द्वारा पीड़ित दैत्यगण को भागते हुए देखकर महासुर रक्त-बीज अति क्रोधित होकर युद्ध करने आया ॥ ४० ॥

उसके शरीर से जब रक्त की बूँद गिरती थी, तब उसीके समान अन्य असुर उत्पन्न हो जाता था ॥ ४१ ॥

युयुधे स गदापाणि-रिन्द्रशक्त्या महासुरः ।
ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ॥४२॥
कुलिशेनाहतस्याशु बहु सुस्राव शोणितम् ।
समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥४३॥
यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः ।
तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः ॥४४॥
ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः ।
समं मातृभिरत्युग्र-शस्त्रपातातिभीषणम् ॥४५॥
पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा ।
ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः ॥४६॥
वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजघान ह ।
गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम् ॥४७॥

तब रक्तबीज गदा हाथ में लेकर इन्द्राणी से युद्ध करने लगा। देवी ने उस पर वज्र का प्रहार किया ॥ ४२ ॥

देवी के प्रहार से उसके शरीर से बहुत रक्त गिरने लगा, जिनसे रक्तबीज के समान अनेकों पराक्रमशाली असुर पैदा हो गये ॥ ४३ ॥

इसी प्रकार रक्तबीज के शरीर से जितने रक्त-बिन्दु निकले, उतने ही उसीके समान वीर्य, बल एवं पराक्रमवाली असुर उत्पन्न हुए ॥ ४४ ॥

ये सब पुरुषगण भी अस्त्र-शस्त्र लेकर भयानक रूप से देवियों के साथ युद्ध करने लगे ॥ ४५ ॥

अनन्तर इन्द्राणी वज्र के प्रहार से रक्तबीज का सिर फोड़ दिया, जिससे रक्त प्रवाह होने लगा, तब वैसे ही हजारों असुर उत्पन्न हो गये ॥ ४६ ॥

युद्धक्षेत्र में वैष्णवी देवी ने चक्र से प्रहार किया, इन्द्राणी ने उस पर गदा का प्रहार किया ॥ ४७ ॥

वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः ।
सहस्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः ॥४८॥
शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना ।
माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम् ॥४९॥
स चापि गदया दैत्यः सर्वा एवाहनत् पृथक् ।
मातॄः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः ॥५०॥
तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि ।
पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः ॥५१॥
तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत् ।
व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ॥५२॥
तान् विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वरा ।
उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु ॥५३॥
मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दून्महासुरान् ।

वैष्णवी के चक्रप्रहार से रक्तबीज के शरीर से रक्तप्रवाह होने लगा जिससे हजारों असुर उत्पन्न होकर सारा संसार व्याप्त हो गया ॥ ४८ ॥

तब कौमारी, वाराही तथा माहेश्वरी यथाक्रम शक्ति, तलवार तथा त्रिशूल के द्वारा रक्तबीज पर प्रहार करने लगीं ॥ ४९ ॥

रक्तबीज भी क्रोधित होकर गदा द्वारा प्रत्येक मातृशक्ति को पृथक्-पृथक् रूप से आहत किया ॥ ५० ॥

तब शक्ति त्रिशूल आदि के प्रहार से जो रक्त पृथ्वी पर गिरे उससे सैकड़ों असुर उत्पन्न हो गये ॥ ५१ ॥

उस असुर के रक्त से उत्पन्न दैत्यों से जगत को व्याप्त देखकर देवतागण भयभीत हो गये ॥ ५२ ॥

तब देवी चण्डिका ने देवताओं को भय से उद्विग्न देखकर शीघ्रता से काली को कहा—हे चामुण्डे ? तुम अपना मुख फैलाओ ? मेरे शस्त्र के आघात

रक्तबिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिना ॥५४॥
भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान्महासुरान् ।
एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ॥५५॥
भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे ।
इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम् ॥५६॥
मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम् ।
ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम् ॥५७॥
न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि ।
तस्याहतस्य देहात्तु बहु सुस्राव शोणितम् ॥५८॥
यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति ।
मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान्महासुराः ॥५९॥
तांश्चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम् ।
देवी शूलेन वज्रेण बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः ॥६०॥

द्वारा रक्तबीज के देह से रक्त गिरते ही तुम उसको पान करो एवं जो उत्पन्न हो जाय उनको भी खा जाओ ॥ ५३–५४ ॥

इस प्रकार से भक्षण करती हुई रणक्षेत्र में तुम्हारे विचरण करने पर शीघ्र ही वह दैत्य क्षीण रक्त होकर नष्ट हो जायगा और तुम्हारे इस प्रकार भक्षण करने पर अन्य असुर उत्पन्न नहीं होंगे। इस प्रकार काली को कहकर देवी शूल से असुर पर प्रहार करने लगीं और काली तत्क्षण रक्तबीज के रक्त का पान करने लगीं। इसके बाद रक्तबीज गदा से चण्डिका के ऊपर प्रहार किया, किन्तु गदा प्रहार से उत्पन्न कोई भी कष्ट उनको नहीं हुआ, लेकिन देवी के शूल के प्रहार से उसके शरीर से बहुत-सा रक्त निकला ५५–५८

ज्यों ही उसके शरीर से रक्त निकला त्यों ही चामुण्डा ने अपने में ले लिया। एवं गिरते-गिरते ही मुख में जो असुर उत्पन्न हुए, उन सबों का

जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम् ।

स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसङ्घसमाहतः ॥६१॥

नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः ।

ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप ॥६२॥

तेषां मातृगणो जातो ननर्तासृङ्मदोद्धतः ॥ॐ॥६३॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये

रक्तबीजवधो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

उवाच १, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः ६१, एवम् ६३ एवमादितः ५०२॥

—:०:—

भक्षण किया और रक्तपान किया । इस प्रकार चामुण्डा के रक्तपान करने पर देवी ने शूल, वज्र, वाण, तलवार तथा ऋष्टि से रक्तबीज को मार डाला, जिसका रक्त चामुण्डा ने पहले ही पी लिया था । हे राजन् ! इस प्रकार शस्त्रों से आहत हो, रक्तशून्य होकर रक्तबीज पृथ्वी पर गिर पड़ा । हे ऋषः ! उस समय देवगण रक्तवीज को मृत देखकर अत्यन्त आनन्दित हो गये । देवियाँ भी रक्त पान से मत्त होकर नृत्य करने लगीं ॥ ५९–६३ ॥

श्री मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर कथा के अन्तर्गत देवी-
माहात्म्य में रक्तवीज वध नामक अष्टम अध्याय
समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

—०:०—

परिग्रहण सं.

निशुम्वभधः

नवमोऽध्यायः 3654

ध्यानम्—

ॐ बन्धूककाञ्चननिभं रुचिराक्षमालां
पाशाङ्कुशौ च वरदां निजबाहुदण्डैः।
बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्र-
मर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामि॥

'ॐ' राजोवाच॥ १॥

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् भवता मम।
देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम्॥२॥
भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते।
चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः॥३॥

ऋषिरुवाच॥ ४॥

चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते।
शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे॥५॥

ध्यान का अर्थ—बन्धुक (दुपहरिया नामक) पुष्प की कान्ति के समान वर्ण है जिनका, जिनके हाथों में सुन्दर अक्षमाला, पाश, अङ्कुश तथा वरद मुद्रा है और अर्धचन्द्र रूपी आभूषण को धारण करने वाले, तीनों नेत्रों विभूषित, अर्धनारीश्वर भगवान् शिव के श्रीविग्रह का मैं सदा आश्रय लेता हूँ।

राजा ने कहा—॥ १॥

भगवन्! आपने रक्तबीज के वध विषयक कथा के साथ यह जो देवी के माहात्म्य का वर्णन किया, वह अति आश्चर्यजनक है, अतः रक्तबीज के मरने पर अति क्रोधित होकर शुम्भ निशुम्भ ने जो कुछ किया, वह मैं आप से सुनना चाहता हूँ॥ २–३॥

ऋषि ने कहा—॥ ४॥

युद्ध में रक्तबीज एवं अन्यान्य असुरों के मर जाने के बाद शुम्भ, निशुम्भ अत्यन्त क्रोधित हो गये॥ ५॥

हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन् ।
अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ मुख्ययासुरसेनया ॥६॥
तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः ।
संदष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः ॥७॥
आजगाम महावीर्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः ।
निहन्तुं चण्डिकां कोपात्कृत्वा युद्धं तु मातृभिः ॥८॥
ततो युद्धमतीवासीद् देव्या शुम्भनिशुम्भयोः ।
शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः ॥९॥
चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करैः ।
ताडयामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥१०॥
निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म चादाय सुप्रभम् ।
अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम् ॥११॥

तब निशुम्भ मुख्य-मुख्य सेनाओं को साथ लेकर दौड़ पड़ा, उसके आगे पीछे एवं पास में बड़े-बड़े असुर क्रोध से ओठ चबाते हुए देवी को मारने के लिये आ गये ॥ ६–७ ॥

उस समय पराक्रमी शुम्भ भी सेनाओं से परिवेष्टित होकर मातृगणों के साथ युद्ध करके चण्डिका को मारने के लिये आया ॥ ८ ॥

तब देवी के साथ शुम्भ-निशुम्भ का घोर संग्राम प्रारम्भ होने पर वे दोनों असुर वरसनेवाले मेघ के समान वाणों की वर्षा करने लगे ॥ ९ ॥

चण्डिका भी अपने वाणों से असुरों के द्वारा फेके गये वाणों को काटते हुए शुम्भ-निशुम्भ के अङ्ग में चोट पहुँचाने लगीं ॥ १० ॥

तब निशुम्भ तीक्ष्ण तलवार तथा प्रभावशाली ढाल लेकर देवी के वाहन सिंह के मस्तक पर प्रहार किया, सिंह के ऊपर प्रहार होने पर देवी क्षुरप्र

ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् ।
निशुम्भस्याशु चिच्छेद चर्म चाप्यष्टचन्द्रकम् ॥१२॥

छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः ।
तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ॥१३॥

कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः ।
आयातं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ॥१४॥

आविध्याथ गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति ।
सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ॥१५॥

ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम् ।
आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतले ॥१६॥

तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे ।
भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ॥१७॥

नामक अस्त्र से निशुम्भ की तलवार एवं अष्टचक्र से विभूषित ढाल को काट डाला ॥ ११–१२ ॥

उस असुर ने तलवार और ढाल के काटते ही शक्ति अस्त्र चलाया, देवी ने सामने आते ही उसे चक्र से दो खण्ड कर डाला ॥ १३ ॥

तब क्रोधित होकर निशुम्भ ने शूलास्त्र फेंका देवी ने उसे भी मुक्के से चूर-चूर कर दिया । फिर उस असुर ने गदा घुमाकर चण्डिका के ऊपर फेंका देवी ने भी तत्क्षण त्रिशूल से उस गदा को विदीर्ण कर नष्ट कर डाला १४-१५

अनन्तर दैत्य फरसा हाथ में लेकर आ रहा था, देवी ने शर-समूहों से घायल करके उसको पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ १६ ॥

इस प्रकार अत्यन्त पराक्रम शाली भाई निशुम्भ के पृथ्वी पर गिर जाने पर शुम्भ अति क्रोधित होकर अम्बिका को मारने के लिये आया ॥ १७ ॥

स रथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः ।
भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः ॥१८॥
तमायान्तं समालोक्य देवी शङ्खमवादयत् ।
ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम् ॥१९॥
पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च ।
समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना ॥२०॥
ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः ।
पूरयामास गगनं गां तथैव दिशो दश ॥२१॥
ततः काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत् ।
कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः ॥२२॥
अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह ।
तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ ॥२३॥

एवं रथ पर सवार हो अपनी बड़ी-बड़ी आठ भुजाओं को लेकर समस्त आकाश मण्डल को परिव्याप्त करता हुआ सुशोभित होने लगा ॥ १८ ॥

उस असुर को आते देखकर देवी ने शङ्ख बजाया एवं धनुष की प्रत्यंचा से भयङ्कर शब्द किया ॥ १९ ॥

तब देवी के अपने घण्टा ध्वनि से समस्त दिशाओं को आपूरित होने पर उस शब्द ने दैत्य सैन्यों का तेज नष्ट कर दिया ॥ २० ॥

अनन्तर सिंह ने अपनी दहाड़ से आकाश, पृथ्वी एवं सभी दिशाओं को भर दिया। यह शब्द ऐसा भयानक हुआ कि उससे हस्तीसमूह की मत्तता दूर हो गयी ॥ २१ ॥

तब काली ने आकाश में कूद कर पृथ्वी पर दोनों हाथों को पटक दिया, जिसके भयङ्कर शब्दों से पूर्व के सभी शब्द विलीन हो गए ॥ २२ ॥

तब शिवदूती शत्रुओं का अशुभ सूचक अट्टहास करने लगीं, उससे असुरों के भयभीत होने पर शुम्भ क्रोधित हो उठा ॥ २३ ॥

दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा ।
तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः ॥२४॥
शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा ।
आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया ॥२५॥
सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम् ।
निर्घातनिःस्वनो घोरो जितवानवनीपते ॥२६॥
शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् ।
चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्रशः । २७॥
ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम् ।
स तदाभिहतो भूमौ मूर्छितो निपपात ह ॥२८॥

तब अम्बिका देवी शुम्भ से बोलीं—"रे दुष्ट ठहर-ठहर" ऐसा बोलते ही देवताओं ने जय जयकार किया ॥ २४ ॥

तब शुम्भ ने अत्यन्त चमकती हुई भयानक शक्ति को फेंका । इस अस्त्र को वह्नि राशि के समान आते हुए देख देवी ने महोल्का शक्ति के द्वारा उसको निरस्त कर दिया ॥ २५ ॥

तब शुम्भ के सिंहनाद से स्वर्ग-मर्त्य-पाताल लोक परिव्याप्त हो गया, उसके भयानक प्रतिशब्द ने इस शब्द को भी अभिभूत कर दिया ॥ २६ ॥

इसके बाद देवी के सैकड़ों शर समूहों के द्वारा शुम्भ निक्षिप्त शरों को छिन्न कर देने पर शुम्भ ने भी देवी के द्वारा फेंके हुए शरों को काट दिया ॥२७॥

अनन्तर चण्डिका ने क्रुद्ध होकर शूल के द्वारा शुम्भ पर प्रहार किया, तब वह मूर्छित होकर गिर पड़ा ॥ २८ ॥

ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः ।
आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा ॥२९॥
पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः ।
चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम् ॥३०॥
ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी ।
चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान् ॥३१॥
ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम् ।
अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः ॥३२॥
तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका ।
खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे ॥३३॥
शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भममरार्दनम् ।
हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका ॥३४॥

उसी समय सचेत होकर वह धनुष धारण करके बाणों से देवी, काली एवं उनके सिंह को मारने लगा ॥ २९ ॥

शुम्भ ने पुनः दस हजार भुजाएँ बनाकर चक्रों से चण्डिका देवी को आछन्न कर दिया ॥ ३० ॥

तदन्तर दुर्गतिनाशिनी भगवती दुर्गा ने अपने शर समूहों से उस चक्र तथा शर समुदायों को काट डाला ॥ ३१ ॥

तब निशुम्भ सेनाओं से परिवेष्टि होकर गदा लेकर शीघ्रता से चण्डिका को मारने के लिये दौड़ा ॥ ३२ ॥

चण्डिका ने भी निशुम्भ को आते देखकर तेज धारवाली तलवार से उसकी गदा को काट डाला । तब वह शूल लिया ॥ ३३ ॥

उस समय देवताओं के शत्रु निशुम्भ को शूल लेकर आते देख चण्डिका ने तुरत शूल फेंककर उसके हृदय में मारा ॥ ३४ ॥

भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निःसृतोऽपरः ।
महाबलो महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन् ॥३५॥
तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः ।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि ॥३६॥
ततः सिंहश्चखादोग्रं दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् ।
असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान् ॥३७॥
कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः ।
ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः ॥३८॥
माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे ।
वाराहीतुण्डघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि ॥३९॥
खण्डं खण्डं च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः ।
वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन तथापरे ॥४०॥

तब निशुम्भ का हृदय घायल होने से उसके हृदय से बलवान् अत्यन्त पराक्रमी एक दूसरा असुर "ठहरो" ऐसा कहता हुआ निकला ॥ ३

देवी ने भी हँसकर तलवार से उसका सिर काट डाला, तब वह असुर भूमि पर गिर पड़ा ॥ ३६ ॥

तदन्तर सिंह अपने तेज दाँतों से दैत्यों का सिर तथा धड़ खाने लगा। एवं काली तथा शिवदूती अन्यान्य असुरों को खाने लगीं ॥ ३७ ॥

कितने ही दैत्यों को कौमारी ने नष्ट कर दिया, अन्य कुछ असुरों को ब्रह्माणी ने मन्त्रपूत जल से निस्तेज बनाकर नाश कर दिया ॥ ३८ ॥

एवं अन्य असुरगण माहेश्वरी के त्रिशूल से विदीर्ण होकर भूमि पर गिर गये, कितने ही को वाराही ने अपने थुथुन के प्रहार से चूर-चूर कर दिया ॥ ३९ ॥

वैष्णवी ने चक्र से बहुतों दैत्यों को टुकड़ा-टुकड़ा कर डाला। इन्द्राणी ने कितने को अपने हाथों छोड़े गये वज्र से समाप्त कर दिया ॥ ॥४०॥

केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात् ।
भक्षिताश्चापरे कालीशिवदूतीमृगाधिपैः ॥ॐ॥४१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
निशुम्भवधो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥
उवाच २, श्लोकाः ३९, एवम्
४१, एवमादितः ५४३

—:०.—

तब कितने ही असुर युद्ध में मरे गये, कितने ही रणक्षेत्र से भाग गये, न्य वहुत से दैत्यों को काली, शिवदूती एवं सिंह ने भक्षण कर डाला ॥४१॥

श्री मार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत
देवी माहात्म्य में निशुम्भवध नामक नवम अध्याय
समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

शुम्भवधः

दशमोऽध्यायः

ॐ उत्तप्तहेमरुचिरां रविचन्द्रवह्नि-
नेत्रां धनुश्शरयुताङ्कुशपाशशूलाम् ।
रम्यैर्भुजैश्च दधतीं शिवशक्तिरूपां
कामेश्वरीं हृदि भजामि धृतेन्दुलेखाम् ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम् ।
हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥ २ ॥
बलावलेपाद् दुष्टे त्वं मा दुर्गे गर्वमावह ।
अन्यासां बलमाश्रित्य युद्ध्यसे यातिमानिनी ॥ ३ ॥

देव्युवाच ॥ ४ ॥

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा ।

ध्यान का अर्थ—मैं उस कामेश्वरी देवी का हृदय में भजन करता हूँ, जो अपने मस्तक पर अर्धचन्द्र को धारण की है, जिनकी कान्ति तपाये हुए स्वर्ण के समान है । जो सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्नि रूप नेत्र वाली है, धनुष, वाण, अंकुश, पाश तथा शूल को जो अपने सुन्दर हाथों में धारण की है, एवं जो साक्षात् शिवभक्ति रूपा है ।

ऋषि ने कहा—॥ १ ॥

प्राण के समान प्रिय अपने भाई निशुम्भ को एवं समस्त दैत्यों को मरा हुआ देखकर शुम्भ क्रोधित होकर बोला ॥ २ ॥

हे दुर्गे ! तुम बल का घमण्ड मत करो, क्योंकि तुम तो अन्यान्य देवी शक्तियों की सहायता से अभिमानिनी होकर युद्ध करती हो ॥ ३ ॥

देवी बोली—रे दुष्ट ! इस संसार में मेरे सिवा दूसरा कौन है, मैं एक

पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ॥ ५ ॥
ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम् ।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ॥ ६ ॥

देव्युवाच ॥ ७ ॥

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता ।
तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ॥ ८ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ९ ॥

ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः ।
पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम् ॥१०॥
शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः ।
तयोर्युद्धमभूद् भूयः सर्वलोकभयङ्करम् ॥११॥

ही हूँ देख, ये तेरी विभूतियाँ अभी मुझ में प्रवेश करती हैं ॥ ४–५ ॥

देवी के ऐसा कहते ही ब्रह्माणी आदि समस्त शक्तियाँ उनके शरीर में प्रवेश कर गयीं, तब अम्बिका अकेली ही विराजमान हुई ॥ ६ ॥

देवी ने कहा— ॥ ७ ॥

मेरी जिन विभूतियों का विस्तार हुआ था, उन सबों को मैंने समेट लिया है, अब मैं अकेली हूँ, तुम स्थिर होकर युद्ध करो ॥ ८ ॥

ऋषि बोले, तब देव और असुरों का तथा देवी और शुम्भासुरों का भयप्रद युद्ध प्रारम्भ हुआ ॥ ९–१० ॥

वे दोनों तेज एवं भयंकर शस्त्रों की सहायता से पुनः भीषण युद्ध करने लगे, जिससे स्वर्ग, मर्त्य, पाताल, सब लोक भयभीत हो गया ॥ ११ ॥

दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका ।
बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥१२॥
मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी ।
बभञ्ज लीलयैवोग्र-हुङ्कारोच्चारणादिभिः ॥१३॥
ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः ।
सापि तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः ॥१४॥
छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे ।
चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम् ॥१५॥
ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत् ।
अभ्यधावत्तदा देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः ॥१६॥
तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका ।
धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म चार्ककरामलम् ॥१७॥

अम्बिका ने जिन दिव्यास्त्रों को फेका, दैत्यराज ने उन सबों को अपने निवारक अस्त्रों से काट डाला ॥ १२ ॥

तब परमेश्वरी ने भी असुर द्वारा फेके गये दिव्यास्त्रों को भयानक हुंकार के उच्चारण से अनायास ही काट डाला ॥ १३ ॥

अनन्तर उस असुर ने सैकड़ों शरों के द्वारा देवी को आच्छन्न कर दिया, तब देवी ने भी क्रोधित होकर बाण से उसके धनुष को काट दिया ॥ १४ ॥

धनुष कट जाने पर दैत्यराज शुम्भ ने शक्ति अस्त्र लिया, उसको भी उसके हाथ में ही चक्र से देवी ने काट डाला ॥ १५ ॥

तब दैत्यराज शुम्भ ने सैकड़ों सूर्य और चन्द्रमा की तरह चमकती हुई ढाल और तलवार लेकर देवी की ओर दौड़ा, देवी ने सूर्य की तरह चमकने वाली उसकी तलवार एवं ढाल को काट डाला ॥ १६–१७ ॥

हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा विसारथिः।
जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिकानिधनोद्यतः ॥१८॥

चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः।
तथापि सोऽभ्यधावत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ॥१९॥

स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः।
देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत् ॥२०॥

तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले।
स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः ॥२१॥

उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः।
तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका ॥२२॥

नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम्।
चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥२३॥

तब अश्व, रथ, धनुष एवं सारथि नष्ट होने पर उस असुर ने चण्डिका को मारने के लिये भयानक मुद्गर ग्रहण किया ॥ १८ ॥

देवी ने अपनी ओर आते देखकर उसके मुद्गर को तीक्ष्ण बाणों से काट दिया। तब वह मुक्के को सँभाल कर देवी को मारने के लिये दौड़ा तथा देवी की छाती पर मुक्के से प्रहार किया। देवी ने भी थप्पर से उसकी छाती पर प्रहार करके उसे पृथ्वी पर गिरा दिया एवं तत्क्षण वह पुनः उठ खड़ा हो गया ॥ १९–२१ ॥

अनन्तर वह उछल कर एवं देवी को पकड़ कर आकाश में स्थित हो गया. वहाँ निराधार होकर भी देवी युद्ध करने लगीं ॥ २२ ॥

तब दोनों आकाश में ही परस्पर बाहु-युद्ध करने लगे, जिसको देखकर सिद्ध एवं मुनिगण आश्चर्य चकित हो गये ॥ २३ ॥

ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह ।
उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले ॥२४॥
स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः ।
अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया ॥२५॥
तमायान्तं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम् ।
जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि ॥२६॥
स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः ।
चालयन् सकलां पृथिवीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम् ॥२७॥
ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन् दुरात्मनि ।
जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाभवन्नभः ॥२८॥
उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः ।
सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते ॥२९॥

इस प्रकार बहुत देर तक वाहु-युद्ध करके अम्विका ने उसको ऊपर घुमाकर जमीन पर फेंक दिया ॥ २४ ॥

तब जमीन पर गिर कर वह दुष्ट असुर मुक्के को वान्धकर चण्डिका को मारने के लिये दौड़ पड़ा ॥ २५ ॥

दैत्यराज को अपनी ओर आते देखकर देवी ने शूल से उसका हृदय विदीर्ण कर दिया ॥ २६ ॥

देवी के शूल से घायल होकर वह असुर पृथ्वी पर गिर कर मर गया एवं मर गया । उसके मरते ही सम्पूर्ण पृथ्वी, समुद्र, पर्वत तथा द्वीप कम्पायमान हो गये ॥ २७ ॥

इस प्रकार उस दुरात्मा के मरने पर सब प्रसन्न हो गये, सारा जगत् शान्त एवं विकार रहित हो गया, आकाश निर्मल हो गया, मेघ सब उल्का रहित होकर अनिष्ट सूचक भाव को परित्याग करके शान्त हो गये, नदियाँ

ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः ।
बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्वा ललितं जगुः ॥३०॥
अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥३१॥
जज्वलुश्चाग्नयःशान्ताः शान्ता दिग्जनितस्वनाः॥ॐ॥३२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
शुम्भवधो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥
उवांच ४, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः २७, एवम्
३२, एवमादितः ५७५ ॥

—:०:—

पूर्ववत् यथास्थान बहने लगीं, देवतागण अत्यन्त प्रसन्न हो गये एवं गन्धर्वगण मधुर गीतों को गाने लगे ॥ २८–३० ॥

अन्यान्य गन्धर्व वाजे वजाने लगे, अप्सरायें नाचने लगीं, स्वच्छ वायु वहने लगा, सूर्य की किरणें प्रभायुक्त हो गईं, अग्नी प्रज्वलित हो उठीं, चारों दिशाओं में जो हाहाकार शब्द हो रहे थे वह सव शान्त हो गया ॥३१–३२॥

श्री मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत
देवी माहात्म्य में शुम्भ वध नामक दशम अध्याय
समाप्त हुआ ॥ १० ॥

—०:०—

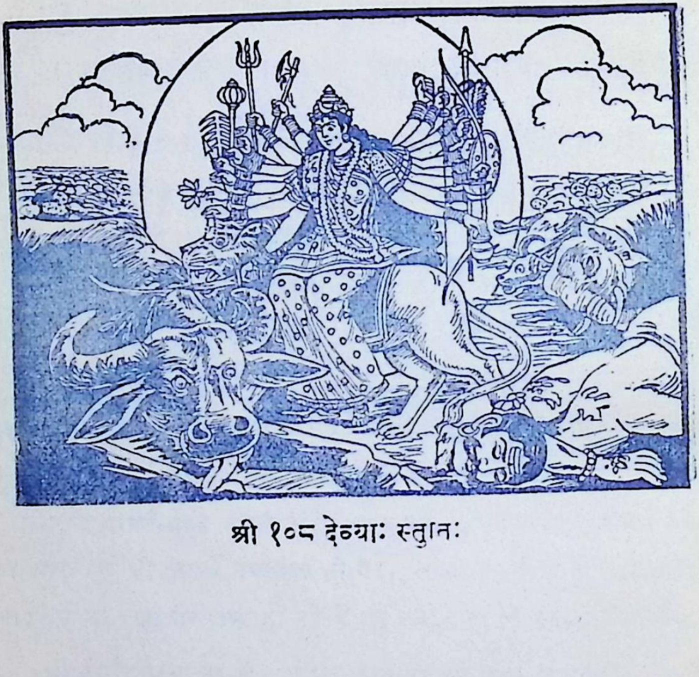

श्री १०८ देव्याः स्तुतिः

एकादशोऽध्यायः

ध्यानम्

'ॐ' बालरविद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ।।

'ॐ' ऋषिरुवाच ।। १ ।।

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम् ।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद् विकाशिवक्त्राब्जविकाशिताशाः ।।२।।
देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ।।३।।
आधारभूता जगतस्त्वमेका महीस्वरूपेण यतः स्थितासि ।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैतदाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये ।।४।।

ध्यान का अर्थ—उदयकालीन सूर्य की कान्ति के समान कान्तिवाली भुवनेश्वरी देवी का मैं ध्यान करता हूं, जिनके मस्तक पर चन्द्रमुकुट शोभायमान है, जो सुन्दर मुस्कान से युक्त हैं, जो अपने हाथों में वरद, अंकुश, पाश एवं अभय मुद्रा धारण की हुई हैं। जिनके स्तन उत्तुङ्ग हैं तथा तीन नेत्रों से युक्त हैं।

ऋषि ने कहा—।। १ ।।

देवी के द्वारा असुरराज शुम्भ के मारे जाने पर अभीष्ट की प्राप्ति होने से प्रसन्न मुखवाले इन्द्र सहित सभी देवतागण अग्नि को आगे करके कात्यायनी देवी की स्तुति करने लगे ।। २ ।।

(देवतागण बोले)—हे देवि ! शरण में आये हुए लोगों के दुःखों को नाश करनेवाली हे देवि ! तुम प्रसन्न होओ, हे मातः ! तुम सारे जगत् पर प्रसन्न होओ, हे विश्वेश्वरि ! तुम चराचर जगत् की अधीश्वरी हो, तुम प्रसन्न होओ एवं जगत् की रक्षा करो ।। ३ ।।

तुम्हीं पृथ्वी रूप में स्थित हो, इसलिये एकमात्र तुम्हीं जगत् की आधार-

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत् त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥५॥
विद्या समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥६॥

सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥ ७ ॥
सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥
कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनी।
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥

भूता हो, पुनः तुम्हीं जलरूप से स्थित होकर अखिल जगत् को संतुष्ट करती हो, तुम्हारी शक्ति अलङ्घनीय है ॥ ४ ॥

तुम असीम शक्तिरूपा वैष्णवी शक्ति हो, तुम संसार का आदि कारण हो, तुम्हीं ने मायारूप से समस्त जगत् को मोहित कर रक्खा है, तुम्हारी प्रसन्नता ही मुक्ति का कारण है ॥ ५ ॥

सभी विद्याएँ तुम्हारे ही भेद हैं, जगत् की सारी स्त्रियाँ तुम्हारी ही मूर्ति हैं, हे देवि ! अकेली आपने ही सारे संसार को परिव्याप्त कर रक्खा है, तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती हैं ? क्योंकि तुम स्तुति से भी परे हो। तुम्हारी तुलना किसी के साथ नहीं हो सकती है ॥ ६ ॥

तुम सर्वस्वरूपा हो, तुम स्वर्ग एवं मुक्ति प्रदान करने में समर्थ हो, तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती, हमारे पास क्या शब्द सम्पत्ति है, जिससे तुम्हारी स्तुति कर सके ? हे नारायणि ! तुम सब के हृदय में बुद्धि रूप से विराजमान हो। हे देवि ! स्वर्गापवर्गादि (धर्मरूपिणी, होने से स्वर्ग एवं मोक्ष देनेवाली) तुम्हारी स्तुति हो गई, तुम्हारी स्तुति के लिये इससे अच्छी उक्ति क्या हो सकती है। तुमको प्रणाम है ॥ ७–८ ॥

हे देवि ! तुम्हीं कलाकाष्ठादि रूप से जगत् का परिणाम (अवस्था परिवर्तन) कराती हो, संसार का विध्वंस करने में तुम्हीं समर्थ हो, हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ ९ ॥

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१०॥
सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि ।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥११॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्त्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१२॥
हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि ।
कौशम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१३॥
त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि ।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१४॥
मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे ।
कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१५॥

तुम सभी मंगलों को देनेवाली मंगलस्वरूपा हो, तुम सब प्रकार की सिद्धि प्रदान करने में समर्थ हो, शरण देनेवाली, त्रिनयनी, गौरी तुम्ही हो, हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ १० ॥

हे देवि ! तुम सृष्टि, पालन तथा संहार करने वाली हो । शक्ति स्वरूपा तथा सभी गुणों का आश्रय देनेवाली हो, पुनः गुणमयी तथा सनातनी हो । हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ ११ ॥

हे देवि ! हे नारायणि ! तुम शरण में आये हुए लोगों की दीनता से रक्षा करती हो । तुम सबों के दुःख नाश करने में समर्थ हो, तुमको प्रणाम है ॥ १२ ॥

तुम्हीं ब्रह्माणी रूप से हंस युक्त विमान पर सवार होती हो और कुश के द्वारा अभिमंत्रित जल छिड़कती हो । हे देवि ! हे नारायणि ! तुम को प्रणाम है ॥ १३ ॥

तुम्हीं ने माहेश्वरी रूप से त्रिशूल, अर्धचन्द्र एवं सर्पवलय धारण किया है हे महावृषभवाहिनि ! देवि तुम को प्रणाम है ॥ १४ ॥

तुम्हीं मयूरों तथा मुर्गों से परिवेष्टित, पाप से रहित महाशक्ति को धार करने वाली हो, तुम्हीं कार्तिकेय शक्तिरूप कौमारी हो । हे नारायणि तुमको प्रणाम है ॥ १५ ॥

शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे ।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१६॥
गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे ।
बराहरूपिणी शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१७॥
नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे ।
त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१८॥
किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले ।
वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१९॥
शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले ।
घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२०॥
दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे ।

तुम शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष तथा उत्तम आयुधों को धारण करने वाली वैष्णवी शक्ति हो, तुम प्रसन्न होओ । तुमको प्रणाम है ।। १६ ।।

तुमने वाराहरूप से उग्र महाचक्र धारण किया है, तुमने दाँतों से पृथ्वी को उठाकर उद्धार किया है, सबों का कल्याण करने वाली हे नारायणि ! तुम को प्रणाम है ॥ १७ ॥

तुम भयानक नृसिंह रूप को धारण करके दैत्यों का विनाश करने में तत्पर हुई थी, तुम तीनों लोकों की रक्षा करने वाली हो, हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ १८ ॥

तुम किरीटधारिणी हो, तुम महावज्र को धारण करने वाली हो, तुम तीन नेत्र वाली हो; हे ऐन्द्रि ! तुमने वृत्रासुर को मारा था ॥ १९ ॥

तुमने शिवदूती रूप से दैत्यों की बहुत बड़ी सेनाओं का विनाश किया है, तुम भयानक रूप को धारण करने वाली हो तथा भयङ्कर शब्द करने वाली हो । हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ २० ॥

हे चामुण्डे ! तुम्हारा मुख मण्डल दाँतों की पंक्तियों द्वारा अति भयानक

चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२१॥
लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधे ध्रुवे ।
महारात्रि महाविद्ये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२२॥
मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि ।
नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२३॥
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥२४॥
एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।
पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥२५॥
ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥२६॥

प्रतीत होता है। मुण्ड की मालाओं से तुम सुशोभित हो रही हो। मुण्ड नामक असुर का मर्दन करने वाली नारायणि ! तुमको प्रणाम है॥ २१ ॥

तुम्हीं लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, ध्रुवा, महारात्रि तथा महाविद्या रूपा हो। हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है॥ २२ ॥

तुम्हीं मेधा, सरस्वती, सर्वोत्कृष्टा, ऐश्वर्यरूपिणी बाभ्रवि (कल्याण-रूपिणी पार्वती) संहाररूपिणी महाकाली, नियता (नियमशीला) हो, हे ईश्वरि ! तुम प्रसन्नरूपा हो, हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है॥ २३ ॥

तुम सर्वस्वरूपा हो, पुनः सब की ईश्वरी हो, सारी शक्तियाँ तुम्हारी ही शक्तियाँ हैं। हे दुर्गे देवि ! भयों से हम लोगों की रक्षा करो। हे देवि ! तुमको प्रणाम है॥ २४ ॥

हे कात्यायनि ! तीन नेत्रों से विभूषित अतिरमणीय तुम्हारा मुखमण्डल सभी भयों से हमारी रक्षा करे, तुमको प्रणाम है॥ २५ ॥

हे भद्रकालि ! तुमने जिस त्रिशूल के द्वारा समस्त असुर कुल का संहार किया है, वह ज्वालाओं के समान भयानक एवं अत्यन्त तीक्ष्ण त्रिशूल सभी पापों से हमारी रक्षा करें। आपको प्रणाम है॥ २६ ॥

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् ।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योनः सुतानिव ॥२७॥
असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः ।
शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम् ॥२८॥
रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥२९॥
एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य धर्मद्विषां देवि महासुराणाम् ।
रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्ति कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या ॥३०॥
विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपेष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ॥३१॥

जिस घण्टा ने ध्वनि के द्वारा सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त करके असुरों के तेज का विनाश कर दिया है, वह उसी प्रकार पापों से हम लोगों की रक्षा करें, जिस प्रकार माता अपने पुत्रों की रक्षा करती है ॥ २७ ॥

हे चण्डिके ! असुरों के रक्त एवं चर्वी से सुशोभित तुम्हारे हाथ में चमकता हुआ खड्ग हम लोगों का कल्याण करें। हम लोग अति नम्र भाव से तुम को प्रणाम करते हैं ॥ २८ ॥

तुम प्रसन्न होकर सब प्रकार के रोगों का नाश करती हो एवं अप्रसन्न होने पर सब अभीष्टों का भी नाश करती हो। जो तुम्हारे आश्रित होते हैं, उनको किसी प्रकार की विपत्ति का सम्भावना नहीं होती, एवं वे स्वयं सब का आश्रयस्थल बन जाते हैं ॥ २९ ॥

हे देवि ! अनेकों रूपों से आविर्भूत होकर यह जो तुमने असुरों का विनाश किया है, यह कार्य तुम्हारे सिवा कौन दूसरा कर सकता है ॥ ३० ॥

सभी विद्याओं, सभी शास्त्रों एवं विवेक-उत्पादक आदि वाक्यरूपी वेद-वाक्यों का एकमात्र तुम्हीं कारणभूता हो। पुनः तुम्हीं इस अन्धकारमय ममता के गड्ढे में संसार को बार-बार भ्रमण कराती हो ॥ ३१ ॥

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ।। ३२।।

विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ।।३३।।

देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीतेर्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ।

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ।।३५।।

देव्युवाच ।। ३६ ।।

वरदाहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ।।३७।।

जहाँ राक्षस गण, विषैले सर्प, शत्रुगण, डाकुओं के दल एवं दावानल से प्राणियों को क्लेश पहुँचता है, वहाँ तुम्हीं एकमात्र सहायिका बनकर विश्व के सभी प्राणियों की रक्षा करती हो। पुनः समुद्र में भी सबों की रक्षा तुम्हीं करती हो।।३२ ।।

हे देवि ! तुम्हीं जगदीश्वरी हो, अतः तुम्हीं विश्व की रक्षा भी करती हो। तुम्हीं विश्वात्मिका रूप से विश्व को धारण करती हो। जो तुम्हारा सच्चा भक्त होता है, वह ब्रह्मादिकों का भी वन्दनीय होता है। तुम सब की आश्रयभूता हो ।। ३३ ।।

हे देवि ! तुम प्रसन्न होओ। इस समय जिस प्रकार तुमने शत्रुओं का विनाश करके जगत् की रक्षा की है, उसी प्रकार शत्रुभय से हम लोगों की सर्वदा रक्षा करती रहो एवं संसार की बाधाएँ एवं उल्कापातादि जनित महामारी आदि उपद्रवों का नाश करो ।। ३४ ।।

हे देवि ! तुम संसार के दुखों को नाश करने वाली हो, शरणागत पर प्रसन्न होओ। त्रिलोकवासी सभी तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम सबों की वरदात्री होओ ।। ३५ ।।

देवी ने कहा—।। ३६ ।।

हे देवतागण ! मैं वर देने को तैयार हूँ, तुम लोग जिस वर की इच्छा करते हो, उसकी प्रार्थना करो, जगत् कल्याण के लिये मैं वही प्रदान करती हूँ ।।३७।।

देवा ऊचुः ॥ ३८ ॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥३९॥

देव्युवाच ॥ ४० ॥

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे ।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ ॥४१॥
नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा ।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी ॥४२॥
पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले ।
अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ॥४३॥
भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान्महासुरान् ।
रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः ॥४४॥

देवतागण बोले—॥ ३८ ॥

हे सर्वेश्वरि ! तुमने जिस प्रकार शत्रुओं का विनाश करके संसार की रक्षा की है, इसी प्रकार सर्वदा आविर्भूता होकर हमारे शत्रुओं का नाश करके तीनों लोकों की सभी बाधाएँ दूर करती रहो ॥ ३९ ॥

देवी ने कहा—॥ ४० ॥

वैवस्वत मन्वन्तर के अठाईसवें युग में पुनः शुम्भ और निशुम्भ नामक अन्य दो महासुर पैदा होंगे ॥ ४१ ॥

तब मैं नन्द नामक ग्वाले के घर में यशोदा के गर्भ से उत्पन्न होऊँगी एवं विन्ध्याचल में रहकर उन दोनों का नाश करूँगी ॥ ४२ ॥

पुनः अतिभयानक रूप से भूमण्डल पर अवतार लेकर वैप्रचित्त नामक दानवों का विनाश करूँगी ॥ ४३ ॥

उन भयानक वैप्रचित्त महाअसुरों का भक्षण करने से मेरे दाँत अनार के पुष्प के समान लाल दिखाई पड़ेंगे, तब स्वर्ग में देवतागण तथा मृत्युलोक में

ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः ।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ।।४५।।
भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि ।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा ।।४६।।
ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन् ।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ।।४७।।
ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः ।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ।।४८।।
शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि ।
तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ।।४९।।
दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ।।५०।।

मनुष्यगण निरन्तर मेरी स्तुति करेंगे और मुझ को रक्त-दन्तिका नाम से अभिहित करेंगे ।। ४४–४५ ।।

पुनः सौ वर्षों तक अनावृष्टि होने से पृथ्वी पर जल रहित होने से मुनिगण मेरी स्तुति करेंगे तब मेरा अयोनिज अवतार होगा ।। ४६ ।।

इसके बाद मैं सौ नेत्रों से मुनियों को देखूंगी, तब मनुष्यगण मुझे शताक्षी कहेंगे ।। ४७ ।।

हे देवतागण ! उस समय मैं अपने शरीर से नाना प्रकार के शाक उत्पन्न करके सब का पालन करूँगी । उन शाकों के द्वारा वृष्टि होने तक प्राणिगण जीवित रहेंगे ।। ४८ ।।

उस समय मैं शाकम्भरी नाम से विख्यात होऊँगी । उसी समय दुर्ग नामक महा असुर का भी विनाश करूँगी ।। ४९ ।।

जिससे मैं दुर्गा देवी के नाम से विख्यात होऊँगी । पुनः मैं अति भयानक रूप से हिमालय पर अवतीर्ण होकर मुनियों की रक्षा के निमित्त राक्षसों का

रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात् ।
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः ।।५१।।
भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ।।५२।।
तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम् ।
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ।।५३।।
भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ।
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ।।५४।।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ।।ॐ।।५५।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्याः स्तुतिर्नामैकादशोऽध्यायः ।। ११ ।।

उवाच ४, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः ५०,
एवम् ५५, एवमादितः ।। ६३० ।।

—:०:—

विनाश करूँगी, तब मुनिगण नम्रता पूर्वक मेरी प्रार्थना करेंगे ।। ५०–५१ ।।

उस समय मेरा नाम भीमादेवी के रूप में विख्यात होगा । जब अरुण नामक महा असुर तीनों लोकों में भयङ्कर उपद्रव करेगा, तब मैं छः पैर वाले असंख्य भ्रमररूप धारण करके इस महा असुर को मार कर तीनों लोकों की भलाई करूँगी । उस समय लोग भ्रामरी रूप से मेरी स्तुति करके प्रसन्न करेंगे । इस प्रकार जब-जब दानवों के द्वारा पीड़ा उत्पन्न होती, तब-तब मैं अवतार लेकर शत्रुओं का विनाश करूँगी ।। ५२–५५ ।।

श्री मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत देवी माहात्म्य में देवी स्तुति नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।। ११ ।।

—:०:—

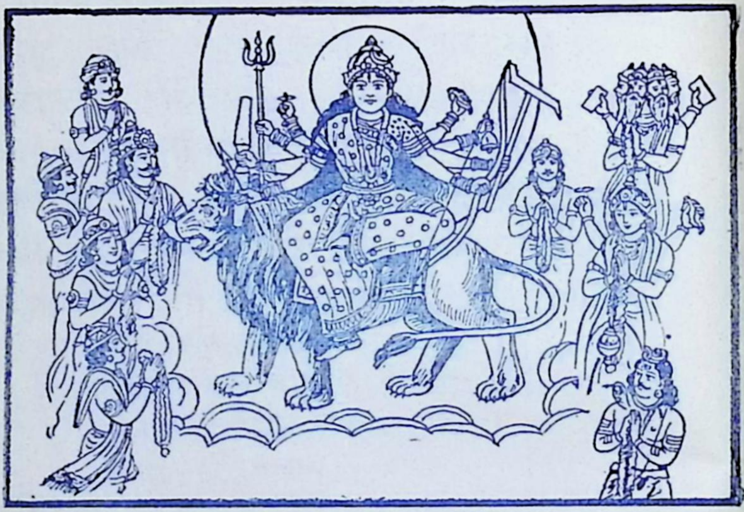

श्री १०८ दुर्गा-वरदानम्

द्वादशोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
विभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥

'ॐ' देव्युवाच ॥ १ ॥

एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः ।
तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥ २ ॥
मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम् ।
कीर्तयिष्यन्ति ये तद्वद् वधं शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ३ ॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः ।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४ ॥

ध्यान का अर्थ—चमकती हुई बिजली के समान जिनकी कान्ति है, जो सिंह के कन्धे पर बैठी हुई अत्यन्त भयङ्कर मालूम पड़ रही हैं, जिनके दोनों तरफ हाथों में तलवार लेकर कन्याएँ खड़ी हैं, जो स्वयं अपने हाथों में चक्र, गदा, तलवार, ढाल, धनुष, वाण, पाश तथा तर्जनीय मुद्रा को धारण किये हुए हैं, जो अग्नि स्वरूपा हैं तथा जिनके सिर पर चन्द्रमा विराजमान हैं, उन तीनों नेत्रों वाली दुर्गा देवी का मैं ध्यान कर रहा हूं ॥

देवी ने कहा—॥ १ ॥

जो व्यक्ति एकाग्रचित्त होकर प्रत्येक दिन इन स्तोत्रों से मेरी प्रार्थना करेगा, उसकी सभी बाधाएँ मैं निश्चय ही दूर कर दूँगी ॥ २ ॥

जो व्यक्ति मधुकैटभ का नाश, महिषासुर का वध और शुम्भ-निशुम्भ के वध का कीर्तन करेंगे तथा अष्टमी, नवमी तथा चतुर्दशी तिथि को एकाग्र मन से भक्ति पूर्वक मेरे माहात्म्य का श्रवण करेंगे, उन लोगों को किसी प्रकार

न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् दुष्कृतोत्था न चापदः ।
भविष्यति न दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ॥ ५ ॥
शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः ।
न शस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्सम्भविष्यति ॥ ६ ॥
तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः ।
श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं हि तत् ॥ ७ ॥
उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान् ।
तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम ॥ ८ ॥
यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ्नित्यमायतने मम ।
सदा न तद्विमोक्ष्यामि सांनिध्यं तत्र मे स्थितम् ॥ ९ ॥
बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे ।
सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ॥१०॥

का पाप या उससे होने वाली विपत्तियाँ कुछ नहीं कर सकेंगी। बान्धवों के साथ वियोग भी नहीं होगा। उनके यहाँ दरिद्रता नहीं रहेगी ॥ ३–५ ॥

उनको शत्रुभय, दस्युभय, नहीं होगा तथा शस्त्र, अग्नि एवं जल से भी उनको भय नहीं होगा ॥ ६ ॥

इसलिए सर्वदा मेरे इस माहात्म्य का सावधान चित्त से भक्तिपूर्वक श्रवण तथा पाठ करना चाहिये, यह उत्तम माहात्म्य बहुत ही कल्याणप्रद है ॥ ७ ॥

मेरे इस माहात्म्य के पाठ व श्रवण करने से महामारी जनित नाना प्रकार का उपद्रव एवं आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीनों प्रकार के उत्पातों का शमन हो जाता है ॥ ८ ॥

जिस घर में मेरे इस माहात्म्य का प्रतिदिन पाठ किया जाता है, उनको मैं कभी भी नहीं छोड़ती हूँ, उसी स्थान में सर्वदा मैं स्थित रहती हूँ ॥ ९ ॥

बलिदान, पूजा, होम आदि तथा अन्यान्य महोत्सवों में मेरे इस माहात्म्य का पाठ तथा श्रवण करना चाहिये ॥ १० ॥

जानताऽजानता वापि बलिपूजां तथा कृताम् ।
प्रतीक्षिष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम् ॥११॥
शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ॥१२॥
सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः ।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥१३॥
श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः ।
पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ॥१४॥
रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते ।
नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम् ॥१५॥
शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने ।
ग्रहपीडासु चोग्रासु महात्म्यं शृणयान्मम ॥१६॥
उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः ।

जानकर या अज्ञानवश जो बलि, पूजा, और होमादि करता है, उसे मैं प्रेम पूर्वक ग्रहण करती हूँ ॥ ११ ॥

शरत्काल में प्रतिवर्ष जो मेरी महापूजा होती है, उसमें भक्तिपूर्वक मेरा यह माहात्म्य सुनने पर मनुष्य मेरी कृपा से सब दुखों से रहित होकर धन-धान्य तथा पुत्र पौत्रादि का आनन्द प्राप्त करता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १२–१३ ॥

मेरे इस माहात्म्य तथा मङ्गलमयी उत्पत्ति एवं मेरे युद्ध में पराक्रमों का श्रवण करने से मनुष्यगण भयरहित हो जाते हैं ॥ १४ ॥

मेरे इस माहात्म्य का श्रवण करनेवाले व्यक्तियों का शत्रुनाश हो जाता है, कल्याण की वृद्धि होती है तथा वंश में सब प्रसन्न रहते हैं ॥ १५ ॥

सब प्रकार की शान्ति क्रिया में, दुःस्वप्न देखने में एवं भयानक ग्रहपीड़ा आदि में मेरे इस माहात्म्य का श्रवण करना चाहिये ॥ १६ ॥

ऐसा करने से सभी उपद्रवों की शान्ति हो जाती है, ग्रह पीड़ा दूर हो

दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥१७॥

बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् ।

संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥१८॥

दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् ।

रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥१९॥

सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम् ।

पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः ॥२०॥

विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम् ।

अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या ॥२१॥

प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन् सकृत्सुचरिते श्रुते ।

श्रुतं हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति ॥२२॥

जाती है तथा दुःस्वप्न देखने पर वह सुस्वप्न में परिणत हो जाता है ॥ १७ ॥

मेरा यह माहात्म्य बालग्रहों से पीड़ित बालकों के लिये शान्तिकारक है तथा आपसी मतभेदों को दूर करके मैत्री को लाने वाला है ॥ १८ ॥

यह माहात्म्य दुराचारियों की बलहानि करता है तथा इसके पाठ मात्र से ही राक्षस, भूत और पिशाच भाग जाते हैं ॥ १९ ॥

अधिक क्या कहा जाय, मेरे इस माहात्म्य के द्वारा मानव मेरे सान्निध्य तक भी पहुँच जाता है । पशु, पुष्प, अर्घ्य, धूप, गन्ध, दीप, ब्राह्मण भोजन, होम, अभिषेक सामग्री और अन्यान्य भोज्य पदार्थ प्रदान पूर्वक एक वर्ष तक प्रतिदिन पूजा करने से मैं जितना प्रसन्न होती हूं केवल एक बार इस चरित्र का पाठ करने या सुनने से मैं उतना ही प्रसन्न होती हूं । मेरे इस माहात्म्य के सुनने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य आरोग्य हो जाता है ॥२०–२२॥

रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम ।
युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिबर्हणम् ॥२३॥
तस्मिञ्छ्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते ।
युष्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ॥२४॥
ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् ।
अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः ॥२५॥
दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः ।
सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः ॥२६॥
राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वध्यो बन्धगतोऽपि वा ।
आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे ॥२७॥
पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे ।
सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा ॥२८॥
स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत सङ्कटात् ।
मम प्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा ॥२९॥

मेरी उत्पत्ति विषयक कथा पढ़ने से सभी भूतों से रक्षा होती है तथा युद्ध-विषयक मेरा चरित्र दुष्ट दैत्यों का नाशक है ॥ २३ ॥

इस माहात्म्य का श्रवण करने से प्राणियों को शत्रुओं का भय नहीं रहता है। आप लोगों ने, ब्रह्मर्षियों ने और ब्रह्मा ने जो स्तुति की थी उसका चिन्तन करने से सद्‌बुद्धि मिलती है। वन में दावाग्नि से घिर जाने पर, निर्जन स्थान में डाकुओं के द्वारा घिरे जाने पर, शत्रुओं के द्वारा आक्रान्त होने पर, वन में सिंह, बाघ या जंगली हाथियों द्वारा घेर लिये जाने पर, क्रुद्ध राजा के द्वारा प्राणदण्ड की आज्ञा देने या बन्धन में पड़ जाने से, महासमुद्र में तूफान की चपेट में पड़ जाने पर, भयानक युद्ध क्षेत्र में भीषण शस्त्र प्रहार होने के समय यदि मनुष्य मेरे इस माहात्य का स्मरण करे तो सभी

दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम ॥३०॥

ऋषिरुवाच ॥ ३१ ॥

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा ॥३२॥

पश्यतामेव देवानां तत्रैवान्तरधीयत ।
तेऽपि देवा निरातङ्काः स्वाधिकारान् यथा पुरा ॥३३॥

यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः ।
दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि ॥३४॥

जगद्विध्वंसिनि तस्मिन् महोग्रेऽतुलविक्रमे ।
निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः ॥३५॥

एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः ।
सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥३६॥

तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते ।
सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ॥३७॥

संकट दूर हो जाते हैं। इस चरित्र के स्मरण करने से ही मेरे प्रभाव द्वारा सिंह, बाघ आदि हिंसक जन्तु, दस्यु एवं शत्रुगण दूर से ही भाग जाते हैं॥२४—३०॥

ऋषि बोले—॥ ३१ ॥

इस प्रकार कहकर पराक्रमी भगवती चण्डिका देवताओं को देखते ही देखते वहीं अन्तर्धान हो गईं। तब देवतागण भी शत्रुरहित होकर निर्भय हो पूर्ववत् अपने-अपने अधिकार के भागी हो गये एवं अपना-अपना यज्ञ भाग ग्रहण करने लगे। देवी के द्वारा देवताओं के शत्रु जगद्विध्वंसी, महापराक्रमी शुम्भ और निशुम्भ के मारे जाने पर शेष असुरगण भी पाताल लोक में भाग गये ॥ ३२—३५ ॥

हे राजन्! इस प्रकार भगवती नित्या सनातनी होने पर भी अनेक बार जन्म लेकर जगत् की रक्षा किया करती हैं ॥ ३६ ॥

उन्हीं देवी के द्वारा यह विश्व मोहित होता है, वे ही जगत् की सृष्टि करती हैं, उन्हीं की प्रार्थना करने पर वे प्रसन्न होकर विज्ञान तथा सम्पत्ति प्रदान करती हैं ॥ ३७ ॥

व्याप्तं तयैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर ।
महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ॥३८॥
सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा ।
स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ॥३९॥
भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा गृहे ।
सैवाभावे तथा लक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥४०॥
स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा ।
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे गतिं शुभाम् ॥ॐ॥४१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
फलस्तुतिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥
उवाच २, अर्धश्लोकौ २, श्लोकाः ३७,
एवम् ४१, एवमादितः ६७१ ॥

हे राजन् ! वही महाकाली सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। प्रलय के समय वे ही महामारी रूप से अपने में मिला लेती हैं। वे ही समय-समय पर महामारी होती तथा अजन्मा होती हुई भी सृष्टि के रूप में प्रकट होती हैं तथा रक्षा के लिये सनातनी बनकर रक्षा करती हैं। उत्थान के समय वही लक्ष्मी होकर कल्याण करती है और पतन के समय वही विनाश भी करती हैं ॥ ३८–४० ॥

जो मनुष्य उनकी स्तुति करते हैं तथा पुष्प, धूप, चन्दन आदि उपचारों से पूजन करते हैं, उनको धन, पुत्र, सद्बुद्धि तथा सद्मार्ग प्रदर्शित करती हैं ॥ ४१ ॥

श्री मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत
देवी माहात्म्य में फलस्तुति नामक बारहवाँ
अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

—:०:—

त्रयोदशोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ।
पाशाङ्कुशवराभीतीर्धारयन्तीं शिवां भजे ॥

ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।
एवंप्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत् ॥ २ ॥
विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया ।
तया त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः ॥ ३ ॥
मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे ।
तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम् ॥ ४ ॥

ध्यान का अर्थ—जो उदयकालीन सूर्यमण्डल के समान कान्ति से सुशोभित हैं, जिनकी चारों भुजाएँ पाश, अङ्कुश, वर और अभय से युक्त हैं, उन तीन नेत्रोंवाली शिवा देवी का मैं भजन करता हूँ ॥

ऋषि ने कहा—॥ १ ॥

हे राजन् ! इस प्रकार मैंने ये सब देवी के उत्तम माहात्म्य को तुमसे कहा । वे देवी ऐसी प्रभावशालिनी हैं, जिन्होंने इस जगत् को धारण कर रखा है ॥ २ ॥

उन विष्णुमाया देवी के प्रसन्न होने से हीं स्वरूप ज्ञान प्राप्त होता है । उन्होंने ही तुमको, इस वैश्य को तथा अन्यान्य विवेकी, अविवेकी सब को मोहित किया था, अब भी कर रही है और भविष्य में भी करेंगी। हे महाराज !

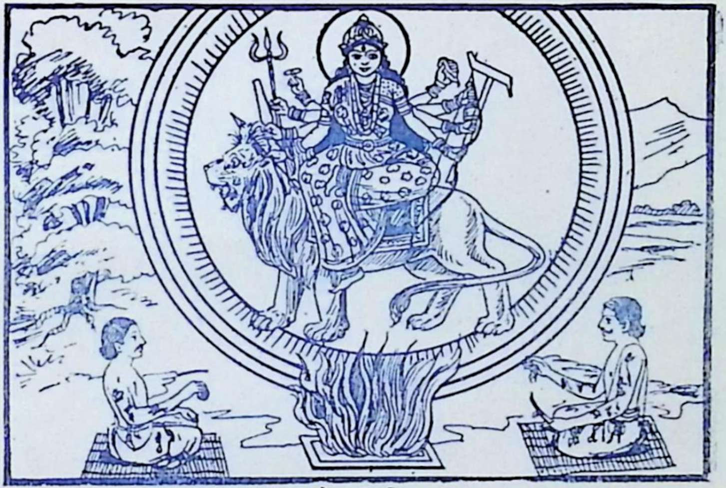

श्रीसुरथवैश्ययोर्वरदानम्

आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ॥ ५ ॥

मार्कण्येय उवाच ॥ ६ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः ॥ ७ ॥
प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं शंसितव्रतम् ।
निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च ॥ ८ ॥
जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने ।
संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः ॥ ९ ॥
स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन् ।
तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्ति महीमयीम् ॥ १० ॥
अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः ।
निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ ॥ ११ ॥
ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम् ।

तुम लोग उन्हीं परमेश्वरी की शरण में जाओ, उनकी आराधना करने से वे ही भोग, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करती हैं ॥ ३–५ ॥

मार्कण्डेय ऋषि बोले—॥ ६ ॥

राज्य छिन जाने से दुःखी राजा सुरथ एवं मोह से निर्विण्ण मानस मेधस नामक वैश्य मुनि की इस प्रकार की बात सुनकर अति प्रभाव सम्पन्न व्रतधारी उन ऋषि को प्रणाम करके तपस्या करने चले गये।

हे महामुने ! समाधि नामक वैश्य उसी समय तपस्या करने के लिये वन में चला गया और वहाँ एक नदी के किनारे जगदम्बा के दर्शन के लिये आराधना करने लगा ॥ ७–९ ॥

वैश्य ने देवी सूक्त का जप करके कठोर तपस्या प्रारम्भ कर दी। वैश्य और राजा दोनों ने उस नदी के तट पर देवी की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर पुष्प, धूप एवं होमादि द्वारा पूजा करना प्रारम्भ किया। वे कभी निराहार

एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ॥१२॥
परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ॥१३॥

देव्युवाच ॥ १४ ॥

यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन ।
मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ॥१५॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ १६ ॥

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि ।
अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥१७॥
सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः ।
ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम् ॥१८॥

रहकर, कभी फलमूल का आहार लेकर सब इन्द्रियों को वश में करके मन को एक मात्र भगवती में लीन करके एवं अपने शरीर के रक्त का वलिदान करते हुए तपस्या करने लगे। इस प्रकार तीन वर्ष तक संयतात्मा हो आराधना करने पर जगद्धात्री चन्द्रिका देवी प्रसन्न होकर सामने आकर बोली ॥१०–१३॥

देवी ने कहा—॥ १४ ॥

हे राजन्! हे कुलनन्दन वैश्य! मैं तुम पर प्रसन्न हूं। तुम दोनों को जिस वस्तु की अभिलाषा हो, वह मुझसे माँग लो। मैं सब कुछ अवश्य दूँगी ॥१५

मार्कण्डेय ऋषि बोले—॥ १६ ॥

तब राजा सुरथ ने कहा, मुझे जन्मान्तर में कभी न नष्ट होनेवाला चिरस्थायी राज्य मिले और इस जन्म में भी अपने वल से सभी शत्रुओं का विनाश करके अपना राज्य प्राप्त करूँ ॥ १७ ॥

इसके वाद समाधिनामक वैश्य ने संसार के प्रति अति विरक्त होने से पुत्र, कलत्र एवं देहादि में आसक्ति के नाश करने वाले तत्वज्ञान के लिये प्रार्थना की ॥ १८ ॥

देव्युवाच ॥ १९ ॥

स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् ॥२०॥

हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥२१॥

मृतश्च भूयः सम्प्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः ॥२२॥

सावर्णिको नाम मनुर्भवान् भुवि भविष्यति ॥२३॥

वैश्यवर्य त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः ॥२४॥

तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति ॥२५॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ २६ ॥

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम् ॥२७॥

बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता ।

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ॥२८॥

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ।

॥ देवी ने कहा—॥ १९ ॥

हे राजन् ! तुम शीघ्र ही अपना राज्य प्राप्त करोगे, एवं शत्रुओं का नाश करके निर्विघ्न भाव से उसका भोग करोगे। पुनः शरीर त्यागने पर सूर्य से जन्म पाकर पृथ्वी पर सावर्णि नामक मनुरूप से विख्यात होओगे ॥ २०–२३ ॥

हे वैश्य श्रेष्ठ ! तुमने मुझसे जिस वर की प्रार्थना की है, उसे मैं देती हूं। तुमको आत्मज्ञान होगा ॥ २४–२५ ॥

मार्कण्डेय ऋषि बोले—॥ २६ ॥

इस प्रकार देवी ने उन दोनों को यथाभिलषित वर दिया। उन दोनों ने भक्ति पूर्वक देवी की स्तुति की। तब देवी अन्तर्धान हो गई। इस प्रकार

सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ।
सावर्णिर्भविता मनुः ।। क्लीं ॐ ।।२९।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये सुरथवैश्ययोर्वरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।। १३ ।।

उवाच ६, अर्धश्लोकाः ११, श्लोकाः १२, एवं २९, एवमादितः ७०० ।। समस्ता उवाचमन्त्राः ५७, अर्धश्लोकाः ४२, श्लोकाः ५३५, अवदानानि ६६ ।।

क्षत्रियों में श्रेष्ठ राजा सुरथ देवी के द्वारा वर प्राप्त करके सूर्य से जन्म लेकर सावर्णिक नामक मनु होंगे ।। २७–२९ ।।

श्री मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत
देवी माहात्म्य में सुरथ और वैश्य के लिये वरदान
नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।१३।।

—:०:—

दुर्गासप्तशती समाप्ता

—:०:—

परिशिष्टम्

अथ परिसमापनम्

तत्र प्रथमं नवार्णजपविधिः

(सप्तशती का पाठ समाप्त होने पर पहले नवार्णमन्त्र जप, तब देवी-सूक्त आदि का पाठ करना चाहिए।)

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीनवार्णमन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, ऐं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः

ब्रह्माविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः, शिरसि। गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः, मुखे। महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः, हृदि। ऐं बीजाय नमः, गुह्ये। ह्रीं शक्तये नमः, पादयोः। क्लीं कीलकाय नमः, नाभौ।

'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इति मूलेन (नवार्णमन्त्रेण) करौ संशोध्य—

करन्यासः

ॐ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः। ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यासः

ॐ ऐं हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ क्लीं शिखायै वषट्। ॐ चामुण्डायै कवचाय हुम्। ॐ विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट्।

अक्षरन्यासः

ॐ ऐं नमः, शिखायाम्। ॐ ह्रीं नमः, दक्षिणनेत्रे। ॐ क्लीं नमः, वामनेत्रे। ॐ चां नमः, दक्षिणकर्णे। ॐ मुं नमः, वामकर्णे। ॐ डां नमः, दक्षिणनासापुटे। ॐ यैं नमः, वामनासापुटे। ॐ विं नमः, मुखे। ॐ च्चें नमः, गुह्ये।

'एवं विन्यस्याष्टवारं मूलेन (नवार्णमन्त्रेण) व्यापकं कुर्यात्'

दिङ्न्यासः

ॐ ऐं प्राच्यै नमः। ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः। ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः। ॐ ह्रीं नैर्ऋत्यै नमः। ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः। ॐ क्लीं वायव्यै नमः। ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः। ॐ चामुण्डायै ऐशान्यै नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ऊर्ध्वायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे भूम्यै नमः॥

ध्यानम्

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥ १॥
अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥ २॥
घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्॥ ३॥

इस प्रकार ध्यान करें 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इस नवार्णमन्त्र का १०८ या १००० वार जप करें। जप के पहले—ॐ ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः' इस मन्त्र से माला की पूजा करके प्रार्थना करें।

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणी।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव॥
ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये॥

ॐ अक्षमालाधिपतये सुसिद्धिं देहि देहि सर्वमन्त्रार्थसाधिनि साधय साधय सर्वसिद्धिं परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा।

प्रार्थना के वाद जप पूरा करके उस देवी को समर्पित करें—

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥

जप समर्पित के पश्चात् निम्न करादिन्यास करे ।

करन्यासः

ॐ ह्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ चं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ डिं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ कां अनामिकाभ्यां नमः । ॐ यैं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं चण्डिकायै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

हृदयादिन्यासः

ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ॥ हृदयाय नमः ।
ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ शिरसे स्वाहा ।
ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥ शिखायै वषट् ।
ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥ कवचाय हुम् ।
ॐ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥ नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम् ।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
विभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥

इति नवार्णजपविधिः

—:०:—

अथ ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तम्

ॐ अहमित्यष्टर्चस्य सूक्तस्य वागाम्भृणी ऋषिः। सच्चित्सुखात्मकः सर्वगतः परमात्मा देवता, द्वितीयाया ऋचो जगती, शिष्टानांत्रिष्टुप् छन्दः, देवीमाहात्म्यपाठे विनियोगः।

ध्यानम्

ॐ सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः
शङ्खं चक्रधनुःशरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता।
आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत्काञ्चीरणन्नूपुरा
दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला॥

देवीसूक्तम्

ॐ अहंरुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥१॥

ध्यान का अर्थ—जो देवी सिंह के ऊपर बैठी हुई हैं, चन्द्रमा का मुकुट जिनके मस्तक पर है, मरकतमणि की कान्ति से युक्त जिनकी चारों भुजाओं में शङ्ख, चक्र, धनुष और बाण लगे हुए हैं, तीन नेत्रों से विभूषित हैं, जिनके विभिन्न अङ्ग में बाजूबन्द, हार, कङ्कण, खनखन करती हुई करधनी और रुनझुनाते हुए नूपुरों से शोभित हैं, रत्नजटित कुण्डल जिनके कानों की षोभा बढ़ा रहे हैं वे दुर्गा देवी हम लोगों की दुर्गति को नाश करने वाली हों।

(अम्भृण नामक महर्षि की वाक् नाम की कन्या ब्रह्म विदुषी हुई थीः, इस कारण वह ऋषि भी थी। सच्चिदानन्द स्वरूप परेमात्मा के सहित तादात्म्य अर्थात् सम्पूर्ण अभिन्नता की उपलब्धि करके उन्होंने जो आत्मस्वरूप प्रकटित किया है, वही देवी सूक्त नाम से कथन किया जाता है। इसमें देवी उन्हीं के मुख से बोल रही हैं।)

मैं (सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा) एकादश रुद्रों, आठ वसुओं, बारह आदित्यों और विश्वदेवगण रूप से विचरण करती हूं। मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि और दोनों अश्विनी कुमारों को मैं ही धारण करती हूं॥ १॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणंहविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥२॥
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तांमा देवा व्यदधुः पुरुत्राभूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥३॥
मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां तउपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥४॥
अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यंकामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥५॥
अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।

मैं शत्रुहन्ता सोम, त्वष्टा, पूषा एवं भग नामक देवताओं को धारण करती हूं। जो देवताओं के उद्देश्य से प्रचूर हविर्युक्त सोमयगादि का अनुष्ठान करते हैं, उन यजमानों का यज्ञफल मैं ही धारण करती हूं ॥ २ ॥

मैं इस ब्रह्माण्ड की एकमात्र अधीश्वरी हूं। मैं पार्थिव और अपार्थिव धन देनेवाली हूँ। मैं ब्रह्म साक्षात्काररूपा सम्वित् वा ज्ञानरूपा हूँ। यह ज्ञान ही सभी उपासनाओं का आदि है। मैं प्रपञ्चरूप से अनेक भाव में स्थित हूँ। मैं ही सर्वत्र सब जीवों में विराजमान हूं। देवतागण इस प्रकार मुझको अनेक भाव से उपासना करते हैं ॥ ३ ॥

जीव जो अन्नादि खाद्य पदार्थ भक्षण करता है, दर्शन करता है, एवं प्राण धारण करता है, ये सभी क्रियाएँ मेरे द्वारा ही सिद्ध होती हैं। जो मुझको इस प्रकार (सभी कर्मों) नहीं देखते, समझ नहीं सकते, वे ही संसार में क्षीणता को प्राप्त होते हैं। हे सौम्य ! तुमसे जो तत्व कहते हैं उन सबों को श्रद्धा के साथ सुनो ॥ ४ ॥

मैंने ही स्वयं इन तत्वों का उपदेश दिया है, देवता और मनुष्य इन्हीं तत्वों का सेवन करते हैं। मैं जिन्हें जो चाहती हूँ उन्हें इच्छा मात्र से ही ब्रह्मा, महायोगी, अतीन्द्रियदर्शी तथा तत्वज्ञानी बना देती हूं ॥ ५ ॥

मैं ब्रह्मज्ञान विरोधी विनाश योग्य रुद्र (एकादश इन्द्रियों) को नाश करने

अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥६॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्द्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।

ततो वितिष्ठे भुवनानिविश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि ॥७॥

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।

परो दिवापर एना पृथिव्यैतावती महिना संबभूव ॥८॥

इति ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तं समाप्तम्

—:०:—

के लिये प्रणवरूपी धनुष पर आत्मरूपी शर युक्त करती हूं । एवं इस प्रकार मैं ही जन-समूहों के लिये युद्ध करती रहती हूं । मैं स्वर्गलोक तथा मर्त्यलोक दोनों में सर्वतोभाव से अनुप्रविष्ट हूँ ॥ ६ ॥

मैंने जगत् पिता को उत्पन्न किया । मैं ही इस संसार के मूल कारण आकाश को उत्पन्न करती हूं । अपने चैतन्य रूप से आकाश को प्रकाशित करती हूं । समुद्र और जल मेरे ही कारण उत्पत्ति की स्थिति को प्राप्त करता है । इसलिये मैं सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हूं । यह जो दूरवर्ती स्वर्गलोक है उसे भी मैंने अपने शरीर से स्पर्श किया है ॥ ७ ॥

मैं जब वायु की भाँति प्रवाहित होती हूं तभी यह समग्र भुवनों की सृष्टि प्रारम्भ होती है । इस स्वर्ग और मर्त्य के परे भी मैं वर्तमान हूं । यह मेरी महिमा है ॥ ८ ॥

देवीसूक्त समाप्त

—०—

अथ तन्त्रोक्तं देवीसूक्तम्

(तन्त्रोक्त देवीसूक्त की हिन्दी टीका सप्तशती के ५ वें अध्याय में देखें)

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताःस्म ताम् ॥ १ ॥
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः ।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥ २ ॥
कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः ।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥ ३ ॥
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै ।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥ ४ ॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः ।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥ ५ ॥
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ६ ॥
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ७ ॥
या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ८ ॥
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ९ ॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१०॥

या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥११॥
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१२॥
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१३॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१४॥
या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१५॥
या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१६॥
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१७॥
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१८॥
या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१९॥
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२०॥
या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२१॥

या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२२॥
या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२३॥
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२४॥
या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२५॥
या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२६॥
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या ।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥२७॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत् ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२८॥
स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता ।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥२९॥
या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै-
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते ।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥ ३० ॥

इति तन्त्रोक्तं देवीसूक्तं समाप्तम्

—:o:—

अथ प्राधानिकं रहस्यम्

ॐ अस्य श्रीसप्तशतीरहस्यत्रयस्य नारायण ऋषिरनुष्टुप्छन्दः, महाकाली-महालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, यथोक्तफलावाप्त्यर्थं जपे विनियोगः ।

राजोवाच

भगवन्नवतारा मे चण्डिकायास्त्वयोदिताः ।
एतेषां प्रकृतिं ब्रह्मन् प्रधानं वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥
आराध्यं यन्मया देव्याः स्वरूपं येन च द्विज ।
विधिना ब्रूहि सकलं यथावत्प्रणतस्य मे ॥ २ ॥

ऋषिरुवाच

इदं रहस्यं परममनाख्येयं प्रचक्षते ।
भक्तोऽसीति न मे किञ्चित्तवावाच्यं नराधिप ॥ ३ ॥
सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी ।
लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ॥ ४ ॥

इन सप्तशती के तीनों रहस्यों के नारायण ऋषि, अनुष्टुप्छन्द, महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती देवता हैं । यथोक्त फल प्राप्ति के लिये जप या पाठ में विनियोग का प्रतिपादन किया गया है ।

राजा ने कहा—हे भगवन् ! आपने चण्डिका देवी के सभी अवतारों के विषय में पूर्वरूपेण बतला दिया । किन्तु हे राजन् ! उन अवतारों का वास्तविक मूल स्वरूप क्या है ? एवं उन देवियों के जिस स्वरूप की जिस विधि से पूजा करनी चाहिये, उस स्वरूप एवं पूजा विधान को मुझ विनम्र से कहिये ॥ १–२ ॥

ऋषि ने कहा—यह रहस्य अत्यन्त गोपनीय है, किसी से कहने लायक नहीं है । किन्तु तुम भक्त हो, ऐसा कोई भी विषय नहीं है जो तुमसे न कहा जा सके । सब की आदि स्वरूपा, सत्व, रज, तमोगुण से युक्त परमेश्वरी महालक्ष्मी हैं । वह अलक्ष्य तथा लक्ष्यरूप से सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हैं ॥ ३–४ ॥

मातुलिङ्गं गदां खेटं पानपात्रं च बिभ्रती ।
नागं लिङ्गं च योनिं च बिभ्रती नृप मूर्द्धनि ॥ ५ ॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा तप्तकाञ्चनभूषणा ।
शून्यं तदखिलं स्वेन पूरयामास तेजसा ॥ ६ ॥
शून्यं तदखिलं लोकं विलोक्य परमेश्वरी ।
बभार परमं रूपं तमसा केवलेन हि ॥ ७ ॥
सा भिन्नाञ्जनसंकाशा दंष्ट्राङ्कितवरानना ।
विशाललोचना नारी बभूव तनुमध्यमा ॥ ८ ॥
खड्गपात्रशिरःखेटैरलंकृतचतुर्भुजा ।
कबन्धहारं शिरसा बिभ्राणा हि सिरःस्रजम् ॥ ९ ॥
सा प्रोवाच महालक्ष्मीं तामसी प्रमदोत्तमा ।
नाम कर्म च मे मातर्देहि तुभ्यं नमो नमः ॥ १० ॥

हे राजन् ! वह देवी अपने हाथों में मातुलिङ्ग, गदा, खेट और पानपात्र एवं मस्तक पर नागलिङ्ग और योनि धारण की हुई है। तप्त स्वर्ण की तरह कान्तिवाली तपाये हुए सोने के आभूषणों से विभूषित वह देवी ने अपने तेजों से सम्पूर्ण आकाश को भर दिया है ॥ ५-६ ॥

सम्पूर्ण विश्व को शून्य देखकर परमेश्वरी ने केवल तमोगुण से ही एक परमोत्कृष्ट रूप को धारण किया ॥ ७ ॥

वह काजल के समान कान्तिवाली, दाढ़ों से सुन्दर मुखवाली, बड़ी-बड़ी आँखोंवाली तथा पतली कमरवाली नारी हुई ॥ ८ ॥

ढाल, तलवार, प्याले और मस्तक पर खेटादि से सुशोभित चार भुजाओं-वाली, वक्षस्थल पर कबन्ध (धड़) तथा गर्दन में मुण्ड की माला से युक्त तामसी ने महालक्ष्मी से कहा—हे माता ! तुम मेरा नाम तथा काम बताओ । हे देवि ! तुमको नमस्कार है ॥ ९-१० ॥

तां प्रोवाच महालक्ष्मीस्तामसीं प्रमदोत्तमाम् ।
ददामि तव नामानि यानि कर्माणि तानि ते ॥ ११ ॥
महामाया महाकाली महामारी क्षुधा तृषा ।
निद्रा तृष्णा चैकवीरा कालरात्रिर्दुरत्यया ॥ १२ ॥
इमानि तव नामानि प्रतिपाद्यानि कर्मभिः ।
एभिःकर्माणि ते ज्ञात्वा योऽधीते सोऽश्नुते सुखम् ॥ १३ ॥
तामित्युक्त्वा महालक्ष्मीः स्वरूपमपरं नृप ।
सत्त्वाख्येनातिशुद्धेन गुणेनेन्दुप्रभं दधौ ॥ १४ ॥
अक्षमालाङ्कुशधरा वीणापुस्तकधारिणी ।
सा बभूव वरा नारी नामान्यस्यै च सा ददौ ॥ १५ ॥
महाविद्या महावाणी भारती वाक् सरस्वती ।
आर्या ब्राह्मी कामधेनुर्वेदगर्भा च धीश्वरी ॥ १६ ॥
अथोवाच महालक्ष्मीर्महाकालीं सरस्वतीम् ।
युवां जनयतां देव्यौ मिथुने स्वानुरूपतः ॥ १७ ॥

उस तामसी स्त्री से महालक्ष्मी ने कहा—तुम्हारे नामों तथा कर्मों को मैं बताती हूं, महामाया, महाकाली, महामारी, क्षुधा, तृषा, निद्रा, तृष्णा, एकवीरा, कालरात्रि और दुरत्यया ये सभी नाम तुम्हारे कर्मों के अनुसार बताये गये हैं। तुम्हारे कर्मों को जानकर इन नामों को जो मनुष्य पढ़ता है वह सुख पाता है ॥ ११–१३ ॥

हे राजन् ! उससे यह कहकर महालक्ष्मी ने अत्यन्त शुद्ध, चन्द्रमा के समान कान्तिवाला दूसरा स्वरूप धारण किया ॥ १४ ॥

अक्षमाला और अङ्कुश, वीणा और पुस्तक को धारण करनेवाली वह स्त्री सर्वोत्तम थी। महालक्ष्मी ने उसके ये नाम रक्खे—महाविद्या, महावाणी, भारती, वाक्, सरस्वती, आर्या, ब्राह्मी, कामधेनु, वेदगर्भा तथा धीश्वरी॥१५–१६

इसके बाद महालक्ष्मी ने महाकाली तथा महासरस्वती से कहा—अपने स्वरूप के अनुसार तुम दोनों स्त्री-पुरुष के जोड़े को उत्पन्न करो ॥१७॥

इत्युक्त्वा ते महालक्ष्मीः ससर्ज मिथुनं स्वयम् ।
हिरण्यगर्भौ रुचिरौ स्त्रीपुंसौ कमलासनौ ॥ १८ ॥
ब्रह्मन् विधे विरिञ्चेति धातरित्याह तं नरम् ।
श्रीः पद्मे कमले लक्ष्मीत्याह माता च तां स्त्रियम् ॥ १९ ॥
महाकाली भारती च मिथुने सृजतः सह ।
एतयोरपि रूपाणि नामानि च वदामि ते ॥ २० ॥
नीलकण्ठं रक्तबाहुं श्वेताङ्गं चन्द्रशेखरम् ।
जनयामास पुरुषं महाकाली सितां स्त्रियम् ॥ २१ ॥
स रुद्रः शंकरः स्थाणुः कपर्दी च त्रिलोचनः ।
त्रयी विद्या कामधेनुः सा स्त्री भाषाक्षरा स्वरा ॥ २२ ॥
सरस्वती स्त्रियं गौरीं कृष्णं च पुरुषं नृप ।
जनयामास नामानि तयोरपि वदामि ते ॥ २३ ॥

इतना कहकर महालक्ष्मी ने स्त्री-पुरुष के एक जोड़ा को स्वयं उत्पन्न किया। जो हिरण्यगर्भ (शुद्ध ज्ञान सम्पन्न) सुन्दर तथा कमलासन पर बैठे थे ॥ १८ ॥

तब महालक्ष्मी ने उस पुरुष को ब्रह्मा, विधि, विरञ्चि और धाता तथा उस स्त्री को श्री, पद्मा, कमला और लक्ष्मी नाम से सम्बोधित किया ॥१९॥

महाकाली और महासरस्वती ने भी स्त्री-पुरुष के जोड़े को एक साथ उत्पन्न किये। उन सबों के स्वरूप और नाम को कहती हूं ॥ २० ॥

महाकाली ने नीलकण्ठ, रक्तबाहु, श्वेताङ्ग पुरुष तथा एक गौरी नाम की स्त्री को उत्पन्न किया। रुद्र, शङ्कर, स्थाणु, कपर्दी और त्रिलोचन पुरुष के तथा त्रयी, विद्या, कामधेनु, भाषा, अक्षरा और स्वरा स्त्री के नाम रक्खे ॥२१-२२

हे राजन् ! सरस्वती ने गौरी स्त्री तथा कृष्ण पुरुष को उत्पन्न किया। उन दोनों के नामों को मैं कहती हूं ॥ २३ ॥

विष्णुः कृष्णो हृषीकेशो वासुदेवो जनार्दनः ।
उमा गौरी सती चण्डी सुन्दरी सुभगा शिवा ॥ २४ ॥
एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे ।
चक्षुष्मन्तो नु पश्यन्ति नेतरेऽतद्विदो जनाः ॥ २५ ॥
ब्रह्मणे प्रददौ पत्नीं महालक्ष्मीर्नृप त्रयीम् ।
रुद्राय गौरीं वरदां वासुदेवाय च श्रियम् ॥ २६ ॥
स्वरया सह संभूय विरिञ्चोऽण्डमजीजनत् ।
बिभेद भगवान् रुद्रस्तद् गौर्या सह वीर्यवान् ॥ २७ ॥
अण्डमध्ये प्रधानादि कार्यजातमभून्नृप ।
महाभूतात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ २८ ॥
पुपोष पालयामास तल्लक्ष्म्या सह केशवः ।
संजहार जगत्सर्वं सह गौर्या महेश्वरः ॥ २९ ॥

विष्णु, कृष्ण, ऋषिकेश, वासुदेव और जनार्दन ये पुरुष के तथा उमा गौरी, सती, चण्डी, सुन्दरी, सुभगा और शिवा ये स्त्री के नामों को बतायी ॥ २४ ॥

इस प्रकार तीनों युवतियाँ तुरन्त ही पुरुषत्व को प्राप्त हो गईं। उनको दिव्य दृष्टि वाले पुरुष ही देख सकते हैं, अन्य लोग नहीं। हे राजन् ! तब महालक्ष्मी ने उन विद्यारूपी सरस्वती को पत्नी के रूप में ब्रह्मा को, वरदात्री गौरी शिव को तथा लक्ष्मी देवी विष्णु को अर्पण कर दिया ॥ २५–२६ ॥

सरस्वती से मिलकर ब्रह्मा ने ब्रह्माण्ड की रचना की तथा बलशाली भगवान् रुद्र ने गौरी के साथ मिलकर उसका विभेदन किया ॥ २७ ॥

उस ब्रह्माण्ड के पहले ब्रह्मतत्व आदि तब महाभूतात्मक स्थावरजङ्गमरूप सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति हुई ॥ २८ ॥

भगवान् विष्णु ने लक्ष्मी के साथ उस जगद का पालन किया एवं गौरी के साथ शिव ने उसका संहार किया। हे महाराज ! महालक्ष्मी सर्वसत्व से

महालक्ष्मीर्महाराज सर्वसत्त्वमयीश्वरी ।
निराकारा च साकारा सैव नानाभिधानभृत् ॥ ३० ॥
नामान्तरैर्निरूप्यैषा नाम्ना नान्येन केनचित् ।ॐ। ३१ ॥

इति प्राधानिकं रहस्यं समाप्तम्

—०:०—

सम्पन्न ईश्वरी हैं । निराकार होने पर भी वह साकार हैं । उनके असंख्य नाम हैं । वह अपने नाम के अलावा किसी अन्य प्रमाणों के द्वारा नहीं जानी जा सकती है ॥ २९–३१ ॥

प्राधानिक रहस्य समाप्त

—:०:—

अथ वैकृतिकं रहस्यम्

ऋषिरुवाच

ॐ त्रिगुणा तामसी देवी सात्त्विकी या त्रिधोदिता ।
सा शर्वा चण्डिका दुर्गा भद्रा भगवतीर्यते ॥ १ ॥
योगनिद्रा हरेरुक्ता महाकाली तमोगुणा ।
मधुकैटभनाशार्थं यां तुष्टावाम्बुजासनः ॥ २ ॥
दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा ।
विशालया राजमाना त्रिंशल्लोचनमालया ॥ ३ ॥
स्फुरद्दशनदंष्ट्रा सा भीमरूपाऽपि भूमिप ।
रूपसौभाग्यकान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियः ॥ ४ ॥
खड्गबाणगदाशूलचक्रशङ्खभुशुण्डिभृत् ।
परिघं कार्मुकं शीर्षं निश्च्योतद्रुधिरं दधौ ॥ ५ ॥

ऋषि ने कहा—हे नृप ! तामसी, सात्त्विकी तथा राजसी इन तीन गुणों से जिस देवी का मैंने वर्णन किया है । वही देवी सर्वा, चण्डिका, दुर्गा, भद्रा तथा भगवती के नाम से भी प्रसिद्ध हैं । तमोगुणवाली महाकाली भगवान् विष्णु की योगनिद्रा है, मधुकैटभ के नाश के समय ब्रह्मा ने जिसकी प्रार्थना की थी ॥ १–२ ॥

उनके दस मुंह, दस भुजाएँ, दस पैर और तीन बड़ी-बड़ी आँखें हैं । उनकी कान्ति काजल के समान हैं । उनके दाँत और दाढ़ें चमकती हैं । हे राजन् ? भयङ्कररूप होने पर भी वह भक्तों को रूप, सौभाग्य कान्ति तथा अत्यधिक सम्पत्ति को देती हैं ॥ ३–४ ॥

वह अपने हाथों में खड्ग, बाण, गदा, शूल, शङ्ख, चक्र, भुशुण्डी और परिघ धारण करती हैं । अपनी गर्दन में रुधिर टपकता हुआ मुण्ड की माला धारण करती हैं ॥ ५ ॥

एषा सा वैष्णवी माया महाकाली दुरत्यया ।
आराधिता वशीकुर्यात् पूजाकर्तुश्चराचरम् ॥ ६ ॥
सर्वदेवशरीरेभ्यो याऽऽविर्भूतामितप्रभा ।
त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः साक्षान्महिषमर्दिनी ॥ ७ ॥
श्वेतानना नीलभुजा सुश्वेतस्तनमण्डला ।
रक्तमध्या रक्तपादा नीलजङ्घोरुरुन्मदा ॥ ८ ॥
सुचित्रजघना चित्रमाल्याम्बरविभूषणा ।
चित्रानुलेपना कान्तिरूपसौभाग्यशालिनी ॥ ९ ॥
अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती ।
आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधःकरक्रमात् ॥ १० ॥
अक्षमाला च कमलं बाणोऽसिः कुलिशं गदा ।
चक्रं त्रिशूलं परशुः शङ्खो घण्टा च पाशकः ॥ ११ ॥

दुरत्यया वह महाकाली विष्णु की माया है। इसकी पूजा, आराधना करने से सकल चराचर वशीभूत हो जाते हैं ॥ ६ ॥

सभी देवताओं के शरीर से वह आविर्भूत हुई हैं। उनके शरीर में अत्यन्त कान्ति हैं। तीनों गुणों से युक्त, महिषासुर का मर्दन करनेवाली वह साक्षात् महालक्ष्मी हैं ॥ ७ ॥

उनके मुख श्वेत, भुजाएँ नीली, स्तनमण्डल सुन्दर तथा सफेद, मध्यभाग तथा पैर रक्तवर्ण और जाँघें नीली हैं। वह सदा उन्मत्त रहती हैं ॥ ८ ॥

उनकी जाँघें विचित्र हैं। वह चित्र-विचित्र माला वस्त्र तथा आभूषण से विभूषित हैं। वह विचित्र लेप करती हैं। वह कान्ति, रूप तथा सौभाग्य से परिपूर्ण हैं ॥ ९ ॥

यद्यपि उनकी भुजाएँ असंख्य हैं फिर भी अष्टादश भुजावाली मानकर पूजा करनी चाहिये। अब यहाँ पर उनके दाहिनी ओर के निचले हाथों से लेकर बायीं ओर के निचले हाथों तक क्रमशः जितने भी अस्त्र लगे हैं उन सवों का वर्णन किया जाता है ॥ १० ॥

वे अपने हाथों में अक्षमाला, कमल, बाण, तलवार, वज्र, गदा, चक्र, त्रिशूल, फरसा, शङ्ख, घंटा, फाँसी, शक्ति, दण्ड, ढाल, धनुष, पानपात्र और

शक्तिर्दण्डश्चर्म चापं पानपात्रं कमण्डलुः ।
अलंकृतभुजामेभिरायुधैः कमलासनाम् ॥१२॥
सर्वदेवमयीमीशां महालक्ष्मीमिमां नृप ।
पूजयेत् सर्वलोकानां स देवानां प्रभुर्भवेत् ॥१३॥
गौरीदेहात् समुद्भूता या सत्त्वैकगुणाश्रया ।
साक्षात्सरस्वती प्रोक्ता शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥१४॥
दधौ चाष्टभुजा बाणमुसले शूलचक्रभृत् ।
शङ्खं घण्टां लाङ्गलं च कार्मुकं वसुधाधिप ॥१५॥
एषा सम्पूजिता भक्त्या सर्वज्ञत्वं प्रयच्छति ।
निशुम्भमथिनी देवी शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥१६॥
इत्युक्तानि स्वरूपाणि मूर्तीनां तव पार्थिव ।
उपासनं जगन्मातुः पृथगासां निशामय ॥१७॥
महालक्ष्मीर्यदा पूज्या महाकाली सरस्वती ।

मण्डलु धारण की हैं, जो अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं। वह कमलासन पर स्थित हैं ॥ ११–१२ ॥

हे राजन् ! सर्वदेवमयी ईश्वरी इस महालक्ष्मी की जो पूजा करते हैं, वह सभी मानवों और देवताओं के प्रभु (स्वामी) बन जाते हैं ॥ १३ ॥

गौरी के शरीर से जो उत्पन्न हुई हैं तथा एकमात्र सत्वगुण प्रधान हैं वह शुम्भासुर का विनाश करनेवाली साक्षात् सरस्वती कही गई हैं ॥ ४ ॥

सरस्वती आठ भुजावाली हैं। वह बाण, मुसल, शूल, चक्र, शङ्ख, घण्टा हल और धनुष को धारण करती हैं। वह निशुम्भ का मर्दन करनेवाली तथा शुम्भासुर का विनाश करनेवाली देवी हैं। इनकी भक्तिपूर्वक पूजा करने से मानव सर्वज्ञता को प्राप्त करता है ॥ १५–१६ ॥

हे राजन् ! तुमसे इन मूर्तियों के स्वरूपों को कहा। अब इन जगन्माताओं की अलग-अलग उपासना को सुनो ॥ १७ ॥

जब महालक्ष्मी की पूजा करें तब दाहिनी और बायीं ओर महाकाली

दक्षिणोत्तरयोः पूज्ये पृष्ठतो मिथुनत्रयम् ॥१८॥
विरञ्चिः स्वरया मध्ये रुद्रो गौर्या च दक्षिणे ।
वामे लक्ष्म्या हृषीकेशः पुरतो देवतात्रयम् ॥१९॥
अष्टादशभुजा मध्ये वामे चास्या दशानना ।
दक्षिणेऽष्टभुजा लक्ष्मीर्महतीति समर्चयेत् ॥२०॥
अष्टादशभुजा चैषा यदा पूज्या नराधिप ।
दशानना चाष्टभुजा दक्षिणोत्तरयोस्तदा ॥२१॥
कालमृत्यू च सम्पूज्यौ सर्वारिष्टप्रशान्तये ।
यदा चाष्टभुजा पूज्या शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥२२॥
नवास्याः शक्तयः पूज्यास्तदा रुद्रविनायकौ ।
नमो देव्या इति स्तोत्रैर्महालक्ष्मीं समर्चयेत् ॥२३॥

तथा महासरस्वती की तथा पृष्ठभाग में तीनों युगल देवताओं की भी पूजा करनी चाहिये ॥ १८ ॥

सरस्वती के साथ ब्रह्मा का मध्य में, गौरी के साथ रुद्र का दक्षिण में तथा लक्ष्मी के साथ भगवान् विष्णु का उत्तर में पूजन करना चाहिये। एवं इनके सामने तीनों युगल देवताओं की पूजा करनी चाहिये ॥ १९ ॥

मध्य में अष्टादश भुजा लक्ष्मी की, उसके वाम भाग में दशमुखी महाकाली की तथा दक्षिण भाग में महासरस्वती की पूजा करके तब महालक्ष्मी की पूजा करनी चाहिये। हे राजन्! यदि अष्टादश भुजा लक्ष्मी की अथवा दशमुखी महाकाली अथवा अष्टभुजा सरस्वती की ही केवल पूजा करनी हो तो सभी अरिष्ट शान्त के लिये दक्षिण और उत्तर की ओर काल और मृत्यु की पूजा करें। जब आठ भुजावाली शुम्भासुर मर्दिनी की पूजा करनी हो तो तब उनकी नव शक्तियों की तथा रुद्र और गणेश की पूजा करनी चाहिये। महालक्ष्मी की स्तुति 'नमो देव्यै' इस स्तोत्र से करें ॥ २०–२३ ॥

अवतारत्रयार्चायां स्तोत्रमन्त्रास्तदाश्रयाः ।
अष्टादशभुजा चैषा पूज्या महिषमर्दिनी ॥२४॥
महालक्ष्मीर्महाकाली सैव प्रोक्ता सरस्वती ।
ईश्वरी पुण्यपापानां सर्वलोकमहेश्वरी ॥२५॥
महिषान्तकरी येन पूजिता स जगत्प्रभुः ।
पूजयेज्जगतां धात्रीं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् ॥२६॥
अर्घ्यादिभिरलंकारैर्गन्धपुष्पैस्तथाक्षतैः ।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्नानाभक्ष्यसमन्वितैः ॥२७॥
(रुधिराक्तेन बलिना मांसेन सुरया नृप ।
बलिमांसादिपूजेयं विप्रवर्ज्या मयेरिता ॥२८॥
तेषां किल सुरामांसैर्नोक्ता पूजा नृप क्वचित् ।)
प्रणामाचमनीयेन चन्दनेन सुगन्धिना ॥२९॥

तीनों अवतारों की पूजा करने के समय उनके चरित्र में जो मंत्र और स्तोत्र आये हैं, उन्हीं का उपयोग करना चाहिये । ये ही अष्टादश भुजावाली देवी, महिषासुरमर्दिनी, महालक्ष्मी, महाकाली तथा महासरस्वती देवी पूजनीय हैं । यही पुण्यपापों की ईश्वरी तथा सम्पूर्ण लोकों की महेश्वरी हैं । जो मनुष्य महिषासुर मर्दिनी की पूजा करता है वह संसार का प्रभु (स्वामी) होता है । तीनों लोकों को धारण करनेवाली तथा भक्तों के ऊपर दया करनेवाली चंडिका की अर्घ्यादि, विविध प्रकार के अलङ्कारों, गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य तथा नाना प्रकार के भक्ष्य सामग्रियों से पूजा करनी चाहिये ॥ २४–२७ ॥

हे राजन् ! रक्त से युक्त मांस के बलि से और मदिरा से भी पूजन करना चाहिये । किन्तु ब्राह्मणों को छोड़कर ही मांस-बलि आदि से पूजन का विधान है । हे राजन् ! ब्राह्मणों के लिये मांस और मद्य से पूजा का विधान कहीं भी नहीं है ॥ २८½ ॥

प्रणाम, आचमनीय, चन्दन, सुगन्ध, कर्पूर और ताम्बूल से भक्तिपूर्वक देवी की पूजा करनी चाहिये । देवी के वामभाग में आगे की ओर देवी के

सकर्पूरैश्च ताम्बूलैर्भक्तिभावसमन्वितैः ।
वामभागेऽग्रतो देव्याश्छिन्नशीर्षं महासुरम् ॥३०॥
पूजयेन्महिषं येन प्राप्तं सायुज्यमीशया ।
दक्षिणे पुरतः सिंहं समग्रं धर्ममीश्वरम् ॥३१॥
वाहनं पूजयेद्देव्या धृतं येन चराचरम् ।
कुर्याच्च स्तवनं धीमांस्तस्या एकाग्रमानसः ॥३२॥
ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा स्तुवीत चरितैरिमैः ।
एकेन वा मध्यमेन नैकेनेतरयोरिह ॥३३॥
चारितार्धं तु न जपेज्जपञ्छिद्रमवाप्नुयात् ।
प्रदक्षिणानमस्कारान् कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ॥३४॥
क्षमापयेज्जगद्धात्रीं मुहुर्मुहुरतन्द्रितः ।
प्रतिश्लोकं च जुहुयात्पायसं तिलसर्पिषा ॥३५॥
जुहुयात्स्तोत्रमन्त्रैर्वा चण्डिकायै शुभं हविः ।

द्वारा मोक्ष प्राप्त छिन्न मस्तकवाले महासुर महिषासुर की पूजा करनी चाहिये। दक्षिण की ओर आगे सभी धर्मों एवं चराचर को धारण करनेवाली देवी के वाहन सिंह की पूजा करके बुद्धिमान् लोग एकाग्रचित्त होकर देवी की स्तुति करें। इसके बाद हाथ जोड़कर देवी की इन चरित्रों से स्तुति करें। समय के अभाव होने पर केवल मध्यम चरित से ही स्तुति करें, केवल प्रथम या उत्तम चरित का पाठ न करें। इस प्रकार करने से अनेकों विघ्न आते हैं। प्रदक्षिणा नमस्कार करके हाथ जोड़कर शान्तचित्त से जगद्धात्री से बारम्बार क्षमा माँगे। तिल, घी, खीर की आहुति सप्तशती के प्रत्येक मंत्र या स्तोत्र

भूयो नामपदैर्देवीं पूजयेत्सुसमाहितः ।।३६।।
प्रयतः प्राञ्जलिः प्रह्वः प्रणम्यारोप्य चात्मनि ।
सुचिरं भावयेदीशां चण्डिकां तन्मयो भवेत् ।।३७।।
एवं यः पूजयेद्भक्त्या प्रत्यहं परमेश्वरीम् ।
भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात् ।।३८।।
यो न पूजयते नित्यं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् ।
भस्मीकृत्यास्य पुण्यानि निर्दहेत्परमेश्वरी ।।३९।।
तस्मात्पूजय भूपाल सर्वलोकमहेश्वरीम् ।
यथोक्तेन विधानेन चण्डिकां सुखमाप्स्यसि ।।४०।।

इति वैकृतिकं रहस्यं समाप्तम्

दें। पुनः सावधान होकर नाम और पदों के द्वारा देवी की पूजा करनी चाहिये ।। २९–३६ ।।

पुनः हाथ जोड़कर एकाग्रचित्त हो आत्मा में प्राणों को रोककर विनम्र-भाव से चंडिका देवी का ध्यान बहुत देर तक करें एवं उनमें तन्मय हो जाय। इस प्रकार जो प्रत्येक दिन भक्तिपूर्वक परमेश्वरी की पूजा करता है वह अपनी इच्छानुसार भोगों (सुखों) को प्राप्त करके अन्त में देवी के लोक को प्राप्त करता है ।। ३७–३८ ।।

जो व्यक्ति भक्तों के ऊपर दया करने वाली चंडिका देवी का प्रत्येक दिन पूजा नहीं करता है। देवी उसके पुण्यों को भस्म करके दुःखादि कष्टों में जलाती रहती हैं। इसलिए हे राजन् ! सर्वलोक महेश्वरी चंडिका की पूजा यथोक्त विधि से करो, ऐसा करने से सुख पाओगे ।। ३९–४० ।।

वैकृतिक रहस्य समाप्त

—:०:—

अथ मूर्तिरहस्यम्

ऋषिरुवाच

ॐ नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा ।
स्तुता सा पूजिता भक्त्या वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ॥ १ ॥
कनकोत्तमकान्तिः सा सुकान्तिकनकाम्बरा ।
देवी कनकवर्णाभा कनकोत्तमभूषणा ॥ २ ॥
कमलाङ्कुशपाशाब्जैरलंकृतचतुर्भुजा ।
इन्दिरा कमला लक्ष्मीःसा श्री रुक्माम्बुजासना ॥ ३ ॥
या रक्तदन्तिका नाम देवी प्रोक्ता मयानघ ।
तस्याः स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु सर्वभयापहम् ॥ ४ ॥
रक्ताम्बरा रक्तवर्णा रक्तसर्वाङ्गभूषणा ।
रक्तायुधा रक्तनेत्रा रक्तकेशातिभीषणा ॥ ५ ॥

ऋषि ने कहा—नन्दा नाम की भगवती जो नन्द से उत्पन्न होगी, उस देवी की जो भक्ति पूर्वक पूजा और स्तुति करता है, वह तीनों लोकों को वशीभूत कर लेता हैं। वह देवी कनक के समान उत्तम कान्ति से युक्त हैं। उनका वस्त्र सुवर्ण के समान चमकीले हैं। वह सुवर्ण के समान कान्तिमती हैं तथा सुवर्ण के उत्तम आभूषणों से विभूषित हैं ॥ १–२ ॥

उनकी चारों भुजाएँ कमल, अङ्कुश, पाश और शङ्ख से सुशोभित हैं। उनका नाम इन्दिरा, कमला, लक्ष्मी और रुक्माम्बुजासना (कनककमलासना) है ॥ ३ ॥

हे अनघ ! मैंने रक्तदन्तिका नामकी देवी के विषय में कहा है, उनके भयनाशक स्वरूप को कहता हूँ, सुनो ॥ ४ ॥

रक्तवस्त्रवाली, रक्तवर्णवाली, रक्तवर्ण के सभी आभूषणों से सुशोभित, रक्त आयुधवाली, रक्तनेत्रवाली, अत्यन्त भयङ्कर रक्त केशवाली, रक्त एवं

रक्ततीक्ष्णनखा रक्तदशना रक्तदन्तिका ।
पतिं नारीवानुरक्ता देवीभक्तं भजेज्जनम् ॥ ६ ॥
वसुधेव विशाला सा सुमेरुयुगलस्तनी ।
दीर्घौ लम्बावतिस्थूलौ तावतीवमनोहरौ ॥ ७ ॥
कर्कशावतिकान्तौ तौ सर्वानन्दपयोनिधी ।
भक्तान् सम्पाययेद्देवी सर्वकामदुघौ स्तनौ ॥ ८ ॥
खड्गं पात्रं च मुसलं लाङ्गलं च बिभर्ति सा ।
आख्याता रक्तचामुण्डा देवी योगेश्वरीति च ॥ ९ ॥
अनया व्याप्तमखिलं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
इमां यः पूजयेद्भक्त्या स व्याप्नोति चराचरम् ॥१०॥
भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात् ।
अधीते य इमं नित्यं रक्तदन्त्या वपुःस्तवम् ।
तं सा परिचरेद्देवी पतिं प्रियमिवाङ्गना ॥११॥

तीक्ष्ण नखवाली तथा रक्त दाँतोंवाली देवी पति में अनुरक्त रहनेवाली पतिव्रता स्त्री की तरह अपने भक्तों के वशीभूत रहती हैं। पृथिवी की तरह वह विशाल हैं। सुमेरुपर्वत के समान उनके दोनों स्तन हैं। उनके दोनों स्तन बड़े-बड़े अत्यन्त मोटे, अतिसुन्दर, कठोर, कान्ति से युक्त तथा वे सभी आनन्दरूपी समुद्र हैं। देवी सभी कामनाओं को पूरा करनेवाले दोनों स्तनों को भक्तों को पिलाती हैं॥५–८॥

देवी की चारों भुजाओं में खड्ग, पात्र, हल और मुसल सुशोभित हैं। देवी रक्तचामुण्डा और योगेश्वरी के नाम से विख्यात हैं। स्थावर और जङ्गमरूप सम्पूर्ण संसार में वे व्याप्त हैं। जो लोग भक्तिपूर्वक इनकी पूजा करते हैं वे भी चराचर में व्याप्त हो जाते हैं ॥ ९–१० ॥

जो अपनी इच्छानुसार देवी को भोग चढ़ाकर स्वयं खाता है, वह देवी के सामीप्य को प्राप्त करता है। जो रक्तदन्ता के इस स्तोत्र का नित्यप्रति पाठ करता हैं, देवी उसकी सेवा उसी प्रकार करती हैं जिस प्रकार स्त्री अपने प्रियपत्नी की सेवा करती है ॥ ११ ॥

शाकम्भरी नीलवर्णा नीलोत्पलविलोचना ।
गम्भीरनाभिस्त्रिवलीविभूषिततनूदरी ॥१२॥
सुकर्कशसमोत्तुङ्गवृत्तपीनघनस्तनी ।
मुष्टिं शिलीमुखापूर्णं कमलं कमलालया ॥१३॥
पुष्पपल्लवमूलादिफलाढ्यं शाकसंञ्चयम् ।
काम्यानन्तरसैर्युक्तं क्षुत्तृण्मृत्युभयापहम् ॥१४॥
कार्मुकं च स्फुरत्कान्ति बिभ्रती परमेश्वरी ।
शाकम्भरी शताक्षी सा सैव दुर्गा प्रकीर्तिता ॥१५॥
विशोका दुष्टदमनी शमनी दुरितापदाम् ।
उमा गौरी सती चण्डी कालिका सा च पार्वती ॥१६॥
शाकम्भरी स्तुवन् ध्यायञ्जपन् सम्पूजयन्नमन् ।
अक्षय्यमश्नुते शीघ्रमन्नपानामृतं फलम् ॥१७॥

नीलवर्ण वाली शाकम्भरी देवी हैं। नील कमल के समान उनके नेत्र हैं। गंभीरनाभि हैं तथा त्रिवली से विभूषित उनके सूक्ष्म उदर हैं ॥ १२ ॥

उनसे स्तन कड़े, ऊँचे, गोल, मोटे, एक समान और मांसल हैं। उनके हाथों में कमल विभूषित हैं। जिन पर भौंरे स्थित हैं। एवं कमलासन पर वह शोभा पा रही हैं ॥ १३ ॥

पुष्प, पल्लव, मूल और फल से युक्त, सुन्दर विविध रसों से पूर्ण क्षुधा, तृष्णा, मृत्यु और भय को दूर करनेवाले शाकसमूह तथा चमकते हुए धनुष को धारण करती हैं। परमेश्वरी, शाकम्भरी, शताक्षी और दुर्गा भी उन्हीं को कहते हैं। विशोका, दुष्टदमनी, उमा, गौरी, सती, चण्डी, कालिका और विपत्तियों का शमन करनेवाली पार्वती भी वही हैं ॥ १४–१६ ॥

जो लोग शाकम्भरी का ध्यान, जप, पूजा, स्तुति तथा नमस्कार करते हैं वे शीघ्र ही अन्न, जल तथा अमृतरूप फल को प्राप्त करते हैं ॥ १७ ॥

भीमापि नीलवर्णा सा दंष्ट्रादशनभासुरा ।
विशाललोचना नारी वृत्तपीनपयोधरा ॥१८॥
चन्द्रहासं च डमरुं शिरः पात्रं च बिभ्रती ।
एकवीरा कालरात्रिः सैवोक्ता कामदा स्तुता ॥१९॥
तेजोमण्डलदुर्धर्षा भ्रामरी चित्रकान्तिभृत् ।
चित्रानुलेपना देवी चित्राभरणभूषिता ॥२०॥
चित्रभ्रमरपाणिः सा महामारीति गीयते ।
इत्येता मूर्तयो देव्याः याः ख्याता वसुधाधिप ॥२१॥
जगन्मातुश्चण्डिकायाः कीर्तिताः कामधेनवः ।
इदं रहस्यं परमं न वाच्यं कस्यचित्त्वया ॥२२॥

भीमा देवी का वर्ण नील हैं, उनकी दाढ़ें और दाँत मनोहर हैं, नेत्र विशाल तथा गोल और स्थूल कुच हैं ॥ १८ ॥

चन्द्रहास, डमरू कपाल और ढाल-तलवार वे धारण करती हैं। एकवीरा, कालरात्रि और कामदा नाम से वे ही पुकारी जाती हैं ॥ १९ ॥

भ्रामरी देवी विविध कान्ति को धारण करती हैं। तेजोमण्डल से वे भयानक मालूम पड़ती हैं। अनेकों प्रकार का वे लेप लगाती हैं तथा चित्र विचित्र आभूषणों से वह देवी अलङ्कृत हैं ॥ २० ॥

चित्रभ्रमरपाणि तथा महामारी इन नामों से इनका गान किया जाता है। हे राजन् ! देवी की ये मूर्तियाँ शास्त्रों में वर्णित हैं ॥ २१ ॥

जगन्माता चण्डिका को ही कामधेनु कहा गया है। हे नृप ! यह रहस्य अत्यन्त गुप्त है। किसी से यह कहना नहीं चाहिये ॥ २२ ॥

व्याख्यानं दिव्यमूर्तीनामभीष्टफलदायकम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन देवीं जप निरन्तरम् ॥२३॥
सप्तजन्मार्जितैर्घोरैर्ब्रह्महत्यासमैरपि ।
पाठमात्रेण मन्त्राणां मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥२४॥
देव्या ध्यानं मया ख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं महत् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वकामफलप्रदम् ॥२५॥
एतस्यास्त्वं प्रसादेन सर्वमान्यो भविष्यसि ।
सर्वरूपमयी देवी सर्वं देवीमयं जगत् ।
अतोऽहं विश्वरूपां तां नमामि परमेश्वरीम् ॥२६॥

इति मूर्तिरहस्यं सम्पूर्णम्

—:०:—

दिव्य मूर्तियों का व्याख्यान अभीष्टफल दायक है। अतः अत्यन्त प्रयत्न करके देवी के जप में निरन्तर लगे रहो ॥ २३ ॥

सप्तशती के मंत्रों के पाठमात्र से ही सप्त जन्मों के उपार्जित ब्रह्महत्या के समान घोर पाप से छुटकारा मिल जाता है ॥ २४ ॥

अत्यन्त गुप्त से भी गुप्त देवी के ध्यान का मैंने वर्णन किया। अतः पूर्ण प्रयत्न करके देवी का ध्यान करने से सभी कामनाओं की पूर्ति हो जाती है ॥ २५ ॥

इनकी कृपा से तुम सर्वमान्य हो जाओगे। देवी सर्वरूपमयी हैं, सारा संसार देवीमय है। अतः मैं विश्वरूपा परमेश्वरी को नमस्कार करता हूँ ॥२६॥

मूर्तिरहस्य समाप्त

—०:०—

क्षमा-याचना

अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वरि ॥ १ ॥

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वरि ॥ २ ॥

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि ।
यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ ३ ॥

अपराधशतं कृत्वा जगदम्बेति चोच्चरेत् ।
यां गतिं समवाप्नोति न तां ब्रह्मादयः सुराः ॥ ४ ॥

सापराधोऽस्मि शरणं प्राप्तस्त्वां जगदम्बिके ।
इदानीमनुकम्प्योऽहं यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ५ ॥

हे परमेश्वरि ? रात-दिन मेरे द्वारा हजारों अपराध होते रहते हैं । "मेरा यह दास है" ऐसा समझकर उसे क्षमा करें ॥ १ ॥

मैं आवाहन करना नहीं जानता हूँ, न तो विसर्जन करना ही और न पूजा करना ही जानता हूँ, अतः हे परमेश्वरि ! आप क्षमा करें ॥ २ ॥

हे सुरेश्वरि ! मैंने भक्तिहीन, क्रियाहीन तथा मंत्रहींन जो आपकी पूजा की है, हे देवि ! वह आपकी कृपा से सफल हो ॥ ३ ॥

सैंकड़ों अपराध करके भी 'जगदम्बा' यह उच्चारण करके जिस गति को लोग प्राप्त करते हैं, उसे ब्रह्मा आदि देवगण भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं ॥४॥

जगदम्बिके ! मैं अपराधी हूँ, फिर भी आपकी शरण में आया हूँ, इस समय मैं दया का पात्र हूँ जैसा आप चाहें, वैसा करें । अज्ञानवश या मति-

अज्ञानाद्विस्मृतेर्भ्रान्त्या यन्न्यूनमधिकं कृतम् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥ ६ ॥

कामेश्वरि जगन्मातः सच्चिदानन्दविग्रहे ।
गृहाणार्चामिमां प्रीत्या प्रसीद परमेश्वरि ॥ ७ ॥

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥ ८ ॥

॥ श्रीदुर्गार्पणमस्तु ॥

—:०:—

भ्रम से कम या अधिक जो भी गलतियाँ मैंने की हैं, उसे क्षमा करें । हे देवि ! परमेश्वरि ! आप प्रसन्न होवें ॥ ५–६ ॥

हे कामेश्वरि ! जगन्मातः ! सच्चिदानन्दविग्रहे ! परमेश्वरि ! मेरी इस पूजा को आप प्रेमपूर्वक ग्रहण करें तथा मुझ पर प्रसन्न होवें ॥ ७ ॥

हे देवि आप गुप्त से भी गुप्त चीजों की रक्षा करनेवाली हैं, मेरे किये हुए जप को आप ग्रहण करें और आपकी कृपा से मुझे सिद्धि प्राप्त हो ॥ ८ ॥

—:०:—

श्रीदुर्गामानस-पूजा

उद्यच्चन्दनकुङ्कुमारुणपयोधाराभिराप्लावितां
    नानानर्घ्यमणिप्रवालघटितां दत्तां गृहाणाम्बिके ।
आमृष्टां सुरसुन्दरीभिरभितो हस्ताम्बुजैर्भक्तितो
    मातः सुन्दरि भक्तकल्पलतिके श्रीपादुकामादरात् ॥१॥
देवेन्द्रादिभिरर्चितं सुरगणैरादाय सिंहासनं
    चञ्चत्काञ्चनसंचयाभिरचितं चारुप्रभाभास्वरम् ।
एतच्चम्पककेतकीपरिमलं तैलं महानिर्मलं
    गन्धोद्वर्तनमादरेण तरुणीदत्तं गृहाणाम्बिके ॥२॥
पश्चाद्देवि गृहाण शम्भुगृहिणि श्रीसुन्दरि प्रायशो
    गन्धद्रव्यसमूहनिर्भरतरं धात्रीफलं निर्मलम् ।

उत्तम चन्दन और कुङ्कुम से मिश्रित लाल जल से स्वच्छ किया हुआ, अनेकों प्रकार के बहुमूल्य मणियों और मूंगों से निर्मित, बहुत-सी सुरसुन्दरियों के करकमलों द्वारा भक्तिपूर्वक चारों तरफ सजाया गया यह पादुका आपके चरण कमलों में समर्पित हैं, हे मातः त्रिपुरसुन्दरी ! भक्तों की अभिलाषाओं की पूर्ति करनेवाली कल्पलता स्वरूपे ! आप इसे ग्रहण करें ॥ १ ॥

हे अम्बिके ! युवतियों द्वारा आदरपूर्वक यह सिंहासन आपकी सेवा में अर्पण की जा रही है, इसे आप स्वीकार करें। यह देवेन्द्र आदि के द्वारा पूजित है तथा देवताओं ने इसे लाया है। यह देदीप्यमान सोने के ढेरों से निर्मित तथा सुन्दर प्रभाओं से चमक रहा है। केतकी और चम्पा के सुगन्ध से युक्त अत्यन्त निर्मल तेल और उबटन भी इसमें लगा हुआ है ॥ २ ॥

हे देवि ! शम्भुप्रिये ! श्री सुन्दरि ! इसके बाद आप निर्मल धात्रीफल को ग्रहण करें। इस धात्रीफल में अनेकों सुगन्धित द्रव्य मिश्रित है, इसे अपने

तत्केशान् परिशोध्य कङ्कतिकया मन्दाकिनीस्रोतसि
स्नात्वा प्रोज्ज्वलगन्धकं भवतु हे श्रीसुन्दरि त्वन्मुदे ।।३।।
सुराधिपतिकामिनीकरसरोजनालीधृतां
सचन्दनसकुङ्कुमागुरुभरेण विभ्राजिताम् ।
महापरिमलोज्ज्वलां सरसशुद्धकस्तूरिकां
गृहाण वरदायिनी त्रिपुरसुन्दरि श्रीप्रदे ।। ४ ।।
गन्धर्वामरकिन्नरप्रियतमासन्तानहस्ताम्बुज-
प्रस्तारैर्ध्रियमाणमुत्तमतरं काश्मीरजापिञ्जरम् ।
मातर्भास्वरभानुमण्डललसत्कान्तिप्रदानोज्ज्वलं
चैतन्निर्मलमातनोतु वसनं श्रीसुन्दरि त्वन्मुदम् ।। ५ ।।

बालों में लगाकर कंघी से साफ करके गङ्गा की निर्मल धारा में स्नान करके हे श्री सुन्दरि ! इस दिव्य वस्तु को लगालें; यह आपके आनन्द के लिये है ।।३।।

सभी वरदानों की पूर्ति करनेवाली तथा सम्पत्ति को देनेवाली हे त्रिपुर-सुन्दरि ! देवराज इन्द्र की पत्नी अपने करकमलों में कस्तूरी लेकर खड़ी है, इसे तुम ग्रहण करो। यह अत्यन्त शुद्ध एवं सरस है। इसमें चन्दन, कुङ्कुम तथा अगुरु के मिश्रित हो जाने से इसकी सुन्दरता बढ़ गई है और चमक रही है ।। ४ ।।

हे श्री सुन्दरि ! तुम्हारे आनन्द को बढ़ाने के लिये यह वस्त्र है, इसे तुम ग्रहण करो। यह निर्मल पीताम्बर केसर में रंगा है। इसे गन्धर्व देवता और किन्नर की अतिसुन्दरी स्त्रियाँ अपने करकमलों में लेकर खड़ी हैं। इससे सूर्य-मण्डल की उज्वलकान्ति निकल रही है, जिससे यह अत्यन्त शोभायमान हो रहा है ।। ५ ।।

स्वर्णाकल्पितकुण्डले श्रुतियुगे हस्ताम्बुजे मुद्रिका
मध्ये सारसना नितम्बसफले मञ्जीरमङ्घ्रिद्वये ।
हारो वक्षसि कङ्कणौ क्वणरणत्कारौ करद्वन्द्वके
विन्यस्तं मुकुटं शिरस्यनुदिनं दत्तोन्मदं स्तूयताम् ॥ ६ ॥
ग्रीवायां धृतकान्तिकान्तपटलं ग्रैवेयकं सुन्दरं
सिन्दूरं विलसल्ललाटफलके सौन्दर्यमुद्राधरम् ।
राजत्कज्जलमुज्ज्वलोत्पलदलश्रीमोचने लोचने
तद्दिव्यौषधिनिर्मितं रचयतु श्रीशाम्भवि श्रीप्रदे ॥ ७ ॥
अमन्दतरमन्दरोन्मथितदुग्धसिन्धूद्भवं
निशाकरकरोपमं त्रिपुरसुन्दरि श्रीप्रदे ।
गृहाण मुखमीक्षितुं मुकुरबिम्बमाविद्रुमै-
र्विनिर्मितमघच्छिदे रतिकराम्बुजस्थायिनम् ॥ ८ ॥

हे देवि ! तुम्हारे कानों में स्वर्ण निर्मित कुण्डल, कमर में नितम्बों पर करधनी, करकमलों में अंगूठी तथा दोनों चरणों में मंजीर सुशोभित होवें। वक्षस्थल (गर्दन) में माला शोभा को बढ़ावें। दोनों कलाइयों में कंगन की आवाजें होती रहें। मस्तक पर दिव्य मुकुट तुम्हारी प्रसन्नता को बढ़ावें। ये सभी आभूषण तुम्हारे आनन्द बढ़ाते रहें ॥ ६ ॥

सम्पत्ति को देनेवाली हे शिववल्लभे ! कान्ति-युक्त सुन्दर हँसुली तुम अपने गले में धारण करो और मस्तक पर सिन्दूर की बिन्दी लगा लो। अनेकों दिव्य औषधियों से निर्मित, कमलपत्र की भी शोभा को दबा देनेवाले इस काजल को अपने नेत्रों में लगाकर शोभा बढ़ाओ ॥ ७ ॥

हे त्रिपुरसुन्दरि ! तुम पापों को दूर करनेवाली हो तथा सम्पत्ति को देनेवाली हो। हे देवि ! चन्द्रमा की किरणों के समान चमकने वाले इस सुन्दर दर्पण को तुम ग्रहण करो। यह मंदराचल पर्वत की मथनी से क्षीरसागर को मथकर निकाला गया है। इसके चारों ओर मूंगे लगे हैं। कामदेव की स्त्री रति इसे करकमलों में लेकर खड़ी है। इसे तुम ग्रहण करो ॥ ८ ॥

कस्तूरीद्रवचन्दनागुरुसुधाधाराभिराप्लावितं
चञ्चच्चम्पकपाटलादिसुरभिद्रव्यैः सुगन्धीकृतम् ।
देवस्त्रीगणमस्तकस्थितमहारत्नादिकुम्भव्रजै-
रम्भः शाम्भवि संभ्रमेण विमलं दत्तं गृहाणाम्बिके ॥ ९ ॥
कह्लारोत्पलनागकेसरसरोजाख्यावलीमालती-
मल्लीकैरवकेतकादिकुसुमै रक्ताश्वमारादिभिः ।
पुष्पैर्माल्यभरेण वै सुरभिणा नानारसस्रोतसा
ताम्राम्भोजनिवासिनीं भगवतीं श्रीचण्डिकां पूजये ॥१०॥
मांसीगुग्गुलचन्दनागुरुरजःकर्पूरशैलेयजै-
र्माध्वीकैः सह कुङ्कुमैः सुरचितैः सर्पिर्भिरामिश्रितैः ।
सौरभ्यस्थितिमन्दिरे मणिमये पात्रे भवेत् प्रीतये
धूपोऽयं सुरकामिनीविरचितः श्रीचण्डिके त्वन्मुदे ॥११॥

हे शिवप्रिये ! अम्बिके ! इस निर्मल जल को ग्रहण करो। इसमें चम्पा तथा गुलाल आदि अनेकों सुगन्धित द्रव्य मिले हुए हैं। कस्तूरी रस, चन्दन, अगुरु और अमृत की धारा से भी यह जल युक्त हैं। विविध रत्नों से युक्त कलशों में भरकर सुरसुन्दरियाँ अपने मस्तक पर लेकर गिराने के लिए खड़ी हैं। क्षतः इसे तुम स्वीकार करो ॥ ९ ॥

कल्हार, उत्पल, नागकेसर, कमल, मालती, मल्लिका, कुमुद, केतकी तथा लालकनेर आदि अनेकों पुष्पों एवं पुष्पमालाओं से विभूषित, विविध प्रकार के रसों की धारा से लाल कमल के अन्दर निवास करनेवाली श्री अम्बिका देवी की मैं पूजा करता हूँ ॥ १० ॥

हे चण्डिके ! देवाङ्गनाओं द्वारा विरचित यह धूप तुम्हारी प्रसन्नता के लिए हो। यह मधु, कुंकुम तथा घृत से मिश्रित जटामासी, गुग्गुल, चन्दन, अगुरु चूर्ण, कर्पूर, शिलाजीत से सुगन्धित के एकमात्र स्थान मणिमयपात्र में है जो तुम्हारे हर्ष बढ़ाने के लिये है ॥ ११ ॥

घृतद्रवपरिस्फुरद्रुचिररत्नयष्ट्यान्वितो

महातिमिरनाशनः सुरनितम्बिनीनिर्मितः ।

सुवर्णचषकस्थितः सघनसारवर्त्यान्वित-

स्तव त्रिपुरसुन्दरि स्फुरति देवि दीपो मुदे ॥१२॥

जातीसौरभनिर्भरं रुचिकरं शाल्योदनं निर्मलं

युक्तं हिङ्गुमरीचजीरसुरभिद्रव्यान्वितैर्व्यञ्जनैः ।

पक्वान्नेन सपायसेन मधुना दध्याज्यसंमिश्रितं

नैवेद्यं सुरकामिनीविरचितं श्रीचण्डिके त्वन्मुदे ॥१३॥

लवङ्गकलिकोज्ज्वलं बहुलनागवल्लीदलं

सजातिफलकोमलं सघनसारपूगीफलम् ।

हे त्रिपुरसुन्दरि देवि ! देवाङ्गनाओं के द्वारा निर्मित सुवर्णपात्र में स्थित बत्ती से युक्त होकर जलता हुआ यह दीप तुम्हारे आनन्द के लिये हो । यह द्रवीभूत घी से जलता हुआ सुन्दर रत्न के डण्डे से युक्त और महान् अन्धकार का नाशक हैं ॥ १२ ॥

हे चण्डिके ! अत्यन्त रुचिकर और चमेली के फूल के समान सुगन्धित अगहनी चावल से सुरसुन्दरियों द्वारा बनाया गया भात, हींग, मिर्च, जीरा आदि सुगन्धित द्रव्यों से तैयार किया गया नाना प्रकार का व्यञ्जन एवं पकवान, खीर, मधु, दही तथा घी से मिश्रित यह नैवेद्य तुम्हारी प्रसन्नता के लिए हो ॥ १३ ॥

मा ! यह रत्नमय पात्र में रक्खा हुआ ताम्बूल है, इसे अपने मुख में ग्रहण करो । इसमें कोमल जावित्री, कर्पूर (पिटरमिण्ट) तथा सुपारी डाला गया है । इसके बीरे लौंग चुभोकर तैयार किये गये हैं । यह मधुमय सुधा

सुधामधुरिमाकुलं रुचिररत्नपात्रस्थितं
गृहाण मुखपङ्कजे स्फुरितमम्ब ताम्बूलकम् ।।१४।।

शरत्प्रभवचन्द्रमःस्फुरितचन्द्रिकासुन्दरं
गलत्सुरतरङ्गिणीललितमौक्तिकाडम्बरम् ।
गृहाण नवकाञ्चनप्रभवदण्डखण्डोज्ज्वलं
महात्रिपुरसुन्दरि प्रकटमातपत्रं महत् ।।१५।।

मातस्त्वन्मुदमातनोतु सुभगस्त्रीभिः सदान्दोलितं
शुभ्रं चामरमिन्दुकुन्दसदृशं प्रस्वेददुःखापहम् ।
सद्योऽगस्त्यवसिष्ठनारदशुकव्यासादिवाल्मीकिभिः
स्वे चित्ते क्रियमाण एव कुरुतां शर्माणि वेदध्वनिः ।।१६।।

(चूर्ण) से युक्त, अनेक पान के पत्तों से निर्मित है। अतः यह अत्यन्त ही सुन्दर है ।। १४ ।।

मा ! महात्रिपुरसुन्दरि ! तुम्हारे लिए यह सुवर्णमय दण्डा से युक्त होने के कारण अत्यन्त सुन्दर विशाल छत्र प्रस्तुत है, इसे तुम ग्रहण करो। यह शरत्कालीन चन्द्रमा की चाँदनी की तरह सुन्दर है। इसमें ऊपर से नीचे की ओर गिरती हुई गंगा की धारा की तरह मोतियों की झालरें लगी हुई हैं।।१५।।

हे देवि ! सुन्दर स्त्रियों के द्वारा सदा डुलाए जाने वाले चँवर तुम्हारे आनन्द को बढ़ावें। यह कुन्द तथा चन्द्रमा के समान शुभ्र तथा पसीने के कष्ट से मुक्त करनेवाला है। इसके अतिरिक्त महर्षि अगस्त्य, वशिष्ठ, नारद, शुक्र, व्यास और वाल्मीकि मुनि अपने-अपने मन में जो वेदध्वनि करते हैं, वह भी तुम्हारे हर्ष को बढ़ावें ।। १६ ।।

स्वर्गाङ्गणे वेणुमृदङ्गशङ्ख-
भेरीनिनादैरुपगीयमाना ।
कोलाहलैराकलिता तवास्तु
विद्याधरी नृत्यकला सुखाय ।। १७ ।।
देवि भक्तिरसभावितवृत्ते
प्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते ।
तत्र लौल्यमपि सत्फलमेकं
जन्मकोटिभिरपीह न लभ्यम् ।। १८ ।।
एतैः षोडशभिः पद्यैरुपचारोपकल्पितैः ।
यः परां देवतां स्तौति स तेषां फलमाप्नुयात् ।। १९ ।।

इति दुर्गामानसपूजा समाप्ता

स्वर्ग के प्राङ्गण में वेणु, मृदङ्ग, शङ्ख और भेरी के शब्दों से गाये जाने पर कोलाहल से युक्त विद्याधरी की नृत्यकला तुम्हारे सुख के लिये हो ।। १७ ।।

हे देवि ! मेरे इस स्तोत्र में कुछ भी यदि भक्तिभाव हो तो प्रसन्न हो जाओ । तुम्हारी भक्ति भावना के लिए ही मेरा मन व्याकुल है । वह तुम्हारी कृपा के बिना करोड़ों बार जन्म लेने पर भी सुलभ नहीं हो सकता है ।। १८ ।।

इन सोलह पद्यों के द्वारा तथा विविध प्रकार के उपचारों से जो महामाया परमेश्वरी की स्तुति करता है उसे सभी प्रकार के फल मिल जाते हैं ।। १९ ।।

दुर्गामानसपूजा समाप्त

अथ दुर्गाद्वात्रिंशन्नाममाला

दुर्गा दुर्गार्तिशमनी दुर्गापद्विनिवारिणी ।
दुर्गमच्छेदिनी दुर्गसाधिनी दुर्गनाशिनी ॥
दुर्गतोद्धारिणी दुर्गनिहन्त्री दुर्गमापहा ।
दुर्गमज्ञानदा दुर्गदैत्यलोकदवानला ॥
दुर्गमा दुर्गमालोका दुर्गमात्मस्वरूपिणी ।
दुर्गमार्गप्रदा दुर्गमविद्या दुर्गमाश्रिता ॥
दुर्गमज्ञानसंस्थाना दुर्गमध्यानभासिनी ।
दुर्गमोहा दुर्गमगा दुर्गमार्थस्वरूपिणी ॥
दुर्गमासुरसंहन्त्री दुर्गमायुधधारिणी ।
दुर्गमाङ्गी दुर्गमता दुर्गम्या दुर्गमेश्वरी ॥
दुर्गभीमा दुर्गभामा दुर्गभा दुर्गदारिणी ।
नामावलिमिमां यस्तु दुर्गाया मम मानवः ॥
पठेत् सर्वभयान्मुक्तो भविष्यति न संशयः ।

इति दुर्गाद्वात्रिंशन्नाममाला समाप्ता

—:०:—

अथ देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः ।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम् ॥ १ ॥
विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत् ।
तदेतत् क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे
कुपुत्रो जायते क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ २ ॥
पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः ।

हे माँ ! मैं न मन्त्र जानता हूँ, न यन्त्र जानता हूँ और न तो स्तुति ही जानता हूँ । मैं तेरा आवाहन, ध्यान, पूजन और मुद्रा भी नहीं जानता हूँ । एवं रोना भी नहीं जानता हूँ । किन्तु इतना तो अवश्य जानता हूँ कि तेरा अनुसरण करने से सभी क्लेशों का विनाश हो जाता है ॥ १ ॥

तेरे पूजन में अनभिज्ञ, धन के अभाव तथा आलस्य के कारण विधिवत पूजा करने में असमर्थ होने से जो तुम्हारे चरणों से मैं दूर रहा हूँ, हे माँ ! यह जो मेरा अपराध है, वह क्षमा करने योग्य है । तुम सबों का उद्धार करनेवाली हो । हे शिवे ! पुत्र कुपुत्र हो सकता है किन्तु माता कभी भी कुमाता नहीं होती हैं ॥ २ ॥

हे जननि ! पृथ्वी पर बहुत से तुम्हारे सरल पुत्र हैं, उन सबों में मैं हीं एक चंचल तुम्हारा पुत्र हूँ, जिसको तुमने त्याग दिया है । हे शिवे ! यह

मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ ३ ॥
जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया ।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ ४ ॥
परित्यक्ता देवा विविधविधसेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि ।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ॥ ५ ॥
श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटिकनकैः ।

त्याग ना तुम्हारे लिए उचित नहीं है, क्योंकि पुत्र कुपुत्र हो सकता है किन्तु माता कभी भी कुमाता नहीं हो सकती हैं ॥ ३ ॥

हे जगज्जननि ! हे माँ ! मैंने तुम्हारे चरणों की कभी भी सेवा नहीं की, न तो धन ही अर्पण किया । हे देवि ! फिर भी तुमने इतना अधिक जो मेरे ऊपर कृपा की है, वह ठीक ही है, क्योंकि पुत्र कुपुत्र हो सकता है, किन्तु माता कभी भी कुमाता नहीं हो सकती है ॥ ४ ॥

अनेकों प्रकार की सेवा से व्याकुल होकर मैंने सभी देवों को परित्याग कर दिया हूँ । इस समय मेरी अवस्था पचासी वर्ष से भी अधिक होने जा रही है । हे माँ ! इस समय यदि तेरी कृपा हमारे ऊपर नहीं होगी, तो हे गणेश-जननि ! आश्रयहीन होकर मैं किस की शरण में जाऊँगा ॥ ५ ॥

हे अपर्णे ! तुम्हारे मंत्र का एक अक्षर भी कान में पड़ जाने का परिणाम यह होता है कि बकवादी लोग मधुर भाषण करनेवाले प्रवक्ता की तरह हो जाते हैं; धनहीन व्यक्ति करोड़ों सुवर्ण मुद्राओं से युक्त होकर भयरहित विचरण

तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं
जनः को जानीते जननि जननीयं जपविधौ ॥ ६ ॥
चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः ।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ॥ ७ ॥
न मोक्षस्याकाङ्क्षा भवविभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः ।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिवशिवभवानीति जपतः ॥ ८ ॥
नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः
किं रूक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः ।

करने लगते हैं। हे जननि ! जपविधि के साथ जप करने से क्या फल होगा ? यह कौन जान सकता है। अर्थात् यह जानना असम्भव है ॥ ६ ॥

हे शिवप्रिये ! चिता की भस्मों का लेप करनेवाला, विष का पान करनेवाला, दिगम्बर, जटाधारी, कंठ में सर्पो की माला धारण करनेवाला, पशुओं का पति, कपाली (भिक्षाटन के लिए हाथ में खप्पर धारण करनेवाला) शंकरजी संसार के ईश्वर का जो पद धारण करता है, हे देवि ! यह तुम्हारे साथ प्राणि ग्रहण की प्रथा का ही परिणाम है ॥ ७ ॥

हे चन्द्रमुखि ! मुझको न मोक्ष की इच्छा है, न तो सांसारिक ऐश्वर्य की इच्छा है, न तो विज्ञान की अपेक्षा है और न पुनः सुख की ही इच्छा है। अतः हे जननि ! मैं केवल यही वरदान माँगता हूँ कि मृडानीं, रुद्राणीं, शिव-शिव भवानी इतना जप करते-करते मेरा जीवन बीत जाय ॥ ८ ॥

हे श्यामे ! मेरे द्वारा न विधानपूर्वक अनेकों उपचारों से, न अत्यधिक चिन्तन से और न तो वाणी द्वारा ही तुम्हारी पूजा की गई, फिर भी हे

श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे
धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव ॥ ९ ॥

आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि ।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥१०॥

जगदम्ब विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि ।
अपराधपरम्परा न हि माता समुपेक्षते सुतम् ॥११॥

मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि ।
एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु ॥१२॥

इति श्रीशङ्कराचार्यविरचितं देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

—:०:—

जननि ! मुझ अनाथ पर यदि तेरी कृपा है तो यह तेरे लिए उचित ही है ॥९॥

हे दुर्गे ! हे दया के सागरि ! देवि विपत्तियों में मग्न मैं तेरा स्मरण करता हूँ । इस मेरी शठता पर ध्यान मत देना, क्योंकि भूख और प्यास से व्याकुल बच्चे ही मा का स्मरण करते हैं ॥ १० ॥

हे जगदम्ब ! यदि मेरे ऊपर तेरी पूर्ण कृपा है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? क्योंकि बारम्बार अपराध करने पर भी माता अपने पुत्र की उपेक्षा नहीं करती ॥ ११ ॥

हे महादेवि ! जिस प्रकार मेरे समान कोई दूसरा पापी नहीं है, उसी प्रकार तेरे समान दूसरी पापों का नाश करनेवाली भी नहीं है । ऐसा समझकर जैसा उचित समझो वैसा करो ॥ १२ ॥

देव्यापराधक्षमापनस्तोत्र समाप्त

—:०:—

अथ सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रम्

शिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ।
येन मन्त्रप्रभावेण चण्डीजापः शुभो भवेद् ॥ १ ॥

न कवचं नार्गलास्तोत्रं कीलकं न रहस्यकम् ।
न सूक्तं नापि ध्यानं च न न्यासो न च वार्चनम् ॥ २ ॥

कुञ्जिकापाठमात्रेण दुर्गापाठफलं लभेत् ।
अति गुह्यतरं देवि देवानामपि दुर्लभम् ॥ ३ ॥

गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति ।
मारणं मोहनं वश्यं स्तम्भनोच्चाटनादिकम् ।
पाठमात्रेण संसिद्ध्येत् कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ॥ ४ ॥

अथ मन्त्रः

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥ ॐ ग्लौं हुं क्लीं जूं सः ज्वालय ज्वालय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ज्वल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा ॥ इति मन्त्रः ॥ नमस्ते रुद्ररूपिण्यै नमस्ते मधुमर्दिनि ॥ नमः कैटभहारिण्यै नमस्ते महिषार्दिनि ॥ १ ॥ नमस्ते शुम्भहन्त्र्यै च निशुम्भासुरघातिनि ॥ २ ॥ जाग्रतं हि महादेवि जपं सिद्धं कुरुष्व मे ॥ ऐंकारी सृष्टिरूपायै ह्रींकारी प्रतिपालिका ॥ ३ ॥ क्लींकारी कामरूपिण्यै बीजरूपे नमोऽस्तु ते ॥ चामुण्डा चण्डघाती च यैकारी वरदायिनी ॥ ४ ॥ विच्चे चाभयदा नित्यं नमस्ते मन्त्ररूपिणि ॥ ५ ॥ धां धीं धूं धूर्जटेः पत्नी वां वीं वूं वागधीश्वरी । क्रां क्रीं क्रूं कालिका देवि शां शीं शूं मे शुभं कुरु ॥ ६ ॥ हुं हुं हुंकार-

रूपिण्यै जं जं जं जम्भनादिनि ।। भ्रां भ्रीं भ्रूं भैरवी भद्रे भवान्यै ते नमो नमः ।। ७ ।। अं कं चं टं तं पं यं सं वीं दुं ऐं वीं हं क्षं धिजाग्रं धिजाग्रं त्रोटय त्रोटय दीप्तं कुरु कुरु स्वाहा ।। पां पीं पूं पार्वती पूर्णा खां खीं खूं खेचरी तथा ।। ८ ।। सां सीं सूं सप्तशती देव्या मन्त्रसिद्धिं कुरुष्व मे ।। इदं तु कुञ्जिकास्तोत्रं मन्त्रजागर्तिहेतवे ।। अभक्तेनैव दातव्यं गोपितं रक्ष पार्वति ।। यस्तु कुञ्जिकया देवि हीनां सप्तशतीं पठेत् । न तस्य जायते सिद्धिररण्ये रोदनं यथा ।।

इति श्रीरुद्रयामले गौरीतन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे
सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

अथ श्रीदुर्गापदुद्धारस्तोत्रम्

नमस्ते शरण्ये शिवे सानुकम्पे नमस्ते जगद्व्यापिके विश्वरूपे। नमस्ते जगद्वन्द्यपादारविन्दे नमस्ते जगत्तारिणी त्राहि दुर्गे ॥ १ ॥

नमस्ते जगच्चिन्त्यमानस्वरूपे नमस्ते महायोगिनी ज्ञानरूपे। नमस्ते नमस्ते सदानन्दरूपे नमस्ते० ॥ २ ॥

अनाथस्य दीनस्य तृष्णातुरस्य भयार्तस्य भीतस्य बद्धस्य जन्तोः। त्वमेका गतिर्देवि निस्तारकर्त्री नमस्ते० ॥ ३ ॥

अरण्ये रणे दारुणे शत्रुमध्येऽनले सागरे प्रान्तरे राजगेहे। त्वमेका गतिर्देवि निस्तारनौका नमस्ते० ॥ ४ ॥

हे देवि ! तुम शिवस्वरूपा हो, दयामयी हो। शरण में जाने योग्य तुम्हें नमस्कार है। सम्पूर्ण संसार में व्याप्त विश्वरूपवाली दुर्गे ! तुम्हें नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्व के द्वारा पूजित चरणकमल वाली देवी ! तुम्हें नमस्कार है। संसार का उद्धार करनेवाली ! तुम्हें नमस्कार है। हे दुर्गे ! तुम मेरी रक्षा करो। सम्पूर्ण संसार के द्वारा ध्यान के योग्य स्वरूपवाली तुम्हें नमस्कार है। ज्ञानस्वरूपा महायोगिनी देवि ! तुम्हें नमस्कार है। सत् और आनन्दरूपवाली दुर्गे ! तुम्हे अनेकों वार नमस्कार है ॥ २ ॥

अनाथ, दीन, तृष्णा से व्याकुल, भयभीत तथा भय से बँधे हुए प्राणियों के तुम्ही एक मात्र गति हो। संसार सागर से पार करनेवाली हे देवि ! तुम्हें नमस्कार है ॥ ३ ॥

जंगल, भयंकर युद्धस्थल, शत्रुओं के मध्य, अग्नि, सागर, पर्वत तथा राजभवन में पार करतेवाली नौकास्वरूपिणी हो। तुम्हीं एकमात्र शरण हो। हे देवि ! तुम्हें अनेकों वार नमस्कार है ॥ ४ ॥

अपारे महादुस्तरेऽत्यन्तघोरे विपत्सागरे मज्जतां देह-भाजाम् । त्वमेका गतिर्देवि निस्तारहेतुर्नमस्ते० ॥ ५ ॥

नमश्चण्डिके चण्डदुर्दण्डलीला समुत्खण्डिताखण्डिताशेष-शत्रो । त्वमेका गतिर्देवि निस्तारबीजं नमस्ते० ॥ ६ ॥

त्वमेवाघभावाधृतासत्यवादिनि जाताजिता क्रोधनात् क्रोध-निष्ठा । इडापिङ्गला त्वं सुषुम्णा च नाडी नमस्ते० ॥ ७ ॥

नमो देवि दुर्गे शिवे भीमनादे सरस्वत्यरुन्धत्यमोघस्वरूपे । विभूतिः शची कालरात्रिः सती त्वं नमस्ते० ॥ ८ ॥

शरणमसि सुराणां सिद्धविद्याधराणां मुनिमनुजपशूनां

अगम तथा अति दुस्तर, अत्यन्त भयानक, आपत्तिरूपी समुद्र में डुबा हुआ शरीरधारी जीवों का तुम निस्तार करनेवाली हो । तुम्हीं एकमात्र शरण हो । हे देवि तुम्हें अनेकों बार नमस्कार है ॥ ५ ॥

हे चण्डिके ! तुम्हें नमस्कार है । अति भयानक एवं दुर्दण्डलीला के द्वारा सभी प्रबल शत्रुओं का विनाश करनेवाली एवं सबों के निस्तार के कारणरूप हे देवि ! तुम्हीं एकमात्र शरण हो । तुम्हें अनेकों बार नमस्कार है ॥ ६ ॥

हे देवि ? तुम्हीं पापरूप से असत्यवादियों के हृदय में स्थित रहती हो । क्रोध के कारण क्रोध रूप में विद्यमान रहकर भी अजिता (नहीं जानने योग्य) हो । इडा, पिङ्गला तथा सुपुम्ना नाडी के रूप में तुम्हीं स्थित हो । हे देवि ! तुम्हें अनेकों बार नमस्कार है ॥ ७ ॥

दुर्गा, शिवा, भयंकर शब्द करनेवाली सरस्वती, अरुन्धती तथा अमोघ स्वरूपवाली हे देवि ! तुम्हें नमस्कार है । विभूति, शची, कालरात्रि तथा सतीस्वरूपिणी देवि ! तुम्हें अनेकों बार नमस्कार है ॥ ८ ॥

देवों, सिद्धविद्याधरों, मुनियों, मनुष्यों, पशुओं तथा डाकुओं से भयभीत लोगों की तुम्हीं एकमात्र शरण हो । अपराधियों के रूप में राजाओं के घर

दस्युभिस्त्रासितानाम् । नृपतिगृहगतानां व्याधिभिः पीडितानां
त्वमसि शरणमेका देवि दुर्गे प्रसीद ॥ ९ ॥

इदं स्तोत्रं मया प्रोक्तमापदुद्धारहेतुकम् ।
त्रिसन्ध्यमेकसन्ध्यं वा पठनाद् घोरसंकटात् ॥ १० ॥
मुच्यते नात्र सन्देहो भुवि स्वर्गे रसातले ।
सर्वं वा श्लोकमेकं वा यः पठेद् भक्तिमान् सदा ॥ ११ ॥
स सर्वं दुष्कृतं त्यक्त्वा प्राप्नोति परमं पदम् ।
पठनादस्य देवेशि किं न सिध्यति भूतले ॥ १२ ॥
स्तवराजमिमं देवि संक्षेपात्कथितं मया ॥ १३ ॥

इति दुर्गापदुद्धारस्तोत्रम्

—:०:—

गये हुए और रोग से पीड़ित मनुष्यों का एकमात्र शरण तुम्हीं हो। हे दुर्गे देवि ! प्रसन्न होओ ॥ ९ ॥

आपत्ति से उद्धार करनेवाले स्तोत्र को मैंने कहा। तीनों समय अथवा एक समय पृथिवी, स्वर्ग या पाताल में पाठ करने से भयानक संकटरूपी बन्धन से मनुष्य विमुक्त हो जाता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। सभी श्लोकों या एक श्लोक को जो भक्त सदा पाठ करता है वह सभी प्रकार के दुष्कर्मों को परित्याग कर परमपद प्राप्त करता है। हे देवेशि ! इस स्तोत्र का पाठ करने से पृथ्वी पर किस चीज की सिद्धि नहीं होती है अर्थात् सभी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं ॥ १०–१२ ॥

हे देवि ! इस स्तवराज को मैंने संक्षेप से कहा है ॥ १३ ॥

—:०:—

अथ दुर्गादलम्

अथ चण्डिकादलप्रारम्भः । ॐ नमश्चण्डिकायै । अथातः संप्रवक्ष्यामि चण्डिकादलमुत्तमम् । मन्त्रं विना तु जप्त्वा वै तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ।। १ ।। ॐ नमो भगवती जय जय चामुण्डे चण्डेश्वरी चण्डायुधे चण्डरूपधारिणी ताण्डवप्रिये कुण्डलीभूत-दिङ्नागमंडलीभूत-गंडस्थिते समस्तजगदण्डसंहार-कारिणी परे अनन्तानन्तरूपे शिवे नरमालालंकृतवक्षः-स्थले महाकपालभालोज्ज्वलन्मणिमुकुटचूडावतंसचन्द्रखण्डे महा-भीषणे देवी महामाये षोडशकलापरिवृतोल्लसिते महादेवासुर-समरनिघृतरुधिराद्रिक्रुंतलिम्पिततनुकमलोद्भासिते करे सम्पूर्ण-रुधिरशोभितमहाकपाले सूर्यभासिनी दृढतराबद्धमनु ।। ११४ ।।

धरशोभितमहाकपोले चन्द्रभासिनि दृढतराबद्धमहानादि-सहितहेमशाश्विदाशोज्वलीकृतमहामण्डिते महाशम्भुरूपे महा-व्याघ्रचर्माम्बरधरे महासर्पयज्ञोपवीतिनी महाश्मशानभस्मोद्धू-लितसर्वगात्रे काली कंकाली महाकाली कालाग्निरुद्रकाली कालसंकर्षिणी ।। २०० ।।

कालरात्रि नमो भक्षिणी नानाभूतप्रेतपिशाचगणसहस्र-सञ्चारिणी नानाव्याधिप्रशमनी सर्वदुष्टप्रथमिनी सर्वदारिद्र्य-नाशिनी युगे युगे स्वादितमांसखण्डे गायत्री विक्षिप्तकला कलायमानकंकालधारिणी मधुरमांसरुधिरसन्ततविलासिनी सकलसुरासुरगन्धर्वविद्याधरकिन्नरकिम्पुरुषादिभिः स्तूयमाने सर्वमन्त्राधिभूताधिकारिणी सर्वशक्तिप्रधाने सकललोकपावनी सकलदुरितप्रक्षालिनी सकललोकजननी ब्राह्मी माहेश्वरी

कौमारी वैष्णवी वाराही नारसिंहीन्द्राणी चामुण्डे । महालक्ष्मी-स्वरूपे महाविद्ये योगिनी ॥ ५०० ॥

योगीश्वरी चण्डिके महामाये विश्वरूपिणी सर्वाभरणभूषिते अतल-वितल-सुतल-महातल-रसातल-पातालादि चतुर्दशभुवनैक-नाथे, ॐ नमः पितामहाय ॐ नमो नारायण ॐ नमः शिवाय इति सकललोकैकजात्यमाने ब्रह्मविष्णुमहेश्वरे दण्डक-मण्डलुधारिणी शङ्खचक्रगदाधारिणी परशुशूलपिनाककण्टकधा-रिणी सरस्वती पद्मालये सावित्री सकलजगत्स्वरूपिणी महा-क्रूरे प्रसन्नरूपधारिणी सर्वमङ्गलप्रिये महासुरमर्दिनी कात्यायनी दुर्गा निद्रारूपिणी शरचापशूलकपालकरवालखड्गडमरुकाङ्कुशगदा-परशुतोमरभिन्दिपालभुशुंडीमुसलमुद्गरपरिघायुधदोर्दण्डी सहस्र-चन्द्रार्कवह्निनयनेन्द्राग्नियमनिर्ऋतिवरुणवायुकुबेरईशानप्रधान-शक्तिभूते सप्तद्वीपसमुद्रोपर्युपरिमहाभ्यासेश्वरी महासचराचर-प्रपञ्चतनूदरे महाप्रधाने महाकैलासपर्वतोद्याने वनक्षेत्रनदीतीर-देवताद्यायतनालङ्कृते मेदिनीनाथे वसिष्ठवामदेवादिमुनिगणस्पृ-ष्टचरणारविन्दे द्विचत्वारिंशद्वर्णमहितो पर्यास्थानेवेदवेदाङ्गानेक-शास्त्रभूते शब्दब्रह्ममये मातृकादेवी शिरस्सन् रक्ष रक्ष मम शत्रून् हुङ्कारेण नाशय नाशय भूतप्रेतपिशाचानुच्चाटयोच्चाटय वशीकुरु वशीकुरु क्षोभय क्षोभय संक्रामय विदारय विदारय दावय सकलचोरान्मूर्ध्नि स्फोटय स्फोटय सकलशत्रून् शीघ्रं मारय मारय हुं फट् स्वाहा ॥ १००० ॥

इति रुद्रयामलतन्त्रो सप्तशतीदलं सम्पूर्णम् ॥

श्रीदुर्गासप्तशतीहृदयम्

अथ सप्तशत्यङ्गहृदयारम्भः ।। अस्य श्रीचंडिकाहृदयमालामन्त्रस्य त्रिगुणात्मऋषिः विराट्छन्दः श्रीमहाचण्डी देवता ऐं बीजम् ह्रीं शक्तिः क्लीं कीलकम् जपे विनियोगः । हृदयादिषडङ्गन्यासः । ब्रह्मोवाच । अथातः संप्रवक्ष्यामि विस्तरेण यथायथम् । चण्डिकाहृदयं गुह्यं शृणुष्वैकाग्रमानसः । ॐ ह्रां ह्रीं हुं ऐं श्रीं श्रीं ॐ नमो भगवति जय जय ज्वालामालिनी चामुण्डे चण्डिके त्रिदशमणिमुकुटकोटिसद्घटितचरणारविन्दे गायत्रीसावित्रीसरस्वती-महाबाणकृताभरणे भैरवरूपधारिणी प्रकटसुदंष्ट्रोग्रवदने घोरघोराननेे नयनोज्ज्वलज्वालासहस्रपरिवृते महाट्टहासधवलीकृतदिगन्तरे दिवाकरसहस्रपरिवृते कामरूपधारिणी महामणिद्योतितशशिप्रभासितसकलदिगन्तरे सर्वायुधपरिपूर्णे कपालहस्ते गजाजिनोत्तरीण्ये भूतवेतालपरिवृते प्रकम्पितचराचरे मधुकैटभमहिषा–सुर–धूम्रलोचन–चण्डमुण्ड–रक्तबीज-निशुम्भ-शुम्भादिदैत्यनिष्कण्टकीकालरात्रि महामाये शिवे नित्ये त्रिभुवनधराधरे वामे ज्येष्ठे रौद्रि अम्बिके काली कलविकारिणी बलप्रमथिनी सर्वभूतदमनी मनोन्मयी ब्राह्मी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराही नारसिंहीन्द्राणी चामुण्डे माहेन्द्री शिवदूती महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती-त्रिस्थिते नादवन्ध्यास्थिते महोग्रविषोरगफणाफणिमुकुटरत्नज्वालावले महाहारभूषितपादबाहुफणोत्तमाङ्गे मालाकुले नवरत्ननिधिकोशे शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धाकाशवाक्यानि पादपायूपस्थश्रोतत्वक्चक्षुजिह्वाघ्राणमध्यस्थिते चक्षुष्मती महाविषोपविघ्ने महाज्वालानले महाभैरवस्तुते सर्वसिद्धिप्रदे निर्मले निष्कले नाभ्याधरादिसंस्थिते परं ज्योतिःस्वरूपे

सोमसूर्याग्निमंडलपरिवृते ऊर्ध्वविशुद्धांतकप्रभे विनिकृतब्रह्मविष्णु-रुद्रविनिर्गते परे अपरे प्रभाभासितचरे पञ्चविंशतितत्त्वावबोधिनी महाशून्यागमे पतिबन्धुसंस्थिते अधोर्ध्वसंस्थिते भुक्तिमुक्तिफल-प्रदे निर्गुणे ऋग्यजुःसामाथर्वणपठिते एह्येहि भगवति स्थूल-सूक्ष्मपरहुंकारनिरूपिते परमकारुणिके महाज्वालामणिमहिषो-परि गन्धर्वविद्याधरश्रिते भुजङ्गमहिसे जम्भिणी मोहिनी क्षोभिणी वशीकरणी जम्भे मोहे क्षोभे वशीकरणे बीजपञ्चकमध्यस्थिते महायोगिनी महाज्वरक्षेत्रनायिके यक्षराक्षसमहाज्वरमहाविषोप-विघ्ने गन्धर्वविद्याधराराधिते ओङ्कारश्रीङ्कारहस्ते ॐ क्रों अग्नि-पात्रे द्रां शोषय शोषय प्लूं प्लावय प्लावय क्लीं श्रीं सुकुमारय सुकुमारय प्लुं सतैशय सतैशय सों उन्मादय उन्मादय ग्लौं मोहय हीं आं हीं आवेशय आवेशय श्रीं प्रवेशय प्रवेशय स्त्रीं कर्षय हुं हुं हुं फट् अतीतानागतवर्तमानन्दिशं विदिशं ऐं हीं श्रीं श्रावय श्रावय सर्वं प्रवेशय प्रवेशय त्रैलोक्यवशवर्ति ऐ-ङ्कारचित्तं वशीकुरुष्व एं हीं श्रीं स्त्रीं द्रावय द्रावय सर्वं प्रवेशय प्रवेशय ऐङ्कारचित्तं वशङ्कुरु ऐं हीं श्रीं हीं हीं हुं हैं हौं हः ऐं हीं श्रीं स्त्रां स्त्रीं स्त्रं स्त्रैं स्त्रौं स्त्रः मम सर्वकार्याणि साधय साधय हुं फट् स्वाहा ॥ १०९०-१८ ॥

एकविंशतिवारन्तु पठेदेवञ्जपेत्तु यः । राजद्वारे श्मशाने च विदेशे शत्रुमंडले ॥ १ ॥ भूताग्निरणमध्ये च सर्वकार्याणि साधयेत् । चण्डिका हृदयङ्गुह्यं त्रिसन्ध्यं कीर्तयेद् द्विजः ॥ २॥ सर्वकामप्रदं नृणां भुक्तिं मुक्तिञ्च विन्दति ॥ ३ ॥

इति रुद्रयामले दुर्गासप्तशतीहृदयं सम्पूर्णम् ।

दुर्गा देवी की आरती

जय अम्वे गौरी जय मंगलमूर्ती (मैया जय आनन्द करणी)।
तुमको निशिदिन ध्यावत हरि ब्रह्मा शिव री ।। १ ।।
माँग सिन्दूर विराजत टीको मृगमदको।
उज्वल से दोउ नैना चन्द्रवचन नीको ।। २ ।। जय अम्वे० ।।
कनक समान कलेवर रक्तांवर राजै।
रक्त पुष्प गलमाला कण्ठन पर साजै ।। ३ ।। जय अम्वे० ।।
केहरि वाहन राजत खड्ग खप्पर धारी।
सुर नर मुनि जन सेवत तिनके दुखहारी ।। ४ ।। जय अम्वे० ।।
कानन कुण्डल शोभित नासाग्रे मोती।
कोटिकचन्द्र दिवाकर राजत समज्योती ।। ५ ।। जय अम्वे० ।।
शुम्भ - निशुम्भ विदारे महिषासुरघाती।
धूम्र विलोचन नैना निशि दिन मदमाती ।। ६ ।। जय अम्वे० ।।
चण्डमुण्ड संहारे, शोणित बीज हरे।
मधु कैटभ दोउ मारे सुर भय हीन करे ।। ७ ।। जय अम्वे० ।।
ब्रह्माणी, रुद्राणी, तुम कमलारानी।
आगम-निगम-वखानी, तुम शिव-पटरानी ।। ८ ।। जय अम्वे० ।।
चौसठ योगिनि गावत नृत्य करत भैरुं।
बाजत ताल मृदंगा औ वाजत डमरू ।। ९ ।। जय अम्वे० ।।
तुम ही जगकी माता तुम ही हो भरता।
भक्तन की दुःख हरता सुख सम्पति करता ।।१०।। जय अम्वे० ।।
भुजा चार अति शोभित खड्ग खपर धारी।
मन वांछित फल पावत सेवत नर-नारी ।।११।। जय अम्वे० ।।
कञ्चन थाल विराजत अगर कपूर बाती।
श्रीमाल केतु में राजत कोटि रतन ज्योती ।।१२।। जय अम्वे० ।।
श्री अम्वेजी की आरती जो कोई नर गावै।
भक्त शिवानन्द स्वामी सुख सम्पति पावै ।।१३।।

भगवतीपुष्पाञ्जलिस्तोत्रम्—

अयि गिरिनन्दिनि नन्दितमेदिनि विश्वविनोदिनि नन्दनुते गिरिवरविन्ध्य-शिरोधिनिवासिनि विष्णुविलासिनि जिष्णुनुते ।। भगवति हे शितिकंठकुटुम्बिनि भूरिकुटुम्बिनि भूरिकृते जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ।। १ ।। सुरवरवर्षिणि दुर्धरधर्षिणि दुर्मुखमर्षिणि हर्षरते ।। त्रिभुवनपोषिणि शंकरतोषिणि किल्बिषमोषिणि घोषरते ।। दनुजनिरोषिणि दितिसुतरोषिणि दुर्मदशोषिणि सिंधुसुते जय जय हे० ।। २ ।। अयि जगदम्ब मदम्ब कदम्बवन-प्रियवासिनि हासरते ।। शिखरशिरोमणितुंगहिमालयशृङ्गनिजालयमध्यगते ।। मधुमधुरे मधुकैटभगंजिनि रासरते जय जय० ।। ३ ।। अयि शतखंडविखंडित-रुंडवितुंडितशुंडगजाधिपते ।। रिपुगजगंडविदारणचंडपराक्रमशुंडमृगाधिपते ।। निजभुजदण्डनिपातितखंडनिपातितमुंडभटाधिपते जय जय हे० ।। ४ ।। अयि रणदुर्म्मदशत्रुवधोदितदुर्धरनिर्जरशक्तिभृते चतुरविचारधुरीणमहाशिवधूतकृत-प्रथमाधिपते ।। दुरितदुरीहदुराशयदुर्मतिदानवदूतकृतांतमते जय जय० ।। ५ ।। अयि शरणागतवैरीवधूवरवीरवराभयदायकरे त्रिभुवनमस्तकशूलविरोधि-शिरोधिकृतामलशूलकरे । दुमिदुमितामरदुंदुभिमादमहोमुखरीकृततिग्मकरे जय जय हे० ।। ६ ।। अयि निजहुंकृतिमात्रनिराकृतधूम्रविलोचनधूम्रशते समरवि-शोषितशोणितवीजसमुद्भवशोणितवीजलते ।। शिव शिव शुम्भनिशुम्भमहाहव-तर्पितभूतपिशाचरते जय जय हे० ।। ७ ।। धनुरनुसंगरणक्षणसंगपरिस्फुरदंग-नटत्कटके कनकपिशंपृषत्कनिषंगरसद्भटशृङ्गहतावटुके ।। कृतचतुरंगबलक्षिति-रङ्गघटद्वहुरङ्गरटद्वटुके जय जय हे० ।। ८ ।। सुरललनाततथेयितथेयितथा-भिनयोत्तरनृत्यरते........................... ।। धिमिकटधिक्कटधिमिध्वनिधीर-मृदंगनिनादरते जय जय हे० ।। ९ ।। जय जय जप्यजये जयशब्दपरस्तुति-तत्परविश्वनुते झणझणझिंजिमिझिंकृतनूपुरसिंजितमोहितभूतपते ।। नटितनटार्ध-नटीनटनायकनाटितनाट्यसुगानरते जय जय० ।। १० ।। अयि सुमनःसुमनः-सुमनः सुमनः सुमनोहरकांतियुतेश्रितरजनीरजनीरजनीरजनीरजनीकरवक्त्रवृते ।।

सुनयनविभ्रमरभ्रमरभ्रमरभ्रमरभ्रमराधिपते जय० ॥ ११ ॥ सहितमहाहव-
मल्लमतल्लिकमल्लितरल्लकमल्लरते विरचितवल्लिकपल्लिकमल्लिकझिल्लिक-
भिल्लिकवर्गवृते सितकृतफुल्लिसमुल्लसितारुणतल्लजपल्लवसल्ललिते जय०
॥१२॥ अविरलगंडगलन्मदमेदुरमत्तमतंगजराजपते त्रिभुवनभूषणभूतकलानिधि-
रूपपयोनिधिराजसुते ॥ अयि सुदतीजनलालसमानसमोहनमन्मथराजसुते जय
जय० ॥ १३ ॥ कमलदलामलकोमलकांतिकलाकलितामलभाललते ॥ सकल-
विलासकलानिलयक्रमकेलिचलत्कलहंसकुले ॥ अलिकुलसंकुलकुवलयमण्डल-
मौलिमिलद्बकुलालिकुले जय० ॥ १४ ॥ करमुरलीरववीजितकूजितलज्जित-
कोकिलमंजुमते मिलितपुलिंदमनोहरगुंजितरंजितशैलनिकुंजगते ॥ निजगुण-
भूतमहाशवरीगणसद्गुणसंभृतकेलितले जय० ॥ १५ ॥ कतितटपीतदुकूल-
विचित्रमयूखतिरस्कृतचंद्ररुचे प्रणतसुरासुरमौलिमणिस्फुरदंशुकसन्नखचंद्ररुचे ॥
जितकनकाचलमौलिपदोर्जितनिर्झरकुंजरकुंभकुचे जय० ॥१६॥ विजितसहस्रकरैक-
सहस्रकरैकसहस्रकरैकनते कृतसुरतारकसंगरतारकसंगरतारकसूनुसुते ॥ सुरथ-
समाधिसमानसमाधिसमानसमाधिसमाधिसमाधिसुजातरते जय जय० ॥ १७ ॥
पदकमलं करुणानिलये वरिवस्यति योऽनुदिनं स शिवे अयि कमले कमलानिलये
कलमानिलयः स कथं न भवेद् ॥ तव पदमेव परंपदमेमनुशीलयतो मम किं
न भवेत् ॥ तव पदमेव परंपदमेमनुशीलयतो मम किं न शिवे जय० ॥ १८ ॥
कनकलसत्कलसिंधुजलैरनुसिंचिनुते गुणरंगभुवं भजति स किं न शचीकुच-
कुंभतटीपरिरंभसुखानुभवम् ॥ तव चरणं शरणं करवाणि नतामरवाणिनिवासि
शिवे जय० ॥ १९ ॥ तव विमलेंदुकुलं वदनेन्दुमलं सकलं ननु कूलयते किमु
पुरुहूतपुरींदुमुखी सुमुखीभिरसौ विमुखीभिरसौ विमुखीक्रियते ॥ स तु मतं
शिवनामधने भवती कृपया किमुत क्रियते जय ॥ २० ॥ अयि मयि दीनदयालु-
तया कृपयैव त्वया भवितव्यमुमे अयि जगतो जननि कृपयासि यथासि तथा-
ऽनुमितासि रते ॥ यदुचितमत्र भवत्युररीकुरुतादुरुतापमपाकुरुते जय० ॥ २१ ॥

अथ नित्यचण्डीविधिः

साधक अपने पूजास्थान में बैठकर पहले शास्त्रोक्त विधि के अनुसार अपने नित्यकर्मों को करे। तदनन्तर अपने इष्ट देवों का स्मरण करते हुए निम्नलिखित विधि से संकल्प करे।

ॐ तत्सदद्यामुकमासि अमुकराशिगते सवितरि शुक्लपक्षे अमुकतिथौ विशेषक्षेत्रे अमुकक्षेत्रो अमुकगोत्रोऽमुकशर्माहममुकफलावाप्तये अद्यारभ्य मासमात्रं नित्यचण्डीजपं करिष्ये।

यदि साधक स्वयं पूजा करने में असमर्थ हों तो किसी सच्चरित्र ब्राह्मण के द्वारा पाठ करावे सिर्फ संकल्प में 'अहं करिष्ये' के स्थान पर 'अहं करिष्यामि' ऐसा आचार्य को पढ़ना चाहिये।

इसके बाद दशदिक्पाल एवं नवग्रहों की पूजा करके तीनों रहस्यों के साथ तीनों चरित्रों का प्रत्येक दिन एक पाठ करे। निम्नलिखित मंत्रों के द्वारा क्रमशः प्रत्येक चरित के प्रारम्भ में विनियोग करके मूलमंत्र से न्यास करे।

इस मंत्र से प्रथम चरित के पाठ के प्रारम्भ में विनियोग करे।

"देवीमाहात्म्यस्यादिचरितस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्रीछन्दः श्रीमहाकाली देवता दक्तदन्तिका बीजं नन्दा शक्तिरग्निस्तत्वं प्रथमचरितजपे विनियोगः"।

इस मंत्र के द्वारा द्वितीय चरित के प्रारम्भ में विनियोग—

"मध्यम चरितस्य विष्णुऋषिरूष्णिक्च्छन्दः श्री महालक्ष्मीर्देवता दुर्गाबीजं शाकम्भरी शक्तिर्वायुस्तत्वं मध्यमचरितजपे-विनियोगः"।

उत्तर चरित के प्रारम्भ में विनियोग—

"उत्तरचरितस्य रुद्र ऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीमहासरस्वती देवता भ्रामरी बीजं भीमा शक्तिः सूर्यस्तत्त्वमुत्तरचरितजपे विनियोगः"।

एक महीना पूरा हो जाने पर अन्तिम दिन पूजा स्थान में मण्डप बनाकर उसे सुसज्जित करके कुण्ड का निर्माण करना चाहिये। तब अग्नि की स्थापना

करके पायस, घृत एवं तिल से जपे हुए मूल मंत्रों के दशांश मंत्रों से हवन, उसके दशांश से तर्पण तथा उसके दशांश से मार्जन करना चाहिए। हवन के बाद ब्राह्मण भोजन कुमारी भोजन तथा बन्धु बान्धवों को भोजन करवा कर अपनी पूजा की समाप्ति करे। यदि अन्य ब्राह्मण के द्वारा पूजा करवाई गयी हो तो उसे अपनी शक्ति के अनुसार समुचित दक्षिणा देकर उनसे आशीर्वाद ग्रहण करें। यह विधान निम्नलिखित खिलमार्कण्डेयोक्त के अनुसार विहित है।

अथ नित्यचण्डीविधिः

ऋषिरुवाच—

नित्यचण्ड्यादिजापस्य विधानं ते वदाम्यहम्।
क्रमेण सर्वकार्याणां सिद्धये सर्वपुण्यदम्॥ १॥
पूर्वोक्तविधिना कृत्वा चण्डिकातर्पणादिकम्।
शुक्लभूतमवष्टभ्य मासं प्रतिदिनं जपेत्॥ २॥
सकृद्रहस्यसंयुक्तं चण्डिका-चरितत्रयम्।
दशांशहोमसहितं सोच्यते नित्यचण्डिका॥ ३॥
धनपुत्रयशोदात्री महाव्याधिविनाशिनी।
महाभयमहादुःखहन्त्री सौख्यप्रदायिनी॥ ४॥

इति खिलमार्कण्डेये श्रीनित्यचण्डीविधिः।

अथ नवचण्डीविधिः

नवचण्डी पाठ प्रारम्भ करने के पहले साधक को अपने पूजा स्थान को ध्वजा-वितान आम्रपल्लव आदि अलङ्कारों से सुसज्जित कर लेना चाहिए। तदुपरान्त अपने सन्ध्योपासनादि नित्यकर्मों से निवृत होकर निम्नलिखित अनुसार संकल्प करे।

"ॐ तत्सदद्यामुकमासि अमुकराशिगते सवितरि शुक्लपक्षे प्रतिपदि तिथौ विशेषक्षेत्रे (काश्यादिक्षेत्रे) अमुकगोत्रोऽमुकशर्माऽहममुकफलवाप्तये अद्यारभ्य नवमीं तिथिं यावत् नवचण्डीविधानमहंकरिष्ये"।

साधक यदि स्वयं इस कार्य को करने में असमर्थ हो तो किसी अन्य सच्चरित्र ब्राह्मण को आचार्य बनाकर उसके द्वारा करवाना चाहिए। किन्तु संकल्प में 'अहं करिष्ये' के स्थान पर 'अहं करिष्यामि' ऐसा पढ़ना चाहिए।

संकल्प के बाद पूर्व दिशा में गजवाहना कादम्बरी का ध्यान करके 'ॐ कादम्बरि इहागच्छ' इस मंत्र से आवाहन करना चाहिए। तब गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि से विधिवत् पूजन करके घृत, शक्कर और अनेक प्रकार के व्यञ्जनों से युक्त पायस (हविंष्यान्न) को 'ॐ श्री कादम्बरी एष ते बलिर्नमः' इस मंत्र से अर्पण करके क्षमा-याचना सहित प्रणाम करना चाहिये।

इसके बाद अग्निकोण में उल्का गजवाहना देवी, दक्षिण दिशा में 'महिषारूढा कराली', नैऋत्यकोण में, प्रेतवाहना रक्ताक्षी' पश्चिम में मकरवाहना श्वेता', वायुकोण में 'मृगवाहना हरिता' उत्तर में 'सिंहवाहना यक्षिणी', ईशान कोण में 'वृषवाहना कंकाली,' पूरब और ईशान कोण के बीच में 'हंसवाहना सुरज्येष्ठा' तथा नैऋत्य और दक्षिण दिशा के बीच में 'अतिवाहना सर्पराज्ञी' देवी का अलग-अलग अपने-अपने स्थान में पूजन करके बलि का अर्पण करना चाहिये।

इसके बाद सूर्यादि पञ्च देवता, नवग्रह, गणेश, दुर्गा, वायु, आकाश तथा दोनों अश्विनी कुमारों का क्रमशः पूजन करके उन-उन दिशाओं में इन्द्रादि दश दिक्पालों की पूजा करनी चाहिए। तब मण्डप के बीच में 'आजिघ्रकलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः। पुनरूर्जा निवर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारापयस्वती पुनर्माविशताद्रयिः। इस मन्त्र से कलश की स्थापना करके द्वारपूजा के स्थान पर उस कलश में महालक्ष्मी का आवाहन करना चाहिए। एवं फूल, अक्षत, चन्दन आदि से विधिवत् पूजन करके उसके सामने ही तीनों रहस्यों के साथ चरित्रत्रयरूप देवी माहात्म्य का पाठ शान्त चित्त से करना चाहिए। पाठ की समाप्ति के बाद एक कुमारी तथा एक सुयोग्य ब्राह्मण को विधिपूर्वक भोजन कराके ताम्बूल, दक्षिणा आदि के द्वारा सन्तुष्ट करके प्रणाम करना चाहिए।

इसी क्रम से द्वितीया को दोगुना और तृतीया को तिगुना एवं नवमी पर्यन्त नौगुणा चण्डीपाठ, कुमारी और ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए। चण्डीपाठ करनेवाले साधक को प्रतिदिन एक ही प्रकार का आहार लेना चाहिए। पाठ के अन्तिम दिन संपूर्ण किये हुए चण्डीपाठों के दशांश तिल, घृत तथा पायस (हविष्यान्न) से विधिपूर्वक हवन करके अपने कार्य को समाप्त करना चाहिए। यदि अन्य आचार्य के द्वारा पाठ संपन्न करवाना हो तो उसे अपनी शक्ति के अनुसार उदारता से दक्षिणा आदि देकर सन्तुष्ट करना चाहिए।

इस प्रकार विधिवत् जो नवचण्डी का पाठ करता है उसे सभी कामनाएं पूरी हो जाती हैं। पुत्रहीन को पुत्र तथा धनहीन को धन मिलता है। उनकी सारी व्याधियाँ, प्रबल शत्रु, राजा, चोर, अग्नि और जल का भय समाप्त हो जाते हैं। यह विधान निम्नलिखित खिलमार्कण्डेयोक्त के अनुसार विहित है।

अथ नवचण्डीविधिः

ऋषिरुवाच—

शरदृताविषे मासि शुक्लपक्षे नृपोत्तम ।
प्रतिपत्तिथिमारभ्य नवचण्डीं समापयेत् ॥ १ ॥

तोरणाढ्ये शुभे स्थाने सुवितानाद्यलङ्कृते ।
पूर्वादिक्रमयोगेन दिग्देवीभ्यो बलिं हरेत् ॥ २ ॥

गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैर्दीपैश्चरुभिरुत्तमैः ।
कादम्बरी गजारूढा पुनरुल्काजपृष्ठगा ॥ ३ ॥

कराली महिषारूढा रक्ताक्षी प्रेतसंस्थिता ।
श्वेतकुम्भीरगा श्वेता हरिता मृगवाहना ॥ ४ ॥

यक्षिणी सिंहपृष्ठस्था कङ्काली वृषवाहना ।
हंसपृष्ठे सुरज्येष्ठा सर्पराज्ञहिवाहना ॥ ५ ॥

अनेन विधिना दत्त्वा दिग्देवीभ्यो बलिं जपी ।
नवग्रहाँल्लोकपालान्दिशापालांश्च पूजयेत् ॥ ६ ॥

विनायकस्तथा दुर्गा वायुराकाशमेव च ।
अश्विनौ च महात्मानौ लोकपालाः प्रकीर्तिताः ॥ ७ ॥

कलशं पञ्चरत्नाढ्यं हेमवस्त्रादिकान्वितम् ।
संप्रतिष्ठाप्य सम्पूज्य चण्डिकार्चनमाचरेत् ॥ ८ ॥

पूर्वोक्तेन विधानेन गन्धपुष्पैरनुत्तमैः ।
वस्त्रालङ्कारकस्तूरी-सिन्दूरागरुकुङ्कुमैः ॥ ९ ॥

धूपैर्बहुविधैर्दीपैर्नैवेद्यैर्वर्णसंख्यया ।
कृत्वान्यत् पूर्ववत्सर्वं जपेदेकाग्रमानसः ॥१०॥
सकृद्रहस्यसंयुक्तं चण्डिका-चरितत्रयम् ।
कुमारी विप्रमुख्यांश्च भोजयेद् विधिपूर्वकम् ॥११॥
यद्वाद्यद्दिवसे कुर्याच्चचण्डिकापूजनादिकम् ।
द्विगुणं तद्द्वितीयेऽह्नि त्रिगुणं तत्परेऽहनि ॥१२॥
नवमीतिथिपर्यन्तं वृद्ध्या पूजाजपादिकम् ।
एकाहारव्रती कुर्यात्सत्यादिनियमैर्युतः ॥१३॥
कृत्वा होमादिकं सर्वं नवदुर्गाविधानवत् ।
वित्तशाठ्यं परित्यज्य कुर्यादाचार्यतोषणम् ॥१४॥
वस्त्राङ्गुलीयभूधेनुवाजिहेम-प्रदानतः ।
अशक्तो निष्कमेकं तु देयमस्मै प्रयत्नतः ॥१५॥
विदधीत विधानेन य एनां नवचण्डिकाम् ।
शृणुष्वास्य फलं भूप यो हि कश्चिदनेन वै ॥१६॥
ऐन्द्रब्राह्मादयो भोगास्तमायान्ति प्रसेवितुम् ।
अपुत्रो लभते पुत्रानधनः सधनो भवेत् ॥१७॥
व्याधयः संक्षयं यान्ति शत्रवश्च सुदारुणाः ।
न तस्यास्ति भयं किञ्चिद्राजचोराग्निवारिजम् ॥१८॥

इति श्रीखिलमार्कण्डेयं नवचण्डीविधिः समाप्तः ।

—:०:—

अथ नवदुर्गाविधिः

नये वस्त्र को धारण करके साधक अपने नित्यकर्मों को समाप्त करके पूरब मुख होकर बैठे और तिथि आदि का उल्लेख करते हुए पूर्वोक्त विधि से संकल्प करे। इस विधान में शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि को चण्डी का पाठ प्रारम्भ होता है तथा कृष्ण पक्ष की प्रतिपत् तिथि को समाप्त हो जाता है। अर्थात् नौ दिन में यह विधान समाप्त हो जाता है। प्रत्येक दिन सिर्फ एक पाठ ही किया जाता है। साधक प्रथम दिन पञ्च देवता आदि की पूजा करके देवी की स्थापना किसी पीठ पर करके विधिवत् पूजन करे। तब देवी के आगे शालिपुञ्ज (धान्यराशि) पर कलश की स्थापना "आजिघ्नकलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः। पुनरूर्जा निवर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरु धारापयस्वती पुनर्माविशताद्रयिः" इस मंत्र से करे।

इसके बाद "इमं मे वरुण श्रुधि हवमद्या च मृडयत्वामवस्युराचक्रे" तत्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानोवरुणे ह बोध्युरुश ꣳ समान आयुः प्रमोषीः।" इस मंत्र से कलश में शुद्ध जल भरकर उसमें आम्रपल्लव देकर उसके ऊपर सुँपारी, चावल रखकर उसी कलश के समान धातुवाला एक पात्र रखना चाहिए। कलश को लाल वस्त्र से वेष्ठित करना चाहिए। तब प्रत्येक दिशाओं में पूर्वादि क्रम से इन्द्रादि दशदिक्पालों की पूजा करके साधक मूल मन्त्र से न्यास करे। तदनन्तर तीनों रहस्यों के साथ तीनों चरित्रों का प्रत्येक दिन एक आवृत्ति पाठ करे। इस प्रकार नौ दिन तक पाठ करके दशवें दिन अग्नि की स्थापना करके मूल मन्त्र से १०८ बार हवन करे तथा ब्राह्मण, कुमारी आदि को भोजन करावे एवं दक्षिणा आदि देकर प्रणाम करे। स्वयं अशक्त होने से किसी अन्य आचार्य द्वारा यह कार्य सम्पन्न करवावे। नवदुर्गा-विधान दो प्रकार का होता है। कालरात्रि तथा नवदुर्गा। कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि से प्रारम्भ होकर शुक्ल प्रतिपत् तिथि तक किए जाने वाले पाठ को कालरात्रि विधान तथा शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि से प्रारम्भ होकर कृष्णपक्ष की प्रतिपत् तिथि तक किये गए पाठ विधान को नवदुर्गा विधान कहते हैं। यह विधान निम्नलिखित खिलमार्कण्डेयोक्त के अनुसार विहित है।

अथ नवदुर्गाविधिः

ऋषिरुवाच

शुक्लाष्टमीमथारभ्य यावत्कृष्णा च नन्दिनी ।
नवदुर्गा विधातव्या सर्वाभीष्टफलार्थिना ॥ १ ॥
संपूज्य विधिवद्देवीं चण्डिकां कृततर्पणाम् ।
कलशं पञ्चरत्नाढ्यं सहकारहलान्वितम् ॥ २ ॥
सवक्त्रं संप्रतिष्ठाप्य चण्डिकाग्रेऽम्भसा भृतम् ।
समन्तात्पूजयेद्दिक्षु दिशापालान्यथाक्रमम् ॥ ३ ॥
चन्दनेन विलिप्ताङ्गः स्रग्वी न्यासपरायणः ।
नवाहं भूप एकैकं मौनी बद्धासनो जपेत् ॥ ४ ॥
प्रणवादिरहस्यान्तं चण्डिका-चरितत्रयम् ।
नवदुर्गेति विख्याता पापतापप्रणाशिनि ॥ ५ ॥
सर्वैश्वर्यप्रदा भूप कुर्वतामविलम्बितम् ।

इति श्रीखिलमार्कण्डेये शतचण्डीविधिः समाप्तः ।

--:०:--

अथ शतचण्डीविधिः

मार्कण्डेय ऋषि शतचण्डी विधान विधि पूर्वक कहते हैं । देश में भयङ्कर आकाल पड़ने से, अतिवृष्टि तथा अनावृष्टि होने से, भूकम्प आदि का भय आने पर, क्षयरोग हो जाने से, भयङ्कर ग्रह आने से, पुत्र न होने से तथा अन्य भी इसी तरह के संकट आने पर शतचण्डी महायज्ञ किया जाता है । यह महायज्ञ शिवालय या अन्य किसी मन्दिर के पास किया जाता है । यदि

घर के पास मन्दिर न हो तो अपने घर के ईशानकोण में मण्डप का निर्माण करना चाहिए। शास्त्रीय विचार के अनुसार उजली, लाल अथवा पीली मिट्टी वाली भूमि पर यज्ञादि शुभ कार्यों का शास्त्रकारों ने निरोध किया है। मण्डप १६ या १४ या १२ हाथ का चतुर्भुज होना चाहिए। १२ हाथ का अधम १४ हाथ का मध्यम तथा १६ हाथ का मण्डप उत्तम माना गया है। मण्डप के बीच में एक हाथ ऊँची तथा उतनी ही लम्बी चौड़ी चौकोर वेदी का निर्माण करना चाहिए।

शतचण्डी महायज्ञ में एक आचार्य तथा नौ ब्राह्मण होना चाहिये। ये सभी सदाचारी, कुलीन श्रीमान्, सत्यवादी तथा दयालु हों तभी इनसे पाठ करवाना चाहिए। सपत्नीक यजमान सुन्दर आसन पर वैठकर "ओमद्येत्यादिशतचण्डीमखयथाविहितकर्मसम्पादनार्थम् आचार्यत्वेन त्वामहं वृणे" इस मंत्र से आचार्य को तथा "ओमद्येत्यादिशतचण्डीमखयथाविहितकर्मसम्पादनार्थं ब्राह्मणामृत्विजाँ वरणमहं करिष्ये" इस मंत्र से ब्राह्मणों को वरण देना चाहिए। इसके वाद ब्राह्मणों द्वारा उच्चारित स्वस्तिवाचक मन्त्रों का श्रवण करते हुए सपत्नीक यजमान अपने वन्धुवान्धवों के साथ मण्डप के समीप जाकर द्वारपूजा करके पश्चिम द्वार से मण्डप में प्रवेश करे और हाथ जोर कर आचार्य को चण्डिका पूजन के लिए आज्ञा दे। आचार्य आचमन प्राणायाम आदि करके "ओमद्य अमुकमासिअमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अस्य यजमानस्य सकुटुम्बस्य मनोवाञ्छितफलसिद्ध्यर्थमाधिव्याधिमहामृत्युभयशोकनिवृत्यर्थं भूतवर्तमानभविष्यत्रिविधोत्पातशान्त्यर्थं परमैश्वर्यसम्पत्तिप्राप्त्यर्थं शतचण्डीकर्मसम्पादनमहं करिष्यामि" इस मंत्र से संकल्प करे। तत्पश्चात् नवचण्डी विधान की भाँति देवी पूजा, बलि का अर्पण करके मण्डप पर किसी पीठ पर ग्रहमण्डल का निर्माण करके दशदिक्पालों की पूजा करनी चाहिए। एवं पूर्व की भाँति प्रधान कलश की स्थापना करके मण्डप के बाहर पूर्वादि क्रम से चारों दिशाओं में भूतादि को बलि देकर मण्डप के प्रत्येक द्वार पर दो-दो जल पूर्ण कलशों की स्थापना करनी चाहिए। तबा आचार्य पद्मासन लगाकर आसन की पूजा करने के बाद अपने आसन पर बैठकर

चण्डिका का ध्यान कर भूतशुद्ध्यादि करना चाहिए। तत्पश्चात् मूल मन्त्र से तीन बार प्रणाम करके ऋष्यादिन्यास, करादिन्यास, षडङ्गन्यास तथा व्यापकन्यासादि मूल मंत्र से ही करना चाहिए। तब प्रधानकलश में पीठ पूजा के साथ चण्डिका का सचक्र सांग सावरण ध्यान करना चाहिए। पूजन सामग्री के लिए अस्सी गुञ्जा कस्तूरी, उतना ही कुमकुम, जायफल, उतना ही कपूर को एक पल (बीस से तीन गुञ्जा) चन्दन में घीस कर दो पल चन्दन तैयार करना चाहिए। इसके अतिरिक्त पचीस हजार पुष्प, दो पल गुग्गुल, घृतपूर्ण बीस दीप, नैवेद्य के लिए दो कुटुम्ब (बीस तोला) हविष्यान्न, पहनने योग्य उत्तम साड़ी, तीन गद्यानक (आधा तोला) सुवर्ण से निर्मित आभूषण की आवश्यकता होती है। इन सामानों को जुटाकर नौ ब्राह्मणों से साङ्ग सावरण महालक्ष्मी की पूजा करवाकर सप्तशती पाठ के लिए आज्ञा दें। जब तक देवी का पूजन हो तब तक सभी ब्राह्मण 'जय चण्डि' इसे उच्चारण करते हुए देवी का ध्यान करना चाहिए। पश्चात् आचार्य सहित सभी ब्राह्मण वेदी के पास अपने-अपने आसन पर बैठकर प्रसन्न चित्त होकर मूलमन्त्र से न्यास करके तीनों रहस्यों सहित चण्डी का पाठ करें। पुनः उठकर महालक्ष्मी की प्रदक्षिणा करके आसनों पर बैठकर यजमान की मनोकामना की पूर्ति के लिए देवी से प्रार्थना करें।

पश्चात् यजमान धूप, दीप, पुष्प आदि से कुमारियों तथा दश ब्राह्मणों की पूजा करके भोजन करावें और ताम्बूल दक्षिणा आदि को देकर उन्हें सन्तुष्ट करे। तब आचार्य और नौ ब्राह्मणों को भी भोजन करावे। रात में बन्धु-बान्धवों के साथ भजन-कीर्तन करते हुए जागरण करें। इस प्रकार प्रथम दिन का विधान समाप्त करके दूसरे दिन भी उसी क्रम सब काम सम्पन्न करें। किन्तु पूर्व दिन की अपेक्षा दूसरे दिन दो गुने, तीसरे दिन तीन गुने, चौथे दिन चार गुने जप एवं पाठ होना चाहिए। इसी प्रकार कुमारी भोजन, ब्राह्मण भोजन, दक्षिणा आदि दूसरे दिन दो गुने, तीसरे दिन तीन गुने तथा चौथे दिन चार गुने करना चाहिए। तत्पश्चात् पाँचवें दिन अग्नि की स्थापना करके पायस, घृत, एवं तिल से हवन करना चाहिए। हवन जप के दशांश

संख्या के द्वारा तीनों रहस्यों के साथ तीनों चरित्रों के प्रत्येक मन्त्र से अथवा 'नमो देव्यै महादेव्यै' इस मन्त्र से अथवा नवार्ण मन्त्र से हवन करना चाहिए। पुनः दिग्देवियों के तत्तत् मन्त्रों से सौ सौ बार हवन करना चाहिए। इस हवन की समाप्ति के बाद यजमान देवी को प्रणाम करें।

इसके बाद दोनों स्तम्भों पर श्रुव को रखकर घृतकुम्भ से दशांशघृत को लेकर 'मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिवा वैश्वानरमृत आजातमग्निम्। कवि ᳪ सम्राजमतिथिं जनानामासन्नापात्रं जनयन्त देवाः॥ इस मन्त्र से अवच्छिन्न धारा से पूर्णाहुति करनी चाहिए। यजमान ब्राह्मणों को अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा, सुवर्णमयी गौ आदि का दान देना चाहिए। इसके बाद आचार्य स्वस्तिवाचन मन्त्रों के द्वारा ऋत्विज, कुंकुम, दुर्वाक्षत, चन्दन तथा दधि लेकर यजमान को आशीर्वाद दे। इस प्रकार सपत्नीक यजमान ब्राह्मणों को अधिक से अधिक दान दक्षिणा देकर बन्धु-बान्धवों के साथ भजन कीर्तन करते हुए अपने घर को प्रस्थान करे। यह विधान निम्नलिखित खिल-मार्कण्डेयोक्त के अनुसार विहित है।

अथ शतचण्डीविधिः

शतचण्डीविधानं ते यथावत् कथयाम्यहम्।
सुघोरायामनावृष्ट्यां भूकम्पे च सुदारुणे॥ १॥
परचक्रभये तीव्रे क्षयरोग उपस्थिते।
राज्यावाप्त्यादिकार्येषु स्वायुष्यसुतजन्मनि॥ २॥
महोपघातनाशाय पञ्चविंशतियोजने।
देशे सर्वत्र शान्त्यर्थं शतचण्डीमखं चरेत्॥ ३॥
शिवाभ्यासे समे देशे चतुर्द्वारं सतोरणम्।
पताकासंस्कृतं कुर्यान्मण्डपं वेदिभूषितम्॥ ४॥
तत्र कुण्डं प्रकर्त्तव्यमुक्तलक्षणसंयुतम्।
सदाचाराःकुलीना ये श्रीमन्तःसत्यवादिनः॥ ५॥

3654

चण्डीपाठसंपूर्णा दयावन्तो जितेन्द्रियाः ।
ईदृग्लक्षणसंयुक्ता दम्भमोहविवर्जिताः ॥ ६ ॥
दश विप्राः समभ्यर्च्या महालक्ष्मीस्वरूपिणः ।
मधुपर्कविधानेन यथावत्तद् वदाम्यहम् ॥ ७ ॥
श्रीपर्णीवृक्षपीठानि हस्तमानानि मानतः ।
अष्टाङ्गुलसमुच्छ्रायसहितानि समानि च ॥ ८ ॥
स्रुवः स्रुचा सखायुक्तः खादिरो लक्षणान्वितः ।
सप्तविंशतिदर्भाणां वेण्यग्रग्रन्थिभूषिता ॥ ९ ॥
विष्टरे सर्वयज्ञेषु लक्षणं परिकीर्तितम् ।
शुद्धोष्णोदकसंपूर्णाः पाद्यार्थे ताम्रगण्डुकाः ॥१०॥
शङ्खा अर्घ्यप्रदानाय गन्धपुष्पजलान्विताः ।
पूर्वोदकसमायुक्ताः स्थापनीयाः पृथक् पृथक् ॥११॥
सुताम्रस्य कमण्डलव आचमनोदकपूरिताः ।
सम्पुटा मधुपर्कार्थाः कांस्या दध्यादिपूरिताः ॥१२॥
महान्त्यर्घाणि वस्त्राणि मुद्रिकाद्यं सुभूषणम् ।
मयूरपत्रच्छत्राणि सोष्णीषाणि समाहरेत् ॥१३॥
पादुकाश्चाहरेत्तत्र ताम्रभूषणभूषिताः ।
अन्यत्सर्वं यदस्त्युक्तं मधुपर्कस्य पूजने । १४॥
शतचण्डीमखे कर्त्ता प्रयत्नेन समाहरेत् ।
स्मार्तोक्तविधिना सम्यङ्मधुपर्कस्य पूजनम् ॥१५॥
कृत्वा फलमवाप्नोति महायज्ञार्णवोपमम् ।
अन्येभ्यो मधुपर्कस्य विप्रेभ्यः पूजनं समम् ॥१६॥

विद्यात्तद्द्विगुणं दद्यादाचार्याय सुभक्तिमान् ।
अन्यैर्द्विजैः समं यत्र भवेद्देशिकपूजनम् ॥१७॥
तस्मिन् यज्ञे फलं स्वल्पमनावृष्टौ यथा क्षितौ ।
अर्चितास्ते द्विजश्रेष्ठाः संतुष्टाः पूर्णमानसाः ॥१८॥
यजमानं सपत्नीकं सुतबन्धुसमन्वितम् ।
उपवेश्यासने कुण्डकलशाग्रविभूषितम् ॥१९॥
वेदमन्त्राक्षतैः पूर्णं कुर्वन्ति स्वस्तिवाचनम् ।
कृतस्वस्त्ययनैर्विप्रैर्वेदवादित्रनिस्वनैः ॥२०॥
चण्डिकामण्डपं यायात् परिवारभूषितः ।
पश्चिमद्वारमार्गेण प्रविश्य क्रतुमण्डपम् ॥२१॥
ददाति पूजनेऽनुज्ञां देशिकाय कृताञ्जलिः ।
देशिकः सर्वमन्त्रज्ञो नवभिर्ब्राह्मणैः सह ॥२२॥
दिग्देवता ग्रहांश्चैव लोकपालसमन्वितान् ।
दिशापालांश्च संपूज्य कलशं स्थाप्य पूज्य च ॥२३॥
मण्डपस्य चतुर्दिक्षु दत्त्वा भूतबलिं बहिः ।
मण्डपे कलशौ द्वौ द्वौ द्वारे द्वारे निवेशयेत् ॥२४॥
गलितोदकसम्पूर्णावाम्रपल्लवशोभितौ ।
उपस्पृश्योदकं ध्यात्वा चण्डिकां देववन्दिताम् ॥२५॥
उपवेश्यासने वेद्यां बद्ध्वा पद्मासनं दृढम् ।
प्राणायामविशुद्धात्मा दशक-न्यासभूषितः ॥२६॥
चण्डिकापूजनं कुर्याद्विशेषेण समन्वितम् ।
कस्तूरी कुंकुमं जात्यं सकर्पूरं च चन्दनम् ॥२७॥

पलद्वयं तु संपूर्णमनुलेपनमाहरेत् ।
दिव्यवस्त्रमलङ्कारं हेमगद्याणकत्रयम् ॥२८॥
लक्षपुष्पचतुर्थांशं गुग्गुलस्य पलत्रयम् ।
दीपानां विंशतिः श्रेष्ठं मण्डपे जपसाधनम् ॥२९॥
कुडवौ द्वौ हविष्यान्नं नैवेद्यं सरसं शुचि ।
ताम्बूलानां सकर्पूरं शतद्वयमनुत्तमम् ॥३०॥
नवचण्डीविधानोक्तं महालक्ष्म्याः प्रपूजनम् ।
नवभिर्ब्राह्मणैः सार्धं कृत्वाचार्यो द्विजोत्तमः ॥३१॥
ददाति नव विप्रेभ्य आचार्यश्चण्डिकामयः ।
कार्यं जाप्यप्रसिद्ध्यर्थमतुलं मानपूर्वकम् ॥३२॥
ततोऽनुज्ञामनुप्राप्य वेद्यमाचार्यसंनिधौ ।
सुखासने सुसंतुष्टा उपविष्टाः सुनिश्चलाः ॥३३॥
न्यासध्यानसमायुक्ता नासाग्रमवलोकिनः ।
सुगन्धपुष्पमालाढ्याश्चण्डिकाचरितत्रयम् ॥३४॥
सरहस्यमृषिश्छन्दो देवताशक्तिसंयुतम् ।
बीजतत्त्वसमायुक्तमुपांशुगुणसंयुतम् ॥३५॥
जपेयू रूपमेकैकं मौनिनस्त्यक्तमत्सराः ।
समुत्थाय ततः कुर्युः सर्वे देव्याः प्रदक्षिणम् ॥३६॥
चण्डिकां तु नमस्कारैः परितोष्य पुनः पुनः ।
उपविश्यासनेषूक्तश्लोकैः सर्वार्थसाधकैः ॥३७॥
प्रार्थयेयुः प्रार्थ्यफलं महालक्ष्मीं दृढव्रताः ।
कुमार्यो दश संभोज्या विप्रा भोज्या दशोत्तमाः ॥३८॥

महाकाल्याश्च लक्ष्म्याश्च सरस्वत्या जपं जपन् ।
भोजयेत्परया भक्त्या देशिकादिदशद्विजान् ॥३९॥
ततो भक्तिसमायुक्तो भुञ्जीयाद्यज्ञकृत् पुमान् ।
सत्कथाभिः सुगीतैश्च सर्ववादित्रनिःस्वनैः ॥४०॥
पूजनैः प्रोक्षणीयैश्च वेदपाठैर्निशां नयेत् ।
द्वितीये दिवसे स्नात्वा विधिवत्ते द्विजा दश ॥४१॥
चण्डिकातर्पणं कुर्युः सम्पूर्णं ध्यानतत्पराः ।
सर्वं पृथक् पृथक् कृत्वा दिग्देवीपूजनादिकम् ॥४२॥
बहिर्भूतबलिं दत्त्वा कृत्वा देवी-प्रदक्षिणम् ।
पुण्यागारे महारम्ये स्वे स्वे च स्वासने स्थिताः ॥४३॥
जपन्ति जय चण्डीति यावद् दुर्गाप्रपूजनम् ।
पूर्वस्मात् पूजनात् कुर्याद् द्विगुणं पूजनं क्रमात् ॥४४॥
आचार्यः सुस्थिरः शान्तश्चण्डिकायाः प्रतोषणम् ।
सुकृते पूजने विप्रा जपेयुर्द्विगुणं जपम् ॥४५॥
द्विगुणं च प्रकर्तव्यं कुमारीद्विजतोषणम् ।
कार्यं जागरणं रात्रावुक्तैः सर्वैर्महोत्सवैः ॥४६॥
चण्डिकापूजनं जप्यं कुमारीद्विजपूजनम् ।
तृतीयेऽहनि कर्त्तव्यं त्रिगुणं च सजागरम् ॥४७॥
चतुर्थे दिवसे सर्वं सम्यक्कुर्याच्चतुर्गुणम् ।
महाजागरणोपेतं होमः स्यात्पञ्चमेऽहनि ॥४८॥
पायसं सर्पिषा युक्तं तिलैः शुक्लैर्विमिश्रितम् ।
जुहुयादुक्तविधिना दशांशेन नृपोत्तम ॥४९॥

रुद्राध्याये यथा होमं मन्त्रेणैकेन साधयेत् ।
तथा स्तोत्रजपे होमं श्लोकेनैकेन साधयेत् ॥५०॥
चण्डीसप्तशतीजापे होममन्त्रो नवाक्षरः ।
कथितः पूजनाध्याये तस्माद्धोमे भवेदसौ ॥५१॥
नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥५२॥
अथवाऽयं भवेद्धोमे श्लोकः स्तोत्रनिरूपतः ।
जपहोमे सुसंपूर्णे दिग्देवीनां शतं शतम् ॥५३॥
होतव्यं नाममन्त्रैश्च हविष्यान्नेन सादरम् ।
शतं शतं क्रमाद्देयं समिदाज्यचरूँस्तिलान् ॥५४॥
ग्रहेभ्यो वैदिकैर्मन्त्रैः फलं पुष्पं शतं शतम् ।
लोकपालदिशापालहोमे सर्पिश्चरुस्तिलाः ॥५५॥
आचार्यादिद्विजाः सर्वे जुहुयुश्च शतं शतम् ।
होमे सम्पूर्णतां प्राप्ते नमस्कृत्वेष्टदेवताम् ॥५६॥
चण्डिकां देवदेवानामृषीणां वन्दितां पराम् ।
स्तम्भद्वये स्रुचं कृत्वा यजमानः स्वलङ्कृतः ॥५७॥
घृतकुम्भदशांशेन दद्यात्पूर्णाहुतिं स्वयम् ।
मूर्द्धानमन्त्रपाठेन नवाक्षरजपेन वा ॥५८॥
प्राशनं मार्जनाद्यं च नवदुर्गाविधानवत् ।
जपं हुतं समावेद्य चण्डिकायै मनोरथम् ॥५९॥
ब्रह्मणे निष्कषट्काढ्यं दद्याद् गोमिथुनद्वयम् ।
यस्याः प्रभावमतुलं श्लोकमुक्त्वा कृताञ्जलिः ॥६०॥

दद्याद्गोमिथुनान्यष्टावाचार्याय सुभक्तिमान् ।
चतुर्विंशतिसंख्याकैर्हेमनिष्कैः सहान्वितम् ॥६१॥
एकैकमष्टविप्रेभ्यो दद्याद्गोमिथुनं स्वयम् ।
निष्कत्रयसमायुक्तं वस्त्रालङ्कारभूषितम् ॥६२॥
सुस्थितं स्वासने शान्तं यजमानं महोत्सवम् ।
कुङ्कुमाक्ताक्षतान् दूर्वाः सुगन्धं चन्दनं दधि ॥६३॥
आदाय दीयते विप्र आचार्यादिसुपूजितः ।
स्तोत्राणां च चतुर्णां च महालक्ष्मीपरायणः ॥६४॥
एकैकं श्लोकमुच्चार्य दद्युराशिषमुत्तमम् ।
सभार्यः ससुतः पूर्णो लब्धाशीर्वादमङ्गलः ॥६५॥
रक्तपुष्पाञ्जलिं दद्याच्चण्डिकायै विसर्जनम् ।
भूरिदानं ततो दद्यात् पुण्यवादित्रनिःस्वनैः ॥६६॥
प्रविशेच्छान्तिपाठैश्च तोरणाढ्यं स्वमालयम् ।
शतचण्डीविधानेन कृतेन सुकृतेन हि ॥६७॥
महालक्ष्मीर्ददात्यस्मै त्रैलोक्यसुखमुत्तमम् ।
यद्यत्कार्यं समुद्दिश्य क्रियते शतचण्डिका ॥६८॥
तत्तत्तस्य महालक्ष्मीः स्वयमाशु प्रयच्छति ।
चरितत्रयजाप्यस्य चण्डिकाया नृपोत्तम ॥६९॥
सरहस्यस्य नामानि ब्रह्मोक्तानि वदाम्यहम् ।
महाविद्या महामन्त्रश्चण्डीसप्तशतीति च ॥७०॥
मृतसंजीवनी नाम चतुर्थं परिकीर्तितम् ।
पञ्चमं च महाचण्डी चतुःषष्टिपदी परा ॥७१॥

रूपचण्डी परा दुर्गा कथिता वेदपारगैः ।
महाविद्या सप्तशती सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥७२॥
आद्यन्तमध्यचरितं महामन्त्रमुदीरितम् ।
आदिमध्यान्तचरितं क्रमाच्चण्डीमहामनुः ॥७३॥
मध्यमाद्यन्तचरितं क्रमात्सप्तशती स्मृता ।
मध्यमाद्यन्तचरितं मृतसंजीवनी स्मृता ॥७४॥
अन्त्यादिमध्यचरितं महाचण्डीति कथ्यते ।
योगिनीनां चतुःषष्टियोगात्सप्तशतीमनोः ॥७५॥
चतुःषष्टिपदी प्रोक्ता योगसिद्धिप्रदायिनी ।
रूपं देहीति योगेन रूपचण्डीति सा स्मृता ॥७६॥
पराबीजसमायोगात् परा चण्डीति कथ्यते ।
एतानि यो विजानाति नामानि नृपनन्दन ॥७७॥
जपं विना भवेच्चण्डी वरदाऽस्य तु सर्वदा ।
पाठभेदफलं राजञ्छ्रृणु वक्ष्याम्यनुक्रमात् ॥७८॥
महाविद्यां च शान्त्यर्थं पठेच्च सततं नरः ।
चण्डीपाठं हि राजेन्द्र पुष्ट्यर्थं च सदा जपेत् ॥७९॥
मोहनार्थं मप्तशतीपाठं भवति सिद्धिदम् ।
विषरोगाल्पमृत्युघ्नपाठे संजीवनीक्रमः ॥८०॥
स्तम्भने च महाचण्डी सततं सिद्धिदायिनी ।
तथैव मारणे ज्ञेया महाचण्डी च चण्डिका ॥८१॥
उच्चाटने च विद्वेषे कृत्याशान्त्यादिकर्मणि ।
रूपचण्डी शुभकरी पराचण्डी च मोक्षदा ॥८२॥

शतमादौ शतं चान्ते जपेन्मन्त्रं नवाक्षरम् ।
चण्डीं सप्तशतीं मध्ये संपुटोऽयमुदाहृतः ॥८३॥
सकामः संपुटो जाप्यो निष्कामः संपुटं विना ।
एतद् गोप्यतरं तत्त्वं चण्डिका जपसिद्धिदमिति ॥८४॥

इति श्रीखिलमार्कण्डेये शतचण्डीविधिः समाप्तः ।

—:०:—

अथ सहस्रचण्डीविधिः

प्राण संकट में आ जाने पर, राज्य से च्युत होने पर, महाभय उपस्थित होने पर, क्षय रोग आदि के भय आने पर एवं अन्य भी महान् संकट के आने पर सहस्रचण्डी का पाठ किया जाता है। इसमें जप करनेवालों की संख्या एक सौ होनी चाहिए। बीस हाथ का मण्डप बनाकर विविध अलङ्कारों से सजाना चाहिए। एक हजार ब्राह्मण भोजन करवाना चाहिए। ब्राह्मणों की दक्षिणा दूनी होनी चाहिए। अन्य विधानादि शतचण्डी के समान समझना चाहिए।

अथ सहस्रचण्डीविधिः

ऋषिरुवाच

सहस्रचण्डीं विधिवच्छृणु राजन् महामते ।
राज्यभ्रंशो ह्यकस्माच्चेज्जनमारे महाभये ॥ १ ॥
गजमारेऽश्वमारे च परचक्रभये तथा ।
इत्यादिविविधे दुःखे क्षयरोगादिजे भये ॥ २ ॥
सहस्रचण्डिकापाठं कुर्याद् वा कारयेत वा ।
जापकास्तु शतं प्रोक्ता त्रिंशद्धस्तश्च मण्डपः ॥ ३ ॥
भोज्याः सहस्रं विप्रेन्द्रा गोशतं दक्षिणां दिशेत् ।
गुरवे द्विगुणं देयं शय्यादानं तथैव च ॥ ४ ॥
सप्तधान्यं च भूदानं श्वेताश्वं च मनोहरम् ।
पञ्चनिष्कमिता मूर्तिः कर्त्तव्या वर्धमानतः ॥ ५ ॥
अष्टादशभुजां देवीं सर्वायुधविभूषिताम् ।
अन्नं वारि च दातव्यं सहस्रं प्रत्यहं विभो ॥ ६ ॥
शतं वा नियताहारः पयोमानेन वर्तयेत् ।
एवं यश्चण्डिकापाठं सहस्रं तु समाचरेत् ॥ ७ ॥
तस्य स्यात्सर्वत्र सिद्धिस्तु नात्र कार्या विचारणा ।

इति श्रीखिलमार्कण्डेये सहस्रचण्डीविधिः समाप्तः ।

—:०:—

अथ एकादशशक्तिध्यानम्

१. दुर्गा—सिंहस्कन्धसमारूढां नानाऽलङ्कारभूषिताम् ।
चतुर्भुजां महादेवीं नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥
रक्तवस्त्रपरीधानां बालार्कसदृशीं तनुम् ।
नारदाद्यैर्मुनिगणैः सेवितां भवगेहिनीम् ॥
त्रिवलीवलयोपेतनाभिनालसुवेशिनीम् ।
रत्नद्वीपे महाद्वीपे सिंहासनसमन्विते ॥
प्रफुल्लकमलारूढां ध्यायेत्तां भवगेहिनीम् ॥

२. काली—शवारूढ़ां महाभीमां घोरदंष्ट्रां हसन्मुखीम् ।
चतुर्भुजां खड्गमुण्डवराभयकरां शिवाम् ॥
मुण्डमालाधरां देवीं ललज्जिह्वां दिगम्बराम् ।
एवं सञ्चिन्तयेत् कालीं श्मशानालयवासिनीम् ॥

३. सरस्वती—घण्टाशूलहलानि शंखमुशले चक्रं धनुः सायकं,
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् ।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिनयनामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ॥

४. बगलामुखी—

मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपरत्नवेदीसिंहासनोपरि गतां परिपीतवर्णाम् ।
पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं देवीं स्मरामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम्
जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम् ।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि ॥

५. त्रिपुरभैरवी—उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां,
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वराम् ।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं,
देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्दे समन्दस्मिताम् ॥

६. धूमावती—विवर्णा चञ्चला दुष्टा दीर्घा च मलिनाम्बरा ।
विमुक्तकुन्तला रूक्षा विधवा विरलद्विजा ॥
काकध्वजा रथारूढ़ा विलम्बितपयोधरा ।
शूर्पहस्तातिरूक्षाक्षा धूतहस्ता वरान्विता ॥
प्रवृद्धघोणा तु भृशं कुटिला कुटिलेक्षणा ।
क्षुत्पिपासार्दिता नित्यं भयदा कलहास्पदा ॥

७. तारा—प्रत्यालीढपदर्पिताङ्घ्रिशवहृद्घोराट्टहासापरा,
खड्गेन्दीवरकर्त्रिखर्परभुजा हुंकारबीजोद्भवा ।
खर्वानीलविशालपिङ्गलजटाजूटैकनागैर्युता,
जाड्यन्न्यस्य कपालकर्तृ जगतां हन्त्युग्रतारास्वयम् ॥

८. षोडशी—बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ।
पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयतीं शिवां भजे ॥

९. भुवनेश्वरी—उद्यदिनद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशां भीतिकरां प्रभजे भुवनेश्वरीम् ॥

१०. छिन्नमस्ता—प्रत्यालीढपदां सदैव दधतीं छिन्नं शिरः कत्रिकां,
दिग्वस्त्रां स्वकबन्धशोणितसुधाधारां पिबन्ती मुदाम् ।
नागाबद्धशिरोमणिं त्रिनयनां हृद्युत्पलालङ्कृतां,
रत्यासक्तमनोभवोपरि हृढां ध्यायेज्जवांसन्निभाम् ॥
दक्षे चातिसिताविमुक्तचिकुरा कत्रीं तथा खर्परं,
हस्ताभ्यां दधती रजोगुणभवा नाम्नापि सा वर्णिनी ।
देश्याश्छिन्नकबन्धतः पतदसृग्धारां पिबन्ती मुदा,
नागाबद्धशिरोमणिर्मनुविदा ध्येया सदा सा सुरैः ॥

११. कमलात्मिका—कान्त्या काञ्चनसन्निभां हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजै-
र्हस्तोत्क्षिप्तहिरण्मयामृतघटैरासिच्यमानां श्रियम् ।
बिभ्राणां वरमब्जयुग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलां
क्षौमाबद्धनितम्बबिम्बविलतां वन्देऽरविन्दस्थिताम् ॥

अथ सप्तशतीपाठफलम्

चण्डीपाठफलं राजन् शृणुष्व गदितो मम ।
एकावृत्त्यादिपाठानां प्रत्यहं पठतां नृणाम् ॥ १ ॥
संकल्पपूर्वं सम्पूज्य न्यस्यांगेषु मनून् सकृत् ।
पश्चाद् बलिप्रदानेन फलमाप्नोति मानवः ॥ २ ॥
उपसर्गोपशान्त्यर्थं त्रिरावृत्तिं पठेन्नरः ।
ग्रहदोषोपशान्त्यर्थं पञ्चावृत्तिं वरानने ॥ ३ ॥
महाभये समुत्पन्ने सप्तावृत्तिमुदीरयेत् ।
नवावृत्त्या भवेच्छान्तिर्मुच्यते चार्त्तिजाद् भयात् ॥ ४ ॥
राजवश्याय भृत्यै च रुद्रावृत्तिमुदीरयेत् ।
अर्कावृत्त्या काम्यसिद्धिर्वैरिनाशश्च जायते ॥ ५ ॥
मन्वावृत्त्या रिपुर्वश्यस्तथा स्त्रीवश्यतामियात् ।
सौख्यं पञ्चदशावृत्त्या श्रियं प्राप्नोति मानवः ॥ ६ ॥
कलावृत्त्या पुत्रपौत्रधनधान्यागमं विदुः ।
राजभीतिविनाशाय वैरस्योच्चाटनाय च ॥ ७ ॥
कुर्यात् सप्तदशावृत्तिं तथाऽष्टादशकं प्रिये ।
महार्णवविमोक्षाय विंशावृत्तिं पठेन्नरः ॥ ८ ॥
पञ्चविंशावर्त्तनाच्च भवेद् बन्धविमोक्षणम् ।
संकटे समनुप्राप्ते दुश्चिकित्सामये तदा ॥ ९ ॥

जातिध्वंसे कुलच्छेदे चायुषो नाश आगते ।
वैरिवृद्धौ व्याधिवृद्धौ धननाशे तथा क्षये ॥ १० ॥
तथैव त्रिविधोत्पाते तथा चैवातिपातके ।
कुर्याद् यत्नात् शतावृत्तिं ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ११ ॥
विपदस्तस्य नश्यन्ति चान्ते याति परां गतिम् ।
श्रियो वृद्धिः शतावृत्त्या राज्यवृद्धिस्तथा भवेत् ॥ १२ ॥
मनसा चिन्तितं देवि ! सिद्ध्येदष्टोत्तराच्छतात् ।
शताश्वमेधयज्ञानां फलं प्राप्नोति सुव्रते ॥ १३ ॥
सहस्रावर्त्तनाल्लक्ष्मीरावृणोति स्वयं स्थिरा ।
भुक्त्वा मनोगतान् कामान् नरो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १४ ॥
यथाऽश्वमेधः क्रतुषु देवानाञ्च यथा हरिः ।
स्तवानामपि सर्वेषां तथा सप्तशतीस्तवः ॥ १५ ॥
नातः परतरं स्तोत्रं किञ्चिदस्ति वरानने ।
भुक्ति-मुक्तिप्रदं पुण्यं पावनानाञ्च पावनम् ॥ १६ ॥
अथवा बहुनोक्तेन किमेतेन वरानने ।
चण्डिकायाः शतावृत्त्या सर्वाः सिद्ध्यन्ति सिद्धयः ॥ १७ ॥

इति प्रयोगसारे सप्तशतीपाठफलम्

तत्कालफलप्रदसिद्धसम्पुटमन्त्राः

(१) भगवत्या कृतं सर्वं—(अ० ४, श्लोक ३४) इस मन्त्र द्वारा सम्पुट करने से धन का लाभ होता है।

(२) त्वं वैष्णी शक्ति—(अ० ११ श्लोक ५) इस मन्त्र से सम्मुट करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(३) दुर्गे स्मृता हरसि—(अ० ४, श्लोक १७) इस मन्त्र से सम्पुट करने से दारिद्रय दुःखादि नाश हो जाते हैं और सभी विपत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं।

(४) ममास्य च भवत्येषा—(अ० १ श्लोक ४५) राजवशीभूत हो जाता है।

(५) स च वैश्यस्तपस्तेपे—(अ० १३, श्लोक १०) इस मंन्त्र से सम्पुट करने से देवी प्रसन्न होकर अनेकों मनोवाञ्छित फल देती है।

(६) यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ् नित्यम्—(अ० १२ श्लोक ९) इस मन्त्र से सम्पुट करने से सभी बाधाएँ दूर हो जाती हैं।

(७) ततो निशुम्भ संप्राप्य चेतना (अ० ९, श्लोक २९) इस मंत्र द्वारा सम्पुट करने से शत्रुओं द्वारा चलाए गये सभी प्रयोग निष्फल हो जाते हैं।

(८) हिनस्ति दैत्यतेजांसि—(अ० ११, श्लोक २७) इस मन्त्र से सम्पुट करने से बालग्रह नष्ट हो जाते हैं तथा पापों का नाश हो जाता है।

(९) एवं देव्या वरं लब्ध्वा—(अ० १३, श्लोक २८) इस मन्त्र से सम्पुट पाठ करने से सभी अभिलाषाएँ पूरी हो जाती हैं।

(१०) या देवी सर्वभूतेषु शान्ति—(अ० ५।४७-४९) इस मन्त्र से सम्पुटित पाठ करने से शान्ति मिलती है।

(११) शरणागतदीनार्त (अ० ११, श्लोक १२) इस मंत्र से सम्पुट करने से विपत्ति का नाश होता है और सभी कार्य सफल हो जाते हैं।

(१२) देवि प्रपन्नार्ति हरे प्रसीद—(अ० ११, श्लोक ३) इस मन्त्र द्वारा सम्पुटित पाठ करने से मनुष्य की आपत्ति मिट जाती है।

(१३) या श्रीः सुकृतिनां—(अ० ४, श्लोक ५) इस मन्त्र से सम्पुट करने से विश्व की रक्षा होती है।

(१४) जयन्ती मङ्गला काली—(अर्गला, श्लोक १) इस मन्त्र से सम्पुट करने से महामारी की शान्ति होती है।

(१५) प्रणतानां प्रसीद त्वं—(अ० ११, श्लोक ३५) इस मन्त्र से सम्पुट करने से देवी प्रसन्न हो जाती हैं।

(१६) सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये—(अ० ११, श्लोक १०) इस मन्त्र से सम्पुट करने से सभी प्रकार के कल्याण की प्राप्ति होती है।

(१७) पत्नीं मनोरमां देहि—(अर्गला, श्लोक २४) इस मन्त्र से सम्पुट करने पर सभी सुलक्षणों से युक्त पत्नी की प्राप्ति होती है।

(१८) शूलेन पाहिनो देवि—(अ० ४, श्लोक २४) इस मन्त्र से सम्पुटित पाठ करने से सभी तरह से रक्षा होती है।

(१९) देव्या यया ततमिदं—(अ० ९, श्लोक ३) इस मन्त्र से सम्पुट करने से सामूहिक कल्याण होता है।

(२०) ते सम्मता जनपदेषु धनानि—(अ० ४, श्लोक १५) इस मन्त्र से सम्पुट करने से अत्यधिक अभ्युन्नत्ति होती है।

(२१) इत्युक्ता सा तदा देवी—(अ० ५, श्लोक ११) इस मन्त्र से सम्पुट पाठ करने से विद्या की प्राप्ति तथा वाणीजन्य दोष दूर हो जाता है।

(२२) सर्वाबाधा प्रशमनम्—(अ० ११, श्लोक ३९) इस मन्त्र से सम्पुटित पाठ करने से सभी बाधाएँ समाप्त हो जाती हैं और पुत्र, धन-धान्य से सुखी होता है।

(२३) एवमुक्त्वा समुत्पत्य—(अ० ३, श्लोक ४०) इस मन्त्र से सम्पुटित पाठ करने या वाराही तन्त्र के अनुसार दस लाख जप करने से मारण कार्य में सफलता मिलती है।

(२४) सृष्टिस्थितिविनाशानाम्—(अ० ११, श्लोक ११) इस मन्त्र के द्वारा सम्पुट करने से लोक में प्रतिष्ठा हो जाती है तथा उच्चपद मिलता है।

(२५) परितुष्टा जगद्धात्री—(अ० १३, श्लोक १३) इस मन्त्र से सम्पुटित पाठ करने से देवी की सिद्धि होती है।

(२६) तयास्माकं वरो दत्तो—(अ० ५, श्लोक ६) इस मन्त्र से सम्पुट पाठ करने से शत्रुओं का विनाश हो जाता है।

(२७) या देवी सर्वभूतेषु—(आ० ५, श्लोक २१-२२) इस मन्त्र से सम्पुट पाठ करने से बुद्धि का विकाश होता है।

(२८) इत्थं यदा यदा बाधा—(अ० ११, श्लोक ५४) इस मन्त्र से सम्पुटित पाठ करने से महामारी दूर हो जाती है।

(२९) ज्ञानिनामपि चेतांसि—(अ० १, श्लोक ५५) इस मन्त्र से सम्पुट पाठ करने से सन्मोहन होता है।

(३०) महामाया हरेश्चैषा—(अ० १, श्लोक ५५) इस मन्त्र से सम्पुट करने से लोग वशीभूत हो जाते हैं।

(३१) देव्या जया ततमिदं—(अ० ४, श्लोक ३) इस मंत्र से सम्पुटित पाठ करने से सामूहिक कल्याण होता है।

(३२) त्वयैतद् धार्यते विश्वम्—(अ० १, श्लोक ७५) इस मन्त्र से पुट करने से सभी कार्य निर्विघ्न समाप्त होते हैं।

(३३) ज्वालाकरालमत्युग्रम्—(अ० ११, श्लोक २६) इस मन्त्र के द्वारा पुट करने से सभी प्रकार के भयों से छुटकारा मिल जाता है।

(३४) मेधासि देवि विदिता—(अ० ४, श्लोक ११) इस मंत्र के द्वारा सम्पुट पाठ करने से साधक के वाणी का प्रभाव समाज में लोकों पर पड़ता है।

(३५) स्मरन्ममैतच्चरितं—(अ० १२, श्लोक २९) इस मन्त्र के द्वारा सम्पुट पाठ करने से शत्रुओं के मुख का स्तम्भन होता है। पुत्र की भावना से यदि सम्पुट किया जाय तो पुत्र की प्राप्ति भी होती है।

(३६) मम वैरिवशं जातः—(अ० १, श्लोक १४) इस मन्त्र से सम्पुट करने से सभी शत्रु वशीभूत हो जाते हैं।

(३७) या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण (अ० ५।५६-५८) इस मंत्र से सम्पुट करने से सम्पत्ति की वृद्धि होती है।

(३८) उपसर्गाः शमं यान्ति—(अ० १२, श्लोक १७) इस मंत्र से सम्पुट पाठ करने से दुःस्वप्नजन्य क्लेश समाप्त हो जाता है।

(३९) रोगान् शेषान्—(अ० ११, श्लोक २९) इस मन्त्र के द्वारा सम्पुटित पाठ करने से रोगों का नाश होता है।

(४०) इत्थं निशम्य देवानां—(अ० २, श्लोक ९) इस मन्त्र से संपुटित पाठ करने या तीन हजार जप करने से ही संपत्ति की वृद्धि होती है।

(४१) त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन—(अ० ४, श्लोक २३) इस मन्त्र द्वारा सम्पुटित पाठ करने से शत्रुओं का विनाश होता है।

(४२) ततो वव्रे नृपो राज्यम्—(अ० १३, श्लोक १७) इस मन्त्र के द्वारा सम्पुटित पाठ करने से स्वराज्य का लाभ होता है।

(४३) सैषा प्रसन्ना वरदा—(अ० १, श्लोक ५७) इस मंत्र से सम्पुट पाठ करने से बन्दिमोचन होता है।

(४४) धर्म्याणि देवि सकलानि—(अ० ४, श्लोक १६) इस मन्त्र द्वारा सम्पुट पाठ करने से सम्पूर्ण किए हुए कर्म सफल होते हैं।

(४५) बलादाकृष्य—(अ० १, श्लोक ५६) इस मंत्र से सम्पुट पाठ करने से सभी लोगों का संमोहन होता है।

(४६) देहि सौभाग्यमारोग्यं—(अर्गला, श्लोक १२) इस मन्त्र से सम्पुट करने से महामारी का नाश होता है।

(४७) सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य—(अ० ११, श्लोक ८) इस मन्त्र से सम्पुटित पाठ करने पर स्वर्ग और मुक्ति मिलती हैं।

(४८) सर्वस्वरूपे सर्वेशे—(अ० ११, श्लोक २४) इस मन्त्र से सम्पुटित पाठ करने से भय का नाश होता है।

(४९) यस्याः प्रभावमतुलं—(अ० ४, श्लोक ४) इस मन्त्र से सम्पुट पाठ करने से सभी अशुभ कर्मों का नाश हो जाता है।

(५०) अपने इष्ट मंत्र से सम्पुटित पाठ करने से इष्ट देव प्रसन्न होते हैं।

(५१) "ऐं" इस मंत्र से सौ आवृति सम्पुट करने से विद्या की प्राप्ति होती है।

(५२) "श्रीं" इस मंत्र से सम्पुटित पाठ करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

(५३) उच्चाटन के लिए सात दिन तक तेरह आवृत्ति प्रति दिन इस "ह्रीं" बीज मंत्र से सम्पुट पाठ करे।

(५४) सर्वभूता यदा देवि·—(अ० ११ श्लोक ७) इस मंत्र से सम्पुट करने से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(५५) रक्षांसि यत्रोग्नविषाश्च—(अ० ११, श्लोक ३२) इस मंत्र से सम्पुट करने से विविध उपद्रवों का नाश होता है।

(५६) विश्वेश्वरि त्वं परिपासि—(अ० ११, श्लोक ३३) इस मंत्र से सम्पुट पाठ करने से विश्व का कल्याण होता है।

(५७) विधेहि देवि कल्याणं·—(अर्गला श्लोक १४) इससे सम्पुट करने से भुक्ति और मुक्ति की प्राप्ति होती है।

(५८) न तेभ्यः सर्वदा भक्त्या—(अर्गला, श्लोक ९) इस मंत्र से सम्मुट पाठ करने से पाप का नाश और भक्ति की वृद्धि होती है।

(५९) हे देवि जगतां मातः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि।
नन्दगोपसुतं कान्तमस्मभ्यं देहि सुव्रते ॥

इस मंत्र से सम्पुटित पाठ करने से पुत्र की प्राप्ति होती है।

(६०) दुर्गे देवि नमस्तुभ्यं सर्वकामार्थसाधिके।
मम सिद्धिमसिद्धिं वा स्वप्ने सर्वं प्रदर्शय ॥

इस मंत्र से सम्पुट करने से स्वप्न की सिद्धि हो जाती है।

(६१) करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी—(अ० ५, श्लोक ८१) इस मंत्र से सम्पुट करने से विपत्ति का नाश और सुख की प्राप्ति होती है।

(६२) विद्याः समस्तास्तव देवि—(अ० ११, श्लोक ६) इस मंत्र से सम्पुट करने से समस्त विद्याओं की प्राप्ति तथा सभी स्त्रियों में मातृ की भावना आती है।

(६३) शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधानम्·—(अ० ४, श्लोक १०) इस मंत्र द्वारा सम्पुटित पाठ करने से सुख की प्राप्ति तथा दरिद्रता, दुःख, भय आदि का नाश होता है।

(६४) करोतु सा नः शुभ·—(अ० ५, श्लोक ८१) इस आधे मंत्र से सम्पुट करने से सभी कार्य की सिद्धि होती है।

(६५) 'वषट् ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अमुकनामाख्यं वषट् मे वश्यं कुरु कुरु स्वाहा' इस मन्त्र से ग्यारह दिन तक प्रति दिन एक हजार वार हवन करने से आदमी वशीभूत हो जाता है।

—:०:—

अथ दुर्गासप्तशतीपाठभेदाः

[श्रीदुर्गा सप्तशती की हस्तलिखित एवं छपी पुस्तकों को ध्यान पूर्वक देखने से अनेक पाठभेद दिखाई पड़ते हैं। सभी पाठभेदों का संग्रह यहाँ प्रकाशित किया जाता है जिससे भक्तजनों को पाठ करने में सुविधा मिल सके]

प्रथमोऽध्यायः

श्लोकाः	मान्यपाठाः	पाठभेदाः
५	कोलाविध्वंसिनस्तदा	कोलाविध्वंसिनस्तदा
८	तत्रापि स्वपुरे ततः	तत्रापि स्वपुरे सतः
१०	(१) द्विजवर्यस्य मेधसः	द्विजवर्यैः सुमेधसः
	(२) मुनिशिष्योपशोभितम्	मुनेः शिष्योपशोभितम् ।
१२	ममत्वाकृष्टचेतनः	ममत्वाकृष्टमानसः
१७	ददर्श सः	ददर्श ह
२२	(१) विहीनश्च धनैर्दारैः	विहीनः स्वजनैर्दारैः
	(२) आदय	आदायि
३०	भावानस्मद्गतं वचः	भवाम्यस्मद्गतं वचः
३२	पतिस्वजनहार्दञ्च	प्रीतिस्वजनहार्दञ्च
३३	निःश्वासः	निश्वासा
४१	गतराज्यस्य	मम राजस्य
४२	निकृतः	(१) निष्कृतः
		(२) निःकृतः
४३	स्वजनेन च	स्वजनैरपि
४४	किमेतन्महाभाग	केनेतन्हाभाग
४८	(१) विषयश्च महाभाग	विषयाश्च महाभाग
	(२) याति चैव पृथक्-पृकक्	यातिश्चैवं पृथक्-पृथक्
४९	किंतु ते	किंनु ते
५१	(१) तुल्यमन्यत्	न तदन्यत्
	(२) पतङ्गाञ्छावचञ्चुपु	पतगाञ्छावञ्चुपु

श्लोकाः	
५२ कणमोक्षादृतान्	कणमोक्षाहितान्
५३ नन्वेतान्	१ नन्वेतानि २ नन्वेते
५४ संसारस्थितिकारिणा	संसारस्थितिकारिणः
५५ हरेश्चैषा	१ हरेश्चैतत् २ हरेश्चैव
५६ जगदेतच्चराचरम्	त्रैलोक्यं सचराचरम्
६१ यत्प्रभावा च	यत्स्वभावा च
६२ ब्रह्मविदाँ वर	ब्रह्मन् विदा वर
६६ एकार्णवीकृते	एकार्णवे कृते
७० विबोधनार्थाय	प्रबोधनार्थाय
७१ नेजसः प्रभुः	तेजसां प्रभुः
७३ वषट्कारः स्वरात्मिका	वषट्कारस्वरात्मिका
७५ (१) सन्ध्या सावित्री	सां त्वं साबित्री
(२) त्वं देवि जननी	१ त्वं देवी जननी, २ त्वं वेदजननी, त्वं देवजननी
(३) त्वयैतद्धार्यते सर्वं	त्वयैतद्धार्यते विश्वं
७७ जगन्मये	जगन्मयि
७८ (१) महामोहा च भवती	महामोहा भगवती
(२) महासुरी	महैश्वरी
८१ बाणभुशुण्डीपरिघायुधा	वाणा भुसुण्डीपरिघायुध
८३ (१) स्तूयसे तदा	स्तूयसे मया
(२) जगत्पात्यत्ति	जगत्पातत्ति
८७ बोधश्च	भावश्च
९२ मधुकैटभौ	मधुकैटौ
९३ क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं	क्रोधरक्तेक्षणौ हन्तुं
९८ एतावद्धि वृतं मम	एतावद्धि वृतं मया

द्वितीयोऽध्यायः

८ शरणं वः प्रपन्नाः स्मो	शरणञ्च प्रपन्नाः स्मः

श्लोकाः

९ भ्रुकुटी कुटिलाननौ	भृकुटी कुटिलाननौ
११ तच्चैक्यं समगच्छत	तच्चैक्यं समपद्यत
१५ (१) मध्यञ्चैन्द्रेण चाभवत्	मध्यमैन्द्रेण चाभवत् ।
(२) जङ्घोरू	जंघोरु
१८ श्रवणावनिलस्य च	श्रवणे अनिलस्य च
२० समुत्पाद्य	समुत्पाठ्य
२१ बाणपूर्णौ	बाणपूर्णौ
२२ समुत्पाद्य	समुत्पाठ्य
२४ तस्याश्चर्म	तस्यै चर्म च
२६ शुभ्रं	दिव्यं
२७ अङ्गुलीयकरत्नानि	अंगुरीयकरत्नानि
३४ जयेति देवाश्च मुदा	जयेति च मुदा देवास्तामूचुः
तामूचुः सिंहवाहिनीम्	सिंहवाहनम्
४० शस्त्रास्त्रैः	शास्त्रस्त्रैरति
४१ चामरश्चान्यै	चामराश्चान्यः
४३ गजवाजिसहस्रौघैरनेकैः परिवारित	गजवाजिसहस्रौघैरनेकैरुग्रदर्शनः
४४ विडालाख्योऽयुतानाञ्च	विडालाक्षो महादैत्यः
४८ केचिच्च चिक्षुपुः	केचिच्चचिक्षिपुः
५१ शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी	(१) शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका
	(२) ,, चाम्बिक
५४ देवी शक्युपबृंहिताः	देवीशक्त्युबृंहितान्
अवादयन्तः	(१) अवादयंतः, (२) आवादयन्तः
५७ अकर्षयत्	अकर्षत्
५८ विपोथिता	विपुस्थिता
५९ निरन्तराः	निरकृताः निरन्तरं निरन्तर
६० (१) श्योनानुकारिणः	(१) शैलानुकारिणः (२) श्येनानु-
(२) त्रिदशार्दनाः	कारिणः,(३)शल्यनुकारिणः त्रिदशार्द्दिनः
६३ तूर्यलयाश्रिताः	तूर्यलयान्विताः
६४ खड्गशक्त्युष्टिपाणायः	खड्गं शक्त्यष्टपाणयः

श्लोकाः		
६९	(१) महासुरैः	तथासुरैः
	(२) यथैषां तुतुषुर्देवाः	यथैनां तुष्टुवुर्देवाः

तृतीयोऽध्यायः

६	अभ्यधावत तां देवीं	अभ्यधावत् ततो देवीं
८	ततो जग्राह शूलं स	ततो जग्राह तच्छूलं
९	जाज्वल्यमानं तेजोभीरविबिम्ब	जाज्वल्यमानं तेजोभिरविबिम्ब
१०	तच्छूलं शतधा तेन नीतं	तेन तच्छतधा नीतं शूलं
१४	गजकुम्भान्तरे स्थितः	गजकुम्भान्तरस्थितः
१७	दन्तमुष्टितलैः	दत्तमुष्टितलैः
१९	त्रिनेत्रा च	त्रिनेत्रं च
२५	पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप	पर्वतानुच्चैश्चिक्षेप
२७	(१) खण्डं-खण्डं ययुर्धराः	(१) खण्डखण्डं, ययु०
		(२) खण्ड-खण्ड मयु०
	(२) श्वासानिलास्ता शतशो	(१) श्वासानिलाहताः शीर्णाः
		(२) श्वासानिलास्ताऽविशीर्ण
३२	कर्षतस्तु करं देवी	कर्षतस्तत् करं देवी
३३	वपुरास्थितः	वपुराश्रित
४१	अर्द्धनिष्क्रान्त एवासीत्	अर्द्धनिष्क्रान्त एवाति
४२	शिरश्छित्वा निपातितः	महाकाल्या निपातितः
२	सुरारिले च देव्या	सुरारिबले च देवाः

चतुर्थोऽध्यायः

४	नाशाय चाशुभभयस्य	नाशाय चासुरभयस्य
६	(१) किंचाहवेषु चरितानि	किंचाहवे सुचरितानि
	तवाद्भुतानि	तवाति यानि
	(२) देव्यसुरदेवगणादिकेषु	अमरदैत्यगणादिकेषु
७	(१) दोषैः	देवैः
	(२) अव्याकृता हि	अव्याकृतासि

श्लोकाः		
९	(१) महाव्रता त्वं	महाव्रता च
	(२) अभ्यस्यसे	अभ्यस्यते
	(३) विद्यासि	विद्यास्ति
१०	उद्गीथ	उद्गीत
१२	(१) कनकोत्तमकान्तिकान्तम्	कनकोत्तमकान्ति कान्ति
	(२) आतरुषा	रुषा
१४	(१) प्रसीद परमा	प्रसादपरमा
	(२) भवती भवाय	भव-भावनाय
	(३) विनाशयसि	विनाशयति
१५	धर्मवर्गः	बन्धुवर्गः
१६	लोकत्रयेऽपि	लोकद्वयेऽपि
१८	(१) उपैति	उपैतु
	(२) नाम	नाम्ब
१९	(१) शास्त्रपूजा	शस्त्रपूतान्
	(२) तेष्वपि तेऽतिसाध्वी	(१) तेष्वपि तेषु साध्वी (२) तेष्वहितेषु साध्वी
२१	हृतदेवपराक्रमाणां	हतदेवपराक्रमाणां
२२	दृष्टा	दृष्ट्वा
२६	यानि चात्यर्थघोराणि	यानि चात्यन्तघोराणि
३०	दिव्यैर्धूपैश्च धूपिता	(१) दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता (२) दिव्यैर्धूपैः सुधूपिता
३२	यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम्	यत्तन्मत्तोभिवाञ्छितम्
३५	यदि चापि	यदि वापि
३७	अस्मत्प्रसन्ना	अस्मत्प्रपन्ना
४१	गौरीदेहात्सा समुद्‌भूता	गौरीदेहा सा समुद्भूता
४२	तच्छृणुष्व	तच्छृणुस्व

पंचमोऽध्यायः

५	संस्मरन्त्यपराजिताम्	स्मरन्ति स्मापराजिताम्

श्लोकाः

९ नियताः प्रणताः स्म ताम्	नियत्यै प्रणतात्मनाम्
११ (१) प्रणतां वृद्ध्यै ; कुर्मो	(२) प्रणता वृद्ध्यै ; कूर्म्यै
१२ सारायै सर्वकारिण्यै	सारायै सर्वकारिणि
१३ कृत्यै	कृत्यै
७७ (१) भूतानां चाखिलेषु	भूतानामखिलेषु
(२) व्याप्तिदेव्यै	व्याप्त्यै देव्यै
७८ चितिरूपेण	चित्तिरूपेण
८१ (१) अभीष्टसंश्रयात्	अभीष्टसंश्रया
(२) सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता	सुरेन्द्रेश-दिनेश-सेविता
८४ एवं स्तवादियुक्तानाम्	एवं स्तवाभियुक्तानाम्
८६ समेतैः	समस्तैः
८८ तस्यां विनिर्गतायान्तु	तस्यां विनिर्गता या तु
कृष्णाभूत्	कृष्णाभूत
८९ सुमनोहरम्	सुमनोहराम्
९० अतीवसुमनोहरा	सातीव सुमनोहरा
९९ (१) वह्निरपि	वह्निश्चापि
(२) अग्निशौचे च वाससी	अग्निशौचेयवाससी
१०२ महासुरम्	महासुरः
१०४ सा देवी तां ततः प्राह	तां च देवीं ततः प्राह
१०६ त्रैलोक्ये परमेश्वरः	त्रैलोक्यपरमेश्वरः
१०९ (१) त्रैलोक्ये वररत्नानि	(१) त्रैलोक्यवररत्नानि
(२) गजरत्नं च हृत्वा	(२) गजरत्नानि च हृतम्
११९ कृतापुरा	कृता मया
१२९ (१) स त्वं गच्छ मयोक्तं ते	(१) स त्वं गच्छमयैवोक्त
(२) यदेतत्सर्वमादृतः	यदेतत्सर्वमादितः

षष्ठोऽध्यायः

२ समाचष्ट	समाचष्टे

श्लोकाः	
९ ततो बलान्नयाम्येष	(१) ततो बलान्नयाम्यद्य,
	(२) ,, नयाम्येष्य
१३ भस्म सा चकाराम्बिका	भस्मसाञ्चकाराम्बिका
१४ अम्बिका	अम्बिकाम्
१५ स्ववाहनः	(१) सवाहनः; (२) स्ववाहनम्
१६ (१) आक्रम्य चाधरेण	(१) आक्रान्त्या चाधरेण
	(२) आक्रम्य चरणेन
	(३) आक्रान्त्या चरणेन
(२) स जघान महासुरान्	(१) जघान सुमहासुरान्
	(२) जघान स महासुरान्
१७ कोष्ठानि	कोष्ठांश्च
२० बलञ्च क्षयितं	(१) बलं च क्षपितम्,
	(२) वलस्य क्षयणम्
२२ (१) बहुभिः; (२) तत्र गच्छत	(१) बहुलैः, (२) गच्छतं तत्र

सप्तमोऽध्यायः

२ आज्ञप्तास्ते	आज्ञाप्तास्तु
११ चर्वयन्त्यति	चर्वयत्यति
१२ अपोथयत्	(१) असूदयत्, (२) अपोटयत्
१४ (१) दुरातमनाम्, (२) तया	(१) महात्मनाम् (२) तदा
१५ हतास्तया	हता रणे
१६ अतिभीषणाम्	अतिभीषणम्
१७ मुण्ड क्षिप्तैः	मुण्डक्षिप्तैः
२० उत्थाय च महासिहं देवि	उत्थाय च महासिं सा
२१ अथ मंडोऽभ्यधावत्तां	अथ मुण्डोऽप्यधावत्तां
२३ मुण्डमेव च	मौण्डमेव च
२७ ख्याता देवि	ख्याता देवी

श्लोकाः

अष्टमोऽध्यायः

२ क्षयितेष्व	क्षपितेष्व
४ चतुरशीतिः	(१) चतुराशीतिः (२) चतुरशीति
५ (१) कोटिवीर्याणि	कोटिसंख्यानि
(२) धौम्राणां	आयातं
८ आयन्तं	आयातं
९ (१) सिंहो महानादमतीव	(१) सिंहो महानादान्
	(२) स च सिंहो महानादं
(२) तान् नादाम्	(१) तन्नादन्, (२) तन्नादान्
(३) अम्बिका चोबबृंहयत्	अम्बिका चाप्यबृंहयत्
१० (१) नादापूरितदिङ्मुखा	(१) शब्दापूरितदिङ्मुखा
(२) दिग्ये	(२) दिज्ञे
११ सरोषैः	शरोघैः
१२ भवायामरसिंहानाम्	भवायासरसैन्यानाम्
१३ तथेन्द्रस्य च शक्तयः	तथैवेन्द्रस्य शक्तयः
१५ हंसयुक्तविमानागे	हंसयुक्तविमानस्था
१९ यज्ञवाराहमतुलं रूपं	जज्ञे वाराहमतुलं रूपं
या विभ्रतो हरेः	या विभ्रती हरेः
२२ (१) परिवृतस्ताभिरीशानो	परिवृता ताभिरीशाना
(२) चण्डिकाम्	चण्डिका
२३ भीषणा	पाशिनी
२८ (१) दौत्येन, (२) शिवदूतीति	(१) दूत्येन, (२) शिवदूता
२९ यत्र	यतः
३० ववर्षुः	ववृषुः
३१ सा च तान् प्रहितान्	सा च तत्प्रहितान्
३२ (१) तस्याग्रतस्तथा	तस्यास्तथाग्रतः
(२) खट्वांगपोयितांश्चारीन्	खट्वांगपोथितांश्चान्यात्

श्लोकाः

३३ जलाक्षेपहतवीर्यान्	(१) जलाक्षेपाद्धतवीर्यान्
	(२) जलक्षेपहतवीर्या
३५ पेतुर्विदारिता पृथ्व्यां	पेतुर्विदारित भूमौ
३६ वराहमूर्त्या	वाराहमूर्त्या
३७ नादापूर्णसिगम्बरा	नादापूर्णदिङ्मुखा
३८ शिवदूत्यभिदूषिता	शिवदूत्याभिदूषिताः
४१ (१) मेदिन्यां तत्प्रमाणः	मेदिन्यास्तप्रमाणः
(२) तत्प्रमाणस्तासुरः	तत्प्रमाणो महासुरः
४३ वह सुस्राव शोणितम्	तस्य सुस्राव शोणितम्
५३ (१) प्राह सत्वरा	प्राहसत्तदा
(२) विस्तीर्ण वदनं	विस्तरः वदनं
५४ वक्त्रेणानेन वेगिना	वक्त्रेणानेन वेगिता
५९ (१) यतस्ततस्तद्वक्त्रेण	(१) यतस्ततः स्ववक्त्रेण
	(२) इतस्ततस्तद्वक्त्रेण
६० वज्रेण	चक्रेण
६१ शस्त्रसंधसमाहतः	(१) शस्त्रसंहतितो हतः
	(२) शस्त्रसंहतिमाहतः
६३ तेषां मातृगणो जातो	हते मातृगणस्तस्मिन्

नवमोऽध्यायः

६ मुद्वहन्	मुद्वमन्
९ ततो युद्धमतीवासीत्	तयोर्युद्धमतीवासीद्
१० चण्डिका स्वशरोत्करैः	चण्डिकाशु शरोत्करैः
१२ क्षुरप्रेण	खुरप्रेण
१४ तच्चाप्यचूर्णयत्	तञ्चाप्यचूर्णयत्
१५ आविध्याथ गदां	(१) अथादाय गदां,
	(२) आविव्याध गदां
१७ प्रययो हन्तुमन्बिकाम्	ऽययौ योद्धुमम्बिकाम्

श्लोकाः	
२१ गां तथैव दिशो दश	गौ तथोपदिशो दश
२३ अट्टाट्टहासम्	अट्टट्टहासम्
२८ तदाभिहतो	तदा निहतो
३० चक्रायुधेन	चक्रायुतेन
३४ निशुम्भममरार्दनम्	निशुम्भमरिमर्दनम्
३७ (१) ततः सिंहश्चखादोग्रं दंष्ट्रा	(१) तत सिंहश्चखादोग्रदंष्ट्रा (२) ततः सिंहश्चखादोग्रान्
(२) क्षुण्णशिरोधरान्	क्षुण्णमहीतलाम्
(३) तथा काली	तदा काली
४० खण्डं-खण्डञ्च	खण्ड-खण्डञ्च

दशमोऽध्यायः

३ (१) बलावलेपाद् दुष्टे	बलावलेपदुष्टे
(२) यातिमानिनी	अतिमानिनी
१९ (१) तथास्त्रैश्चैव दारुणैः	तथास्त्रैश्च सुदारुणैः
(२) भूयः	भूप
१३ लीलयैवोग्र	लीलैवोग्रम्
१५ (१) शक्तिमथाददे	शक्ति समाददे
(२) करे स्थिताम्	करस्थिताम्
१६ अभ्यधावत् तदा देवीं	अभ्यधावत तां देवीं
१८ हताश्वः	हतासिः
२३ चक्रतुः प्रथमं सिद्ध	(१) चक्रतुः प्रथमं युद्धं, (२) चक्रतुः प्रधनं
२४ (१) उत्पाटच	(१) उत्पात्य, उत्क्षिप्य
(२) भ्रामयामास	भ्रमयामास
२५ वेगितः	(१) वेगतः, वेगवान्
२७ विक्षतः	विक्षिसः
२८ स्वास्थ्यमतीवाप	सुस्थमतीवासीत्
२९ तथासंस्तत्र पातिते	देव्या शुम्भे निपातिते
३२ शान्ता दिग्	शान्तदिग्

श्लोकाः

एकादशोऽध्यायः

२ (१) इष्टलाभात्	इष्टलम्भाद्
(२) विकासिवक्त्राब्ज-विकासिताशाः,	(१) विकसिवक्त्रास्तुविकासिताशाः
	(२) विकासिवक्त्राःसुविकासिताशाः,
	(३) विकासिवक्त्रांशुविकासताशाः
४ आप्यायते	आप्याययते
७ स्वर्गमुक्ति	भुक्तिमुक्ति
९ (१) कलाकाष्टादि	काष्ठकलादि
(२) परिणाम	परिमाण
(३) शक्ते	सक्ते
१० (१) मंगल्ये	मांगल्ये
(२) त्र्यम्बके	त्र्यम्बिके
११ गुणमये	गुणमयि
१५ कुक्कुटवृते	कुक्कुटघृते
१६ गृहीतपरमायुधे	गृहीतविविधायुते
१९ सहस्रनयनोज्ज्वले	सहस्रनयने ज्वले
२० हतदैत्यमहाबले	हतदैत्ये महाबले
२२ (१) लक्ष्मि लज्जे	लक्ष्मी लज्जे
(२) पुष्टिस्वधे	पुष्टे स्वधे
(३) महारात्रि	महारात्रे
२३ भूति	भूते
२५ सर्वभीतिभ्यः	सर्वभूतेभ्यः
२७ पापेभ्यो नः सुतानिव	पापेभ्यः स्वसुतानिव
३१ विभ्रामयत्येतद्	विभ्रामस्येतद्
३३ (१) विश्वेश्वरि	विश्वेश्वरी
(२) भवती भवन्ति	भवती भवाय
३४ (१) सर्वजगतां प्रशमं	सर्वजगताञ्च शर्म
(२) उत्पात	ह्युत्पात

श्लोकाः		
३७	वृणुध्वम्	वृणीध्वम्
३९	सर्वाबाधा	सर्वबाधा
४२	नन्दगोपगृहे	नन्दगोपकुले
४३	वैप्रचित्तांस्तु	वैप्रचित्तांश्च
४६	संस्तुता	संस्मृता
४७	निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन्	निरीक्षिष्ये यतो मुनीन्
४९	बधिष्यामि	हनिष्यामि
५१	भक्षयिष्यामि	क्षयिष्यामि

द्वादशोऽध्यायः

२	नाशयिष्यामि	शमयिष्यामि
३	घातनम्	सूदनम्
७	परं स्वस्त्ययनं हि तत्	परं स्वस्त्ययनं महत्
११	(१) बलिपूजां	बलिं पूजां
	(२) प्रीत्या	प्रीता
१३	(१) सर्वाबाधा-विनिर्मुक्तो	सर्वबाधा-विनिर्मुक्तो
	(२) धनधान्यसुतान्वितः	धनधान्यसमन्वितः
१४	(१) तथा चोत्पत्तयः शुभाः	(१) तथोत्पत्तीः पृथक् शुभाः
	(२) पराक्रमञ्च	(२) तथा चाधीत्य भक्तितः
१५	उपपद्यते	पराक्रमांश्च उपजायते
१७	दुःस्वप्नञ्च नृभिर्दृष्ठं सुस्वानमुपजायते	दुस्वप्नञ्च नृभृर्दृष्टः सुस्वान उपजायते
२०	सन्निधिकारकम्	सानिध्यकारकम्
२१	प्रोक्षणीयैः	प्रेक्षणीयैः
२२	सकृत् सुचरिते	सकृदुच्चरिते सकृच्च चरिते
२३	जन्मनां	जन्मिनां
२५	(१) ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु	ब्रह्मणा च कृता यास्ताः
	(२) प्रयच्छन्ति शुभां मतिम्	प्रयच्छन्ति शुभां गतिम्

श्लोकाः		
२	(१) चाज्ञप्तो	च ज्ञप्तः
	(२) पोते महार्णवे	पोते सुदुस्तरे
२८	(१) पतस्तु चापि	पतत्सु वापि
	(२) सर्वा बाधासु	सर्वबाधासु
३४	जगद्विध्वंसिनि	जगद्विध्वंसके
३७	(१) सा याचिता च	सा याचितार्थं
	(२) तुष्टा ऋद्धि प्रयच्छति	तुष्टा वृद्धि प्रयच्छति
४१	गतिं शुभाम्	तथा शुभम्

त्रयोदशोऽध्यायः

३	तथैव्र	तथैव
४	तामुपैहि	तामुपेहि
७	स नराधिपः	क्षत्रियर्षभ
९	संस्थितः	मास्थित
११	(१) निराहारी यताहारो	यताहारी यतान्मानो
	(२) तन्मनस्को समाहितो	तन्मनस्को जितेंद्रियो
१५	(१) प्राप्यतां	प्रार्थ्यता
	(२) ददामि तत्	(१) ददामि वाम्, (२) ददामि ते
१७	अत्रैव च	(१) अत्रापि च, (२) अत्र चैव
२०	स्वं राज्यं प्राप्स्यते	स्वं राज्यं प्राप्यते

दुर्गासप्तशती-श्लोकानुक्रमणिका

	अ०	श्लो०		अ०	श्लो०
अङ्गुलीयक	२	२७	अस्त्राण्यनेक	२	२८
अट्टाट्टहासमशिवं	९	२३	अहं विभूत्या बहु०	१०	८
अतिविस्तारवदना	७	८	आजगाम महावीर्यः	९	८
अतिसौम्यातिरौद्रायै	५	१३	आज्ञप्तास्ते ततो	७	२
अतीव तेजसः	२	१२	आधारभूता जगतस्त्व०	११	४
अतुलं तत्र	२	१३	आयातं चण्डिका दृष्ट्वा	८	८
अथ क्रुद्धं महासैन्य०	६	१४	आराधिता सैव	१३	५
अथ मुण्डोऽभ्यधावत्	७	२१	आविध्याथ गदां	९	१५
अददज्जलधि०	२	२९	आस्तीर्यशेष	१	६७
अद्य सर्वबलैर्दैत्याः	८	४	इति कृत्वा मतिं	५	७
...नुवृत्ति ध्रुवं	१	१५	इति क्रोधसमाध्मात	३	२८
...न्येषां चैव	२	११	इति चेति च वक्तव्या	५	१०३
...न्येषामपि दैत्यानां	५	१२४	इति तस्य वचः	१३	७
...भ्यधावत	२	३७	इति दत्वा तयोर्देवी	१३	२७
...मार्त्यैर्बलिभि०	१	८	इति प्रसादिता	४	३९
अमायतातिमहता	२	३३	इति मातृगणं	८	३९
अयुतानां शतैः	२	४३	इत्थं निशम्य	२	९
अयुध्यतायुतानां च	२	४२	इत्याकर्ण्य वचो देव्याः	६	२
अर्धचन्द्रं तथा	२	२६	इत्याज्ञाप्यासुर०	८	७
अर्धनिष्क्रान्त	३	४२	इत्युक्त्वा सा तदा	५	११६
अर्हणाञ्चक्रतुस्तस्याः	१३	११	इत्युक्त्वा सा भगवती	१२	३२
अवलिप्तासि मैवं	५	१२३	इत्युक्तो सोऽभ्यधावत्	६	१३
अवादयंस्तथैवान्ये	१०	३१	इत्येतत्कथितं	४	४०
अव्याहताज्ञ सर्वासु	५	१०७	इन्द्राद्याः सकला	५	१२५
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां	११	४	इन्द्रियाणामधिष्ठात्री	५	७७
असिना निहता केचित्	७	१५	ईषत्सहासममलं	४	१२
असुरान् भुवि	२	५७	उक्तवन्तौ	१	९५
असुरासृग् वसापङ्क	११	२८	उग्रास्यमुग्रवीर्यं	३	१९

	अ०	श्लो०		अ०	श्लो०
उत्थाय च महासिंहं	७	२०	कणमोक्षादृतान्म०	१	५२
उत्पत्य च प्रगृह्य०	१०	२२	कथं ते किं नु	१	२५
उत्पन्नेति तदा	१	६६	कबन्धा युयुधुर	२	६३
उत्पातमेघाः सोल्का	१०	२९	कबन्धाश्छिन्नशिरसः	२	६४
उदग्रञ्च रणे	३	१७	कमण्डलुजलाक्षेप	८	३३
उपवृष्टौ कथाः	१	३८	करेण च महासिंहं	३	३२
उपसर्गाः शमं यान्ति	१२	१७	करोमि किं यन्न	१	३४
उपसर्गानशेषांस्तु	१२	८	कलाकाष्ठादिरूपेण	११	९
एकं जग्राह केशेषु	७	१२	कल्याणैः प्रगता वृद्धै	५	११
एकबाह्वक्षिचरणाः	२	६२	कांश्चित् करप्रहारेण	६	१६
एकार्णवेऽहिशय०	१	९२	कांश्चित्तुण्डप्रहारेण	३	२२
एकैवाहं जगत्यत्र	१०	५	कारितास्ते	१	८५
एतत्कृतं यत् कदनं त्वयाद्य	११	३०	काळिका दोर्हृदा	८	६
एतत् ते कथितं	१३	२	कालदण्डाद्यमो	२	२३
एतत्ते वदनं सौम्य	११	२५	कालरात्रिर्महा	१	७९
एतद्वः कथितं	२	८	किं करोमि न	१	३१
एतस्मिन्नन्तरे भूप	८	१२	किं वर्णयाम तव	४	६
एभिः स्तुवैश्च मां नित्यं	१२	२	किन्त्वत्र यत्	१	११९
एभिर्हतैर्जगदुपैति	४	१८	क्रिमन्येन वरेणात्र	१	९८
एवं देव्या वरं लब्ध्वा	१३	१८	किरीटिनि महावज्रे	११	१९
एवं दैतेन्द्र रत्नानि	५	१००	कुलिशोनाहतस्याशु	८	४३
एवं भगवती देवी	१२	३६	कृत्वा तु तौ	१	३७
एवं संक्षीयमाणे	३	२१	केचिद्दिवा तथा	१	४९
एवं स्तवादियुक्तानां	५	८४	केचिद्विनेशुरसुराः	९	४१
एवं स्तुता तदा	१	८९	केचिन्निपतिता	२	५९
एवं स्तुता	४	२९	केनोपमा भवतु	४	२२
एवमुक्त्वा समुत्पत्य	३	४०	केशेष्वाकृष्य	६	२७
एवमेतद् बली शुम्भो	५	१२८	केषांचित्पाटयामास	६	१७
एतमेतद्यथा प्राह	१	३०	कोटिवर्षाणि पञ्चाशत्	८	५
एवमेषा समुत्पन्ना	१	१०४	कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ	९	१४
ऐन्द्री कुलिशपातेन	८	३५	कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः	९	३८
ऐरावतः समानीतो	५	९४	कौमारीशक्तिहस्ता	८	१७

	अ०	श्लो०
क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं	१	९३
क्षणेन तद्बलं	७	१६
क्षणेन तद्बलं सर्वं	६	१९
क्षणेन तन्महा	२	६७
क्षीरोदमथनोद्भूत०	५	११०
क्षीरोदश्चामलं	२	२५
खड्गप्रभानिकर	४	२०
खडगशूलगदादीनि	४	२७
खड्गादिभिश्च	२	५६
खण्डं खण्डं चक्रेण	९	४०
गर्ज गर्ज क्षणं	३	३८
गृहीतोग्रमहाचक्रे	११	१७
चकार कोपमतुलं	९	५
चचारासुरसैन्येषु	२	५२
चचाल वसुधा	२	३४
चण्डाट्टहासैरसुरे:	८	३८
चण्डे च निहते दैत्ये	८	२
चिक्षेप च	३	९
चिच्छेद च धनुः	३	५
चिच्छेदापततस्तस्य	१०	१९
चितिरूपेण या	५	८०
चुकोप दैत्याधिपतिः	६	२१
छत्रं ते वारुणं गेहे	५	९७
छिन्ने चर्मणि खड्गे	९	१३
छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्र	१०	१५
जगाम सद्यस्तपसे	१३	९
जघान रक्तबीजं	८	६१
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः	१०	३२
जनताजानता वापि	१२	११
जानतोऽपि यथाज्ञस्य	१	४२
ज्ञानमस्ति समस्तस्य	१	४७
ज्वालाकरालमत्युग्र	११	२६

	अ०	श्लो०
तत एव सद्यः	२	५३
तत एवाशु पुरुषं	३	३१
तं प्रयच्छामि संसिद्धै	१३	२५
ततः काली समुत्पत्य	९	२२
ततः कोपञ्चकारो	७	५
ततः कोपपराधीन	८	३
ततः क्रुद्धा जगन्माता	३	३४
ततः खड्गमुपादाय	१०	१६
ततः परशुहस्तं	९	१६
ततः पराजिता	२	४
ततः परिवृतस्ताभिः	८	२२
ततः प्रथममेवाग्रे	८	३०
ततः प्रववृते युद्धे	१०	१०
ततः प्रसन्नमखिलं	१०	२८
ततः शतेन नेत्राणां	११	४७
ततः शरशते दैवी०	१०	१४
ततः समस्तास्ता	९	६
ततः सा चन्द्रिका क्रुद्धा	९	२९
ततः सिंहः	३	१४
ततः सिंहश्चखादोग्र०	९	३७
ततः सिंहोऽभवत्सद्यो०	३	३०
ततः सिंहो महानाद०	८	९
ततः सिंहो महानादै०	९	२१
ततः समस्त	२	१९
ततः सोऽपि	३	४१
ततः स्वपुरमायातो	१	७
ततस्तौ सहितौ	१	३६
ततोऽतिकोप	२	१०
ततो जहाशातिरुषा	७	१९
ततो धूतशटः	६	१५
ततोऽम्बिकां पर	५	८९
ततोऽहमखिलं	११	४८

	अ०	श्लो०
ततो देवगणाः	१०	३०
ततो देवीशरीरात्तु	८	२३
ततो निशुम्भो वेगेन	९	३२
ततो निशुम्भः संप्राप्य	९	२९
ततो भगवती क्रुद्धा	९	३१
ततो महासुरो	३	३३
ततो मां देवताः स्वर्गे	११	४५
ततो मृगयाव्याजेन	१	९
ततो युद्धमतीवासीत्	९	९
ततो वव्रे नृपो०	१३	१७
ततो वेगात्	३	१६
ततोहाहाकृतं०	३	४३
तत्परित्राणदः	६	५
तत्र विप्राश्रमाभ्यासे	१	१७
तत्रासुरैर्महा	२	३
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि	१	६२
तथापि तत्स०	१	६५
तथा संहृति	१	७७
तथेत्युक्त्वा	१	१०३
तथैव योध तुरगै	७	११
तथैव वैष्णवीशक्ति०	८	१८
तदागच्छतु शुम्भो०	५	१२१
तदा तदावतीर्याहं	११	५५
तदाहं भ्रामरं रूपं०	११	५३
तन्निनादमुपश्रुत्य	८	११
तमायान्तं ततो देवी	१०	२६
तमायान्तं समालोक्य	९	१९
तयास्माकं वरो०	५	६
तयैतन्मोह्यते विश्वं०	१२	३७
तलप्रहाराभिहतो	१०	२१
तस्थौ कंचित्स०	१	११
तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं०	१२	७
तस्यच्छित्वा	३	४
तस्य तैरभवद	१	६
तस्य दूतस्य तद्वाक्यं	६	३
तस्य निष्क्रामतो देवी	९	३६
तस्य पालयतः सम्यक्	१	५
तस्य वित्तर्द्धि	४	३७
तस्य सर्वस्य या	१	८३
तस्यां विनिर्गतायां०	५	८८
तस्यां हतायां०	६	२४
तस्याः खड्गो०	३	८
तस्याग्रतस्तथा काली	८	३२
तस्याग्रतस्तथा	९	७
तस्यापतत एवाशु	१०	१७
तस्यापतत एवाशु	९	३३
तस्यास्तु दन्ताः	२	१७
तस्याहतस्य	५	५१
तस्मिन्निपतिते भूमौ	९	१७
तस्मिन् श्रुते वरिकृतं०	१२	२४
तांश्चखादाथ चामुण्डा	८	६०
तानि चक्राण्यनेकानि	७	१८
तान् विषण्णान्	८	५७
ताभ्यां शुम्भाय	५	९०
तावानीतौ ततो	७	२६
तावेव पवनर्द्धि०	५	४
तावेव सूर्यतां	५	३
तुण्डप्रहारविध्वस्ता	८	३६
तुष्टुवुर्मुनयः	२	३५
तुष्टुवुस्तां सुरा०	३	४४
ते चापि युयुधुस्तत्र	८	४५
ते दृष्टवा तां०	७	४
तेऽपि देवा निरातङ्काः	१२	३३
तेऽपि श्रुत्वा वचो०	८	२९

	अ०	श्लो०
तेनाज्ञप्तस्ततः	६	७
तेषु किं भवतः	१	२८
ते सम्मता जनपदेषु	४	१५
तर्मुक्तानि च	७	१३
तैश्चासुरासृक्	८	५२
त्रिशूलचन्द्राहिधरे	११	१४
त्रैलोक्यमिन्द्रोलभतां०	८	२६
त्रैलोक्यमेतदखिलं०	४	२३
त्रैलोक्ये वररत्नानि	५	१०९
त्वं वैष्णवी शक्ति०	११	५
त्वं स्वाहा त्वं०	१	७३
त्वमेव संध्या	१	७५
त्वयैतत्पाल्यते	१	७६
द्रंष्ट्राकरालवदने	११	२१
ददतुस्तौ बलिञ्चैव	१३	१२
ददावशून्यं०	२	३०
ददृशुस्ते ततो०	७	३
दस्युभिर्वा वृतः	१२	२६
दिव्यान्यस्त्राणि शतशो०	१०	१२
दिशो मुजसहस्रेण	२	३९
दुःखाय यन्मे	१	४१
दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति	९	२४
दुर्गादेवीति विख्यातं०	११	५०
दुर्गाय दुर्गपाराय	५	१२
दुर्गे स्मृता हरसि	४	१७
दुर्वृत्तवृत्तशमनं०	४	२१
दुर्वृत्तानामशेषाणां०	१२	१९
दूरादेव पलायन्ते	१२	३०
दृष्टदोषेऽपि	१	४४
दृष्ट्वा तदाप०	३	१०
दृष्ट्वा तावसुरौ	१	६९
दृष्ट्वा तु देवि	४	१३

	अ०	श्लो०
दृष्ट्वैव किं न	४	१९
देवासुरमभूद्युद्धं०	२	२
देवि दैत्येश्वरः	५	१०६
देवि प्रपन्नार्तिहरे	११	३
देवि प्रसीद परमा	३	१४
देवि प्रसीद परिपालय	११	३४
देवी खड्ग	२	४९
देवी क्रुद्धा	३	१८
देव्या गणैश्च	२	६९
देव्या यया ततमिदं०	४	३
देव्या हते तत्र महा०	११	२
दैत्याश्च देव्या निहिते	१२	३४
दैत्येश्वरेण प्रहितो०	६	११
धनुर्ज्यासिंहघण्टानां	८	१०
धर्म्याणि देवि	४	१६
धुतशृङ्गविभिन्नाश्च	३	२७
नखैर्विदारितांश्चान्यान्	८	३७
न चास्यावेदनाञ्चक्रे	८	५८
न चेत् प्रीत्याद्य	६	९
न तेषां दुष्कृतं किञ्चित्	१२	५
ननर्द चासुरः	३	३५
नन्दगोपगृहे जाता	११	४२
नमोदेव्यै महादेव्यै	५	९
नागहारं ददौ	२	३१
नारसिंही नृसिंहस्य	८	२०
नाशयन्तो	२	५४
नित्यैव सा जगन्०	१	६४
निद्रां भगवतीं०	१	७१
निपात्य प्रथम०	३	२४
नियुद्धं खे तदा	१०	२३
निर्गम्यदर्शने	१	९१
निशम्येतिवचः	५	१०२

	अ०	श्लो०
निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा	१०	२
निशुम्भस्याब्धिजाताश्च	५	९९
निहन्यमानं०	३	२
नीरक्तश्च महीपाल०	८	६३
नृसिंहरूपेणोग्रेण	११	१८
नैव तादृक्	५	९१
पञ्चवर्षसहस्राणि	१	९४
पतत्सु चापि	१२	२८
पतिस्वजनहार्द च	१	३२
परमैश्वर्यमतुलं०	५	११४
परापराणां परमा	१	८२
पलायनपरान् दृष्ट्वा	८	४०
पातितै रथनागा०	२	६५
पादाक्रान्त्या	२	३८
पार्ष्णिग्राहाङ्कुश०	७	९
प्रणतानां प्रसीद त्वं	११	३५
प्रणिपत्य महाभागं	१३	८
प्रत्युवाच	१	१९
प्रवृत्तिं स्वजनानां०	१	२४
प्रसीदवैष्णवीरूपे	११	१६
प्राच्यां रक्ष	४	२५
प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन्	१२	१२
पुत्रदारैर्निरस्तश्च	१	२२
पुनश्च्यतिरौद्रेण रूपेण	११	४३
पुनश्च कृत्वा बाहू०	९	३०
पुनश्च गौरीदेहात्सा	४	४१
पुनश्च वज्रपातेन	८	४६
पुरा शुम्भनिशुम्भा०	५	२
पूरयामास ककुभो०	९	२०
बलादाकृष्य	१	५६
बलावलेपादथ चेद्	८	२७
बलावलेपाद्दुष्टे	१०	३
बलिनां तद्बलं०	७	१४

	अ०	श्लो०
बलिप्रदाने पूजायाम्	१२	१०
बालग्रहाभिभूकानां०	१२	१८
बिडालस्यासिन	३	२०
बोधश्च क्रियतां	१	८७
ब्रवीति कथमुत्पन्ना	१	६१
ब्रह्मणस्तेजसा	२	१६
ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु	१२	२५
ब्रह्मेशगुहविष्णूनां०	८	१३
भक्त्या समस्ता	४	३०
भक्षयन्ती चर रणे	८	५५
भक्षयन्त्याञ्च तानुग्रात्	११	४४
भक्ष्यमाणस्त्वया चोग्रा	८	५६
भगवत्या कृतं	४	३४
भगवंस्त्वामहं	१	४०
भगवन् का हि	१	६०
भग्नां शक्ति	३	१३
भवकाले नृणां सैव	१२	४०
भवेतामद्य मे	१	९७
भिन्नस्य तस्य शूलेन	९	३५
भीमादेवीति विख्यातिं	११	५२
भूयश्च शतवार्षिक्या०	११	४६
भूयश्चेच्छाम्यहं	९	३
भ्रामरीति च मां	११	५४
भ्रुकुटीकुटिलं	७	६
भ्रवौ च संध्य०	२	१८
मच्छस्त्रपातसम्भूतान्	८	५४
मद्भृत्यैस्तैर०	१	१३
मधुकैटभनाशश्च	१२	३
मनुष्याणां च	१	५१
मम त्रैलोक्यमखिलं	५	१०८
ममवैरिवशं	१	१४
नमास्य च	१	४५

	अ०	श्लो०
मया तत्रोपहृतौ	७	२४
मयूरकुक्कुटवृते	११	१५
महामायानुभावेन	१	३
महामायाप्रभावेण	१	५४
महामाया हरेश्चैषा	१	५५
महामोहा च	१	७८
मां वा ममानुजं वापि	५	११३
माहेश्वरी त्रिशूलेन	८	३४
माहेश्वरीत्रिशूलेन	८	३९
माहेश्वरी वृषारूढा	८	१६
मुक्तानि तेन चास्त्राणि	१०	१३
मुखेन काली जगृहे	८	५७
मुमोचासुरदेहेषु	२	५१
मृतश्च भूयः संप्राप्य	१३	२२
मृत्योरुत्क्रान्तिदा	५	९८
मृदङ्गांश्च	२	५५
मेधासि देवि	४	११
मेधे सरस्वति	११	२३
मोहयैतौ दुरा०	१	८६
मोह्यन्ते मोहिताश्चैव	१३	४
यज्ञवाराहमतुलं	८	१९
यतस्ततस्तद्वक्त्रेण	८	५९
यतो नियुक्तो दौत्येन	८	८
यतो हि ज्ञानिनः	१	५०
यत्प्रार्थ्यते त्वया	१३	१५
यत्प्रेमप्रवणं	१	३३
यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ्	१२	९
यथावृत्तं	२	५
यदमूक्छाम्भवं	२	१४
यदयं निहतः	४	३५
यस्या प्रभावमतुलं०	४	४
यावन्त पतितास्तस्य	८	४४
यस्याः समस्तसुरता	४	८
यस्माच्चण्डं चामुण्डं च	७	२७
यस्य देवस्य यद्रूपं	८	१४
या देवी…क्रान्तिरूपेण	५	५५
या देवी…क्षान्तिरूपेण	५	४०
या देवी…क्षुधारूपेण	५	२६
या देवी…छायारूपेण	५	२९
या देवी…चेतनेत्य०	५	१९
या देवी…जातिरूपेण	५	४३
या देवी…तुष्टिरूपेण	५	७०
या देवी…तृष्णारूपेण	५	३७
या देवी… दयारूपेण	५	६७
या देवी…निद्रारूपेण	५	२५
या देवी…बुद्धिरूपेण	५	२२
या देवी…भ्रान्तिरूपेण	५	७६
या देवी…मातृरूपेण	५	६४
या देवी…लक्ष्मीरूपेण	५	५८
या देवी…लज्जारूपेण	५	४६
या देवी…विष्णुमायेति	५	१६
या देवी…वृत्तिरूपेण	५	६१
या देवी…शक्तिरूपेण	५	३४
या देवी…शान्तिरूपेण	५	४९
या देवी…श्रद्धारूपेण	५	५२
या देवी…स्मृतिरूपेण	५	६४
यानि चान्यानि देवेषु	५	१११
या मुक्तिहेतु	४	९
या रत्नानि मणयो	५	९३
या श्रीः स्वयं	४	५
या साम्प्रतं	५	८२
युद्धचमानौ	३	१५
युयुधुः संयुगे	२	४८
युयुधुः संयुगे देव्या सह	२	४६

	अ०	श्लो०
युयुधे चामर०	२	४१
युयुधे संयुगे	२	४५
युयुधे स गदापाणि	८	४२
यैर्निरस्तो	१	२७
यो मां जयति	५	१२०
रक्तविन्दुर्यदा	८	४१
रक्षणाय च	४	४२
रक्षां करोति भूतेभ्यो	१२	२३
रक्षांसि भक्षयिष्यामि	११	५१
रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च	११	३२
राज्ञाक्रुद्धेन वाज्ञप्तो	१२	२७
रिपवः संक्षयं यान्ति	१२	१५
रोगानशेषानपहंसि	११	२९
रौद्रायै नमो नित्यायै	५	१०
लक्ष्मी लज्जे महाविद्ये	११	२२
लज्जा पुष्टिस्तथा	१	८०
लीलयैव प्रचिच्छेद	२	५०
लोभात्प्रत्युपकाराय	१	५३
वज्रमिन्द्रः	२	२२
वज्रहस्ता तथैवेन्द्री	८	२१
वञ्चिताभ्यामिति	१	१००
वनमभ्यागतो	१	२३
वभञ्ज लीलयैवोग्र०	१०	१३
वरदाहं सुरगणा	११	३७
विचित्रखट्वाङ्गधरा	७	७
विचित्रमिदमाख्यातं	९	२
विच्छिन्नबाहुशिरस	६	१८
विद्याः समस्तास्तव	११	६
विद्या तथैव क्रियते	१३	३
विद्यासु शास्त्रेषु विवेक०	११	३१
निधिरेष महापद्मः	५	९६
विपोथिता	२	५८
विप्राणां भोजनैर्होमैः	१२	२१
विबोधनार्थाय	१	७०
विमानं हंससंयुक्तं	५	९५
विलोक्य ताभ्यां	१	१०१
विश्वेश्वरि त्वं परिपासि	११	३३
विषयश्च महाभाग	१	४८
विष्णुकर्णमलोद्०	१	६८
विष्णोः प्रवोध०	१	९०
वृतो रथानां	२	४४
वेगभ्रमणविक्षुण्णा	३	२६
वेगेन कांश्चिद०	३	३३
वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते	११	४१
वैश्यवर्यत्वया	१३	२४
वैष्णवी, चक्रभिन्नस्य	८	४८
वैष्णवी समरे चैनं	८	४७
व्याप्तं तयैतत् सकलं	१२	३८
व्रियता त्रिदशाः	४	३२
ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च	८	२५
शक्त्या जघान	८	४९
शक्रादयः सुरगणा	४	२
शंखं च वरुणः	२	२१
शंखचक्रगदाशार्ङ्ग०	११	१६
शङ्खिनी चापिनि	१	८१
शत्रु तो न भयं	१२	६
शब्दात्मिका	४	१०
शरणागतदीनार्त०	११	१२
शरत्काले महापूजा	१२	१२
शरवर्षैं शितै	१०	११
शरवर्षैर्महाभीमैः	७	१७
शरीरकोषाद्यत्तस्या	५	८७
शस्त्रास्त्रैर्बहुधा	२	४०

	अ०	श्लो०
शाकम्भरीति विख्याति	११	४९
शान्तिकर्मणि सर्वत्र	१२	१६
शिरश्चण्डस्य काली	७	२३
शिरांसि पेतु	२	६१
शिवदूतीस्वरूपेण	११	२०
शुम्भमुक्ताञ्छरान्	९	२७
शुम्भेनागत्य या	९	२५
शूलंशूलाद्वि०	२	२०
शूलहस्तं समायान्तं	९	३४
शूलेन पाहिनो	४	२४
शोणितौघा महानद्यः	२	६६
येनानुकारिणः	२	६०
ुत्वा तमसुरं	६	२०
ुत्वा ममैतन्माहात्म्यं	१२	१४
ंक्षिप्तो धरणीं	१०	२५
ंचितः सोऽतिदुःखेन	१	१६
संनद्धाखिलसैन्यास्ते	२	३६
संसारबन्धहेतुश्च	१	५८
संस्मृता संस्मृता	४	३६
स गतासु पपातो०	१०	२७
स च वैश्यस्तपस्तेपे	१३	१०
स च सिंहो	२	६८
स चापि गदया	८	५०
सञ्छिन्नधन्वा	३	६
स तत्र गत्वा	५	१०४
स तत्राश्रममद्राक्षीद्	१	१०
सत्यमुक्तं त्वया	५	११८

	अ०	श्लो०
स त्वं गच्छ मयोक्तं	५	१२९
स दृष्ट्वा तां ततो	६	८
स देवी शरवर्षेण	३	३
समस्तरोमकूपेषु	२	२४
समाधिर्नाम	१	२१
स मुष्टिं पातयामास	१०	२०
सम्मानिता	२	३२
स रथस्थस्तथा०	९	१८
सर्वं ममैतन्माहात्म्यं	१२	२०
सर्वभूता यदादेवी	११	७
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये	११	१०
सर्वस्य बुद्धिरूपेण	११	८
सर्वस्वरूपे सर्वेशे	११	२४
सर्वाबाधाप्रशमनं	११	३९
सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो	१२	१३
सशोक इव	१	१८
सा क्षिप्त्वा तस्य	३	२९
सा च तान्	३	३६
सा च तान् प्रहितान्	८	३१
सा चाह धूम्रजटिल०	८	२४
सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता	५	१२६
साब्रवीत्तान् सुरान्	५	८५
सावर्णिः सूर्यतनयो	१	२
सावर्णिको नाम मनु०	१३	२३
सा वेगेनाभिपतिता	७	९
सिंहनादेन शुम्भस्य	९	२६
सिंहमाहत्य	३	७

	अ०	श्लो०		अ०	श्लो०
सुधा त्वमक्षरे	१	७४	स्वजनेन च	१	४३
सूर्येन्द्राग्न्य	२	६	स्वर्गान्निराकृताः	२	७
सृष्टिस्थितिविनाशानां	११	११	स्वल्पैरहोभिर्नृपते	१३	२०
सैवकाले महामारी	१२	३९	स्वरोचिषेऽन्तरे पूर्वं	१	४
सैषा प्रसन्ना	१	५७	हंसयुक्तविमानस्थे	११	१३
सोऽचिन्तयत्तदा	१	१२	हंसयुक्तविमानाग्रे	८	१५
सोऽपि कोपान्	३	२५	हतशेषं ततः सैन्य	७	२२
सोऽपि निद्रावशं	१	८४	हताश्वः स तदा	१०	१८
सोऽपि वैश्यस्ततो	१३	१८	हते तस्मिन्	३	११
सोऽपि शक्ति	३	१२	हत्वा रिपूनस्खलितं	१३	२१
सौम्यानि यानि	४	२६	हन्यमानं महासैन्यं	९	६
सौम्बैन स्तन	२	१५	हयानां च वृतो	२	४७
स्तुता संपूजिता	१२	४१	हिनस्ति दैत्यतेजांसि	११	२७
स्तुतासुरैः पूर्वम्	५	८१	हृत्वाधिकारास्त्रिदशा	५	५
स्त्रीरत्नभूतां तां	५	११२	हे चण्ड हे मुण्ड	६	२२
स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी	५	९२	हेतुः समस्तजगतां	४	७
स्मरन् ममैतच्चरितं	१२	२९	हे धूम्रलोचनाशु	६	४

—:०:—

सांगोपांग-दुर्गासप्तशती

दुर्गापूजन-शत-सहस्र-चंड्यादिपरिशिष्ट सहित

संपादक—पं० हरेकान्त मिश्र

कलियुग में दुर्गासप्तशती एक प्रकार का सिद्धमहामंत्र है। जनकल्याण के लिये सहस्रों स्तोत्रों की रचना महर्षियों ने की है, जिनमें अधिकतर स्तोत्र शापित हैं। किन्तु मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत यह दुर्गासप्तशती सिद्ध भैषज्य की तरह सभी मनोवाञ्छित फलों को देने वाली है। अत एव घर-घर में इसके पाठ का प्रचार-प्रसार है। यह ध्रुव सत्य है कि सांगोपांग इसका पाठ किया जाय, तो मानव की सारी विपदा दूर हो जायेंगी। प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपि के आधार पर यावतोपलब्ध पाठान्तर के साथ यह सांगोपांग विशुद्ध संस्करण प्रस्तुत किया गया है। कर्मकाण्डी विद्वानों की सुविधा के लिये इसमें विविध पाठसंकल्प, प्रतिमापूजन, कुंजिकास्तोत्र आदि अनेकानेक उपयोगी विषय भी दिए गये हैं; जिनसे यह संस्करण सर्वोत्कृष्ट माना जा रहा है। ६—००

साङ्गोपाङ्ग-दुर्गापूजा-पद्धतिः

'सरला' हिन्दी टीका-सम्पुटविधानादिपरिशिष्टसहिता

ले० ज्योतिविद् पं० देवीप्रसाद मिश्र

अनेकानेक दुर्गापूजा-पद्धतियों का अवलोकन करके यह संस्करण तैयार किया गया है। दुर्गापूजन का सांगोपांग विवेचन हिन्दी माध्यम से किया गया हैं, जो जनसाधारण के लिये भी बोधगम्य है। हिन्दी टीका हो जाने से गाँव-गाँव में इसका बहुत प्रचार हो रहा है। कम पढ़े-लिखे कर्मकाण्डी विद्वान् भी अक्लेशेन इस पद्धति से पूजा करा कर कुशल पुरोहित बन जायेंगे। इसके परिशिष्ट में संपुट-पाठ विधान, आदि का सप्रमाण विशेष विवेचन किया गया है। १०—००

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय

कचौड़ी गली, वाराणसी—२२१००१

[illegible]

चौखम्भा अमरभारती प्रकाशन के परीक्षोपयोगी ग्रन्थ

शिवस्तोत्रावली । श्रीमदुत्पलदेवाचार्यविरचिता । श्रीक्षेमराज निर्मित टीका-
समेता । श्रीराजानक लक्ष्मण कृत हिन्दी टीका सहित ५०-००

वाशिष्ठीहवनपद्धतिः । हिन्दी टीका सहित । श्री विश्वनाथ शास्त्री ६-००

श्राद्धपद्धतिः । वाचस्पतिमिश्रकृता । (छान्दोग-वाजसनेयि-युग्मसंस्करण)
श्राद्धसमीक्षात्मक भूमिका, श्राद्धाधिकार-अशौचसंकरादिनिर्णयात्मक
परिशिष्ट विभूषित 'इन्दुमती' टिप्पणी सहित शोधपूर्ण परिवर्द्धित
नवीनतम संस्करण । सम्पादक-पं० रामचन्द्र झा १०-००

कातीयतर्पणपद्धतिः । हिन्दी टीका सहित । पं० अनन्तराम शास्त्री डोंगरे १-००

अशौचनिर्णयः । श्रीवाचस्पतिमिश्र तथा रुद्रधरोपाध्यायकृत युग्म संस्करण ।
'मनोरमा' हिन्दी व्याख्या इन्दुमती टिप्पणी सहित सं० रामचन्द्र झा १-००

सामवेदीय रुद्रजपविधिः । पञ्चवक्त्रपूजनं लघुरुद्रविधानयुतञ्च । सम्पादक
पं० हरिशंकर शास्त्री ५-००

श्रीकृष्णजन्माष्टमी पूजाव्रतकथा । 'कृष्णजन्मरहस्य' सम्पादक
पं० रामचन्द्र झा १-००

श्रीसत्यनारायणव्रतकथा । 'विष्णुप्रिया' हिन्दी टीका सहित ।
श्रीमातृप्रसाद पाण्डेय २-००

सांगोपाङ्ग-दुर्गासप्तशती । (सचित्र, शोधपूर्ण गुटका संस्करण) सप्तशत्यंग-
षट्क पूजाविधि, मंत्रकोश, नवचण्डी, नवदुर्गा, शतचण्डी, सहस्रचण्डी
विधानादि सहित । संपादक पं० हरेकान्त मिश्र १०-००

प्रश्नोत्तरी तथा चर्पटमञ्जरी । श्रीशङ्कराचार्यविरचिता । 'इन्दुमती'
हिन्दी टीका सहित । पं० रामचन्द्र झा ७५-०० ०-७५

शनिस्तोत्रम् । ०-२५

ऋणमोचनमङ्गलस्तोत्रम् । ०-२५

श्री वेङ्कटेशाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम । श्रीलक्ष्म्यष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्-
श्यामलादण्डक-नवरत्नमालिका च १-००

बृहत्स्तोत्ररत्नाकरः । (२९१ स्तोत्रों का संग्रह) । शोधपूर्ण संस्करण २०-००

शिवकर्णामृतस्तोत्रम् । श्रीभारद्वाज मुनिविरचितम् । सं० जगन्नाथशर्मा २-००

अन्य प्राप्तिस्थान—चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, कचौड़ी गली, वाराणसी